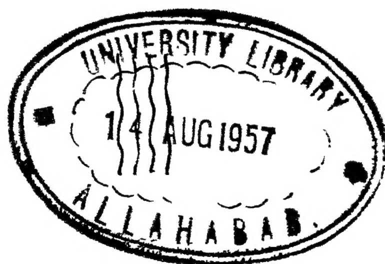
प्रेमचन्द : उपन्यास और शिल्प

लेखकः -

श्री हरस्वरूप माथुर एम० ए०



प्रकाशक :—

भारती-प्रतिष्ठान, कानपुर

एकाधिकारी वितरक

ग्रन्थ-कुटीर

पी० रोड, कानपुर

प्रकाशक

भारती-प्रतिष्ठान

पी० रोड, कानपुर

एकाधिकारी वितरक

ग्रन्थ-कुटीर

पी० रोड, कानपुर

लेखक

श्री हरस्वरूप माथुर

भूमिका लेखक

डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

डी० लिट्०

मूल्य

५-८-०

प्रकाशन काल

दिसम्बर, १९५७

मुद्रक

मर्चेन्ट प्रेस

रेलबाजार, कानपुर

भूमिका

डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित एम० ए०, डी० लिट्०
हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रेमचंद हिन्दी उपन्यास-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में प्रेमचंद का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। उनके उपन्यासों में हमें अपने युग की स्पष्ट ध्वनि दिखाई देती है। समाज के दमन, शोषण तथा उत्पीड़न का जितना सुन्दर एवं यथातथ्य चित्रण प्रेमचंद ने किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उनके उपन्यास मध्यवर्ग, जमीदार, किसान, पूँजीपति, मज़दूर, अछूत, समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों एवं नारी-जीवन के अनेकानेक चित्रों से सम्पन्न हैं। प्रेमचंद की श्रेष्ठता और महत्ता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने हिन्दी के प्राचीन उपन्यासकारों द्वारा संस्थापित परम्पराओं को ध्वंस कर, पुरानी मान्यताओं का परित्याग कर, हिन्दी–कथा-साहित्य के क्षेत्र में नवीन आदर्शों की स्थापना की और चिर उपेक्षितों को भी पढ़े-लिखे समाज के आकर्षण का केन्द्र बनाया।

मानव-जीवन के अन्तर्गत प्रेमचंद की अच्छी पहुंच और गति थी। मानव की विचारधारा, उसके सोचने के तौर–तरीके, उसकी दुर्बलताओं और प्रतिक्रियाओं का अच्छा अध्ययन था। दूसरे शब्दों में प्रेमचंद एक सफल मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक प्राणी थे। कृषकों के वे बड़े ही सम्वेदनशील या हिमायती लेखक थे। उनके दुःखों, दर्दों, और कठिनाइयों का उन्होंने बड़ी सहानुभूति और मनुष्यता के साथ चित्रण किया है। अध्ययन, चिंतन और अनुभव ने प्रेमचंद के व्यक्तित्व में भविष्य-द्रष्टा की शक्ति उत्पन्न कर दी थी। देश, समाज और सामाजिक परिस्थतियों को देखकर प्रेमचंद ने अनेक भविष्यवाणी कीं थी जो आज अक्षरशः सत्य प्रमाणित हो रही हैं।

सन् १९३१ में युग उपन्यासकार, चिरउपेक्षित कृषकवर्ग के चित्रकार प्रेमचंद ने "गबन" में देवीदीन खटिक के मुँह से बतलाया था:—

"अरे, तुम क्या देश का उद्धार करोगे! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। इसीलिए

तुम्हारा इस देश में जनम हुआ है। एक बार यहाँ एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर खूब कूदे। जब वह नीचे आये तो मैंने उनसे पूँछा साहब, सच बतादो जब सुराज का नाम लेते हो, तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है? तुम तो लम्बी-लम्बी तलब लोगे, तुम भी अँग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अँग्रेजी ठाठ-बाट बनाये घूमोगे, इस सुराज से देश का कल्याण होगा। तुम्हारी और तम्हारे भाई-बन्दों की जिन्दगी भले आराम और ठाठ से गुजरे पर देश का तो कोई भला न होगा। तुम दिन में पाच बेर खाना चाहते हो और वह भी बढ़िया माल, गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूस कर तो सरकार तुम्हें हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है? अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग-विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जायगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।"

सन् १६३० ई० में प्रेमचंद ने हंस की एक सम्पादकीय में लिखा था:—

"किसानों की हालत रोज़-बरोज़ खराब होती जा रही है। उनका लगान बढ़ता जा रहा है, सख्तियाँ बढ़ती जाती हैं। कौंसिल में उनके हितों का कोई रक्षक नहीं है.........कांग्रेस के मेम्बर या और लोग भी कभी-कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसानों की वकालत करें, लेकिन किसानों के नाना प्रकार के दुःखों और वेदनाओं की उन्हें अरव्स नहीं हो सकती है, जो एक किसान को हो सकती है......" सब छोटे-बड़े उसी को नोचते हैं, सब उसी का रक्त और मांस खा-खा कर मोटे होते हैं, पर उसकी कोई भी खबर नहीं लेता है"।

'आहुति' कहानी में प्रेमचंद की नारी पात्र रूपमणि कहती है:—

"अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व बना रहे और पढ़ा-लिखा समाज योंही स्वार्थान्ध बना रहे तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा है। अँग्रेजी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे स्वदेशी हैं? कमसे कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह

कि जान की जगह गोविन्द बैठा दिए जायं। मैं समाज में ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूं, जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिले।"

इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण प्रेमचंद के कथा-साहित्य में भरे पड़े हैं। इन उद्धरणों में सफेद पोश तथा 'ऊँच निवास नीच करतूती' वाले नेताओं को तीखे व्यङ्ग-बाणों का लक्ष्य बनाया गया है। उपर्युक्त अवतरणों में प्रेमचंद ने अपने युग और आज के भारतवर्ष की कथा कह डाली है। प्रेमचंद एक महान लेखक थे। उनकी अन्तर्दृष्टि भविष्य को देखने में पूर्णतया सफल थी। अपने युग के नेताओं की करतूतों को देखकर भविष्य में उनके भीषण शोषक एवं प्रवंचक रूप का उन्हें पूरा आभास मिल गया था।

आज से प्रायः पच्चीस वर्ष पूर्व प्रेमचंद ने जिन बातों की भविष्य वाणी की थी, वे पूर्णतया सत्य निकलती जा रही हैं। आज की बढ़ती हुई मंहगाई, सरकार की टैक्स प्रियता, बेकारी को देख कर प्रेमचंद की भविष्य वाणी "जब तुम्हारा राज हो जायगा, तब तो गरीबों को पीसकर पी जाओगे" का स्मरण हो आता है। प्रेमचंद ने कितना सच कहा था कि सत्ता हाथ में आते ही "तुम भी अँग्रेजों की तरह बँगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, लम्बी-लम्बी तलबें लोगे, अंग्रेजी ठाट बनाए घूमोगे। तुम्हारे भाई-बन्दों की जिंदगी भले ही आराम से गुजरे, पर सामान्य जनता का जीवन भार स्वरूप हो रहा है। प्रत्येक मिनिस्टर पर ६ हजार प्रति मास व्यय होने वाली रकमें कहाँ से आती है ? इन्हीं गरीबों की पसीने की कमाई से। सत्य तो यह है कि किसान और निम्नवर्गों का जीवन आज भी किसी प्रकार सुखी नहीं है। प्रेमचंद ने ठीक कहा था कि सब छोटे-बड़े उसी को नोचते हैं, सब उसी का मांस खा खाकर मोटे होते हैं।

प्रेमचंद की मृत्यु के लगभग ११ वर्षों बाद देश को स्वराज्य मिला, पर क्या यह वही स्वराज्य है जिसका स्वप्न प्रेमचन्द देखा करते थे। देश में कहने के लिए, तो अहिंसात्मक क्रांति हो गई परन्तु कोयले की खानों, चाय के बागों और बड़े-बड़े कारखानों पर अब भी अँग्रेजों का कब्जा और शोषण कायम है। इतने पर भी हमारी सरकार अंग्रेजी और अमरीकी सरमायदारों को इस देश के उद्योगों में पूंजी लगाने के लिए निवेदन कर रही है। प्रेमचंद ऐसी आजादी के विरुद्ध थे। पहली कांग्रेस मिनिस्ट्री के कार्य-कलाप देखकर प्रेमचंद को बड़ी निराशा हुई थी।

सन १६३१ में 'कर्मभूमि' की रचना करते हुए अमरकांत से प्रेमचंद ने कहलाया था :—"अब क्रांति में ही देश का उद्धार है, ऐसी क्रांति जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धांतों और परिपाटियों का अन्त कर दे। जो एक नये युग की प्रवर्तक हो, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड़-तोड़ कर चकनाचूर कर दे, जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकने वाले राज्य के पञ्जे से मुक्त कर दे।"

इन पंक्तियों से प्रेमचन्द की राजनीतिक विचारधारा बहुत स्पष्ट हो जाती है।

प्रेमचन्द की दृष्टि भारतीय कृषक जनता की सभी समस्याओं पर बड़े व्यापक रूप से पहुंच गई थी। किसानों की एक-एक समस्या से वे परिचित थे। 'गोदान' 'कर्मभूमि' और 'प्रेमाश्रम' में इन्हीं किसानों की दुर्दशा, व्यथा, शोषण और विषमताओं आदि दोषों का विस्तार से चित्रण हुआ है। इन्हीं उपन्यासों में भारतीय किसानों के पारस्परिक संघर्ष का भी विस्तृत वर्णन है।

किसानों का शोषण जहाँ एक ओर जमींदार, कारकुन, सरकारी अहलकार, पटवारी महाजन करते हैं, साथ ही उनके शोषण का आधार है गाँव की पञ्चायतें तथा उनके सञ्चालक पञ्च और सरपञ्च। ये पांच समाज के उच्च वर्गों से उत्पन्न होते हैं। गोदान की दुनियाँ को दुःखी, विकृत और विषादमय बनाने का उत्तरदायित्व इन्हीं 'गोदान' के पञ्चों और सरपञ्चों का है। ये समय-असमय भारतीय किसानों के जीवन में विष घोला करते हैं और किसानों की कमाई को बड़ी चतुरता के साथ हजम करते रहते हैं। मरघट के कुत्तों के सदृश ये पञ्च अवसर की खोज में बैठे रहते हैं। जब उन्हें शोषण का पूरा-पूरा मौका मिल जाता है उस समय वह चूकना भी नहीं जानते हैं? पटेश्वरी, नोखेराम, झींगुरसिंह, दातादीन आदि गाँव के भाग्य-विधाता और किसानों का सर्वनाश समुत्पन्न करने के लिए सदैव तत्पर बने रहते हैं। इनमें से कोई पञ्च ऐसा नहीं है जिसे दया, करुणा, ममत्व, आनत्व आदि मानव सुलभ कोमलताओं ने किसी भी अंश में स्पर्श किया हो। ये सभी अभिजात्य वर्ग के प्रतिनिधि हैं और ब्राह्मण और क्षत्रिय कुलों में समुत्पन्न हैं। फिर भी क्षमा और दया से सर्वथा विहीन हैं। होरी जीवनपर्यंत इन्हीं पञ्चों की कृपा से कंगाल बना रहा। अब इनका परिचय प्रेमचन्द से सुन लीजिये :

"पंडित नोखेराम कारकुन बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। इनके दादा किसी राजा के दीवान थे, पर अपना सब कुछ भगवान के चरणों में भेंट करके साधू हो गए थे। इनके बाप ने भी रामनाथ की खेती में उम्र काट दी। नोखेराम ने भी वह भक्ति तरके में पाई थी। प्रातः काल पूजा में बैठ जाते थे और दस बजे तक रामनाम लिखा करते थे, मगर भगवान के सामने से उठते ही उनकी मानवता इस अपराध से विकृत होकर उनके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी।'

"झींगुरसिंह दो स्त्रियों के पति थे। पहली पाँच लडके-लड़कियाँ छोड़ कर मरी थी। उस समय इनकी अवस्था ४५ के लगभग थी; पर आपने दूसरा ब्याह कर लिया और जब उससे कोई संतान न हुई, तो तीसरा ब्याह कर डाला। अब इनकी पचास की अवस्था और दो जवान पत्नियाँ घर में बैठी हुई थीं। उन दोनों के विषय में तरह-तरह की बातें फैल रही थीं, पर ठाकुर साहब के डर से कोई कुछ कह नहीं सकता था, और कहने का अवसर भी तो हो। पति की आड़ में सब कुछ जायज है"

"लाला पटेश्वरी......गाँव में मशहूर पुण्यात्मा थे। पुण्यमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक दूसरे से लड़वाकर रकमें मारते थे।......गरीबों को दस-दस पाँच-पाँच कर्ज देकर उन्होंने कई हजार की सम्पत्ति बना ली थी। फसल की चीजें असामियों से लेकर कचहरी और पुलिस के अमलों की भेंट करते रहते।"

"दातादीन इस गाँव के नारद थे" और "दातादीन का लड़का माता दीन एक चमारिन से फंसा था। इसे सारा गाँव जानता था, पर वह तिलक लगाता था।" संक्षेप में बेलारी ग्राम के पञ्चों का यही परिचय है। इनके प्रबंध, रीति-नीति, व्यवहार और दण्ड की व्यवस्था विचित्र और स्वार्थमय है। इनकी नियत, कृत्य, मति और बुद्धि हर प्रकार से भ्रष्ट है। अब इनके न्याय की व्यवस्था भी देखिए :—

"होरी का पुत्र गोबर अपनी चहेती झुनियां को द्वार पर बैठाकर शहर भाग जाता है। होरी और धनियां ने बड़े तर्क-वितर्क, सङ्कल्प-विकल्प के बाद झुनियां को घर में स्थान दिया गया। झुनियां चार दिन बाद माता बनने वाली थी, फिर उसे कहां जाने दिया जाय? झुनियां का होरी के घर

में प्रवेश होते ही, गांव भर में आशांति छा गई। मर्यादा का विनष्ट हो जाने के कारण चारों ओर क्षोभ की ज्वाला धधक उठी। दातादीन का पुत्र 'मातादीन' चमारिन से प्रेम करता था, झींगुर सिंह की दो-दो जवान स्त्रियां घूँघट की ओट में वासना शांत करती थीं, नोखेराम और पटेश्वरी के चरित्र दुर्गंधि से पूर्ण थे परन्तु गोबर-झुनियां के इस प्रेम को किसी प्रकार न सहन कर सके। कारण कि होरी की लहलहाती हुई खेती और फसल उनकी निगाह में खटक रही थी। ये चारों पंच देखिये-होरी और धनियां से क्या कहते हैं:—

"दातादीन बोले—मेरी आदत किसी की निन्दा करने की नहीं है··· तुम्हें उस दुष्टा को घर में न रखना चाहिए था। दूध में मक्खी पड़ जाती है, तो आदमी उसे निकाल कर फेंक देता है और दूध पी जाता है। सोंचो, कितनी बदनामी और जगहंसाई हो रही है। जब तक बिरादरी को भात न दोगे, ब्राह्मणों को भोजन न दोगे, कैसे उद्धार होगा।"

"पटेश्वरी बोले · झुनियां को क्यों नहीं उसके बाप के घर भेज देते, सेतमेत में अपनी हंसी करा रहे हो। न जाने किसका लड़का लेकर आगई है और तुमने घर में रख लिया।"

-अंतमें पंचायत की बैठक में जो फैसला हुआ, उसका विवरण प्रेमचंद से सुनिये:—

"सर्व सम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रूपये का तावान लगा दिया जाय। केवल एक दिन गांव के आदमियों को बटोर कर उनकी मंजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था। संभव था, इसमें दस-पांच दिन की देर हो जाती, पर आज ही रात को झुनियां के लड़का पैदा हो गया और दूसरे दिन गांव वालों की पंचायत बैठ गयी। होरी और धनियां दोनों अपनी किसमत का फैसला सुनने के लिए बुलाये गए। चौपाल में इतनी भीड़ थी, कि कहीं तिल रखने की जगह न थी। पंचायत ने फैसला किया, कि होरी पर सौ रूपये नकद और ३० मन अनाज डांड लगाया जाय।"

धनियां भरी सभा में रुंधे हुई कंठ से बोली "पंचो, गरीबों को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हमतो मिट जायेंगे, कौन जाने, इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको जरूर से जरूर ले डूबेगा।"

पहर रात बीते "डांड" का अनाज ढो-ढोकर झींगुर सिंह की चौपाल में लगता रहा। जब खलिहान में १॥-२ मन शेष रह गया, तो धनियां ने

दौड़ कर हाथ पकड़ लिया और बोली "अच्छा, अब रहने दो। ढो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में ही झोंक दोगे। मैं तुमसे हार जाती हूँ। मेरे भाग्य में तुम्हीं जैसे बुद्धू का संग लिखा है।"

"होरी ने अपना हाथ छुड़ाकर टोकरों में शेष आनाज भरते हुए कहा, यह न होगा धनियां, पंचों की आंख बचाकर एक दाना भी रख लेना हराम है। मैं ले जाकर सब का सब एक वहां ढेरकर देता हूँ फिर पंचों के मन में दया उपजेगी तो कुछ मेरे बाल-बच्चों के लिए देंगे, नहीं भगवान मालिक है।"

"धनियां तिलमिला कर बोली—यह पंच नहीं राक्षस हैं, पक्के राक्षस यह सब हमारी जगह जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डांड तो बहाना है। समझाती जाती हूँ पर तुम्हारी आंखें नहीं खुलती। तुम इन पिशाचों से दया की आशा रखते हो। सोचते हो, दस-पांच मन निकाल कर तुम्हें दे देंगे। मुंह धो रखो।"

"डांड" का अनाज पंचों के आदेशानुसार झींगुरसिंह के चौपाल में पहुँचा दिया गया था पर सौ रुपया कहाँ से आए? इस समस्या का भी हल निकला। प्रेमचंद कहते हैं "उसी वक्त होरी अपने घर को अस्सी रुपये में झींगुरीसिंह के हाथ गिरों रख रहा था। डांड के रुपये का इसके सिवाय वह और कोई प्रबंध न कर सकता था। बीस रुपये तो तेलहन, गेहूं और मटर से मिल गए। शेष के लिए घर लिखना पड़ गया। नोखेराम तो चाहते थे कि बैल बिकवा लिये जांय, लेकिन पटेश्वरी और दाताराम ने इसका विरोध किया।" यह हिमायत इसलिए थी कि यदि होरी के बैल बिक गये तो खेती कैसे करेगा और यदि खेती नहीं कर पायेगा तो वह मजदूर बनकर किसी दूसरे स्थान को भाग जायेगा और इस प्रकार उस की अनुपस्थिति में शोषण के सभी मार्ग बंद हो जावेंगे। इस स्वार्थमय सहानुभूति के कारण पंचों ने परिस्थिति में संशोधन कर लिया।

प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में पञ्चायत का स्वरूप और समस्याओं की अभिव्यक्ति कैसी हुई हैं यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। बेलारी गांव का वातावरण इन्हीं पंचों की कृपा से बराबर क्षुब्ध बना रहता है। ये शोषित किसानों को बराबर अर्ध जीवित और अर्ध नग्न मात्र

रहने देना चाहते हैं। अनाचार, भ्रष्टाचार और दुराचार फैलाना इनका कर्त्तव्य है। देश के लिये यह पंचायतें कितनी घातक सिद्ध हो रही हैं।

'गोदान' की रचना सन् १६३० के लगभग हुई थी। सन् १६३० में गांव पंचायतों का स्वरूप कैसा था, यह प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। और आज भी ग्रामीण वातावरण इन पंचों और सरपंचों के कारण बड़ा विषाक्त बना हुआ है। परन्तु आज का उपन्यासकार साहित्यकार प्रेमचंद के सदृश जागरूक नहीं है।

"प्रेमचंद : उपन्यास और शिल्प" श्री हरस्वरूप माथुर की अभिनव कृति है। इस ग्रंथ की रचना लेखक ने 'हिंदी उपन्यास परम्परा और प्रेमचंद', 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि परिच्छेदों में की है। इस ग्रंथ में प्रेमचंद के समस्त उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना लेखक का लक्ष्य है। मुझे प्रसन्नता है कि श्री माथुर अपने लक्ष्य में सफल हुए हैं। इस अध्ययन में लेखक ने प्रेमचंद की साहित्य-साधना, उपन्यास कला, कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा, शैली पर सविस्तार विचार किया है। प्रेमचंद की कृतियों की समस्याओं की विवेचना लेखक ने सूक्ष्म रूप से की है। श्री माथुर का विषय प्रतिपादन तर्कयुक्त और रोंचक है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी समस्याओं पर विचार किया गया है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने प्रत्येक उपन्यास पर पृथक् रूप से स्वतंत्र विवेचन किया है, और प्रेमचंद की उपन्यास - कला का सामान्य विवेचन 'शिल्प-विधान' के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। इस प्रकार प्रेमचंद के प्रत्येक उपन्यास की समस्या वातावरण, कला और उसकी उपयोगिता को सविस्तार समझाने का प्रयत्न किया गया है और उस विधान की सामान्य विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखक की दृष्टि में प्रेमचंद बहुत बड़े उपन्यासकार हैं और कथा के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। इस तथ्य से सभी सहमत होंगे। प्रेमचंद हिंदी के ही नहीं वरन् शोषित जनता के सबसे बड़े प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं। ऐसे महाव्यक्तित्व और कला को समझने के लिए अभी अनेक ग्रंथों की आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन पर लेखक को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

प्राक्कथन

प्रेमचंद हिन्दी के अद्वितीय कथाकार हैं। उनके उपन्यास और कहानियाँ भारतीय जीवन और समाज के प्रायः सब अंगों और स्तरों का प्रभावात्मक चित्रण करती हैं। विशेषरूप से उनके उपन्यास बड़े व्यापकत्व के साथ भारतीय समाज के विविध पक्षों के अंकन में समर्थ हुए हैं। उनकी यह सामर्थ्य हिन्दी उपन्यास-साहित्य की सबल शक्ति है।

यहाँ पर यह भी उल्लेख्य है कि इन उपन्यासों में प्रेमचंद की समाज-निष्ठा उनकी कला-निष्ठा की अपेक्षा अधिक सजग है। इस कारण उनके उपन्यासों में कतिपय कलागत त्रुटियाँ आ गई हैं। इनकी ओर इस आलोचना में संकेत ही नहीं है अपितु यथास्थान सम्पूर्ण समीक्षा भी प्रस्तुत की गई है।

इन कलागत न्यूनताओं के होने पर भी प्रेमचंद के साहित्य की ध्येयात्मक शक्ति इन उपन्यासों में अप्रतिहत है। यह शक्ति लोक-मंगल के जिस अदम्य विश्वास से अनुप्राणित है, वह विश्वास हिन्दी साहित्य का एक सुदृढ़ प्रकाश-स्तम्भ है। मैं जानता हूं कि मेरे इस मत से सबका सहमत होना सम्भव नहीं, किन्तु मैं यह भी जानता हूं कि अपने निष्कर्ष के लिए सबके समर्थन की आशा करना स्वयं को प्रवंचित करना है। मैं अब तक इससे मुक्त हूँ।

मैं यहाँ पर अस्वीकार न करूँगा कि प्रेमचंद के प्रति मेरी श्रद्धा है, पर शरत् और रवीन्द्र के प्रति मैं इनसे कम श्रद्धा नहीं रखता। अतएव शरत् और रवीन्द्र की अपेक्षा प्रेमचंद की विशिष्टता का प्रतिपादन करते समय उनको हीन सिद्ध करने का अभिप्राय कदापि नहीं है। मेरे जिन मित्रों ने इस प्रकार का आशय लिया हो, उनसे मैं यहाँ निवेदन करूँगा कि वे पुनः शरत्, रवीन्द्र और प्रेमचंद के तुलनात्मक स्थलों पर ध्यान दें, और मेरे दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करें।

अन्त में मैं डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम.ए., एल.एल.बी., पी-एच.डी., डी.लिट. के प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन से समय निकाल कर इस

पुस्तक की भूमिका लिखी है। इस भूमिका से निश्चय ही इस पुस्तक का गौरव बढ़ा है।

श्रद्धेय पं० कृष्णशंकर जी शुक्ल की प्रेरणा के फलवरूप ही यह पुस्तक लिखी जा सकी है। यहाँ उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

श्री जनेश्वर वर्मा ने प्रेमचंद सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध कराने में मेरी सहायता की है। मैं उनके प्रति आभार और कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक में प्रूफ की कुछ भूलें हो गई हैं। अध्येता भूल सुधारने के अतिरिक्त इस सम्बंध में और कुछ नहीं कर सकते।

दि० १-१२-१९५७। हरस्वरूप माथुर

समर्पण

उन सब को

जिन्होंने

पथ-प्रशस्त

किया।

विषय-सूची

(अ) पृष्ठ भूमि

१—हिंदी-उपन्यास परम्परा और प्रेमचंद १

(ब) प्रेमचन्द के उपन्यास

२—वरदान १२
३—प्रतिज्ञा २०
४—सेवासदन २७
५—प्रेमाश्रम ४४
६—निर्मला ६८
७—रंगभूमि ७७
८—कायाकल्प ६८
९—गबन ११४
१०—कर्मभूमि १२६
११—गोदान १४८
१२—मंगलसूत्र १७२

(स) प्रेमचन्द का शिल्प-विधान

१३—कथावस्तु १७६
१४—चरित्र-चित्रण १८२
१५—कथोपकथन १६१
१६—देश काल १६६
१७—भाषा-शैली २०१
१८—उद्देश्य २१०
१९—त्रुटियाँ २१४
२०—असावधानियां २१७
२१—उपन्यास-साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान... ... ... २२०
सहायक ग्रन्थ २२४

प्रेमचन्द : उपन्यास और शिल्प

१

हिन्दी-उपन्यास-परम्परा और प्रेमचन्द

भारतवर्ष में कथा-कहानियों की परम्परा बहुत प्राचीन है। यहाँ के प्राचीनतम धर्म-ग्रंथों में कहानियाँ प्राप्त हैं। हिंदी-साहित्य में भी पद्यमय कहानियाँ वीर काव्य और प्रेमाख्यानक-काव्य में उपलब्ध हैं। उनमें कहानी अभिप्रेत लक्ष्य-सिद्धि का प्रयोजन है, किंतु कथा-तत्त्व भी नगण्य नहीं है; पर आधुनिक युग में उपन्यास का जो रूप मान्य है, उसमें कथा-तत्त्व मात्र ही अपेक्षित नहीं है। आधुनिक उपन्यास जीवन की व्याख्या करता है और उसके क्षेत्र-विस्तार में सहायक होता है। इस दृष्टि से हिंदी उपन्यासों का जन्म अधिक पुराना नहीं है, क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य के विकास के साथ उपन्यासों का विकास सम्बंधित है। हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यास कलागत त्रुटियों से भरपूर हैं और बहुत उदात्त ध्येय को लेकर नहीं चले हैं; पर उनमें जीवन और जगत् के अनुभवों को अभिव्यक्त करने की आकांक्षा सर्वत्र झलकती है। इसलिए हिंदी-उपन्यासों की परम्परा में इनका उल्लेख अनिवार्य हो जाता है।

इंशाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' को कुछ आलोचकों ने हिंदी-उपन्यासों के प्रारम्भिक रूप का परिचय देने वाली लम्बी कहानियाँ बताया है, किंतु हिंदी के आदि उपन्यासों में लाला श्री निवासदास (१८५१ १८८७) का 'परीक्षा गुरू' उल्लेखनीय है। इसके पूर्व कई उपन्यास लिखे जा चुके थे, किंतु आलोचकों ने इसे हिंदी के प्रथम उपन्यास का गौरव प्रदान किया है। इसके विषय में लाला जी का मत था कि 'अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी।' इसमें विषय की नवीनता की ओर संकेत अवश्य है जो साहित्यिक दृष्टि-विस्तार के लिये अभीष्ट था। इसकी कथा लालाजी के सामयिक समाज की है

जिसमें यह दिखाया गया है कि एक धनी का पुत्र कुसंगति से किस प्रकार बिगड़ जाता है और सच्चे मित्र की सहायता से किस प्रकार सुधर जाता है। यद्यपि इसकी कथावस्तु एक लघुकथा के लिए उपयुक्त है, पर लेखक के जीवन-अनुभव ने चरित्र-चित्रण के प्रयत्न में उसे सामान्य सफलता अवश्य दी है। नीति और उपदेश की ओर लेखक की प्रबल प्रवृत्ति के कारण रचना की कलात्मकता को बड़ा आघात पहुँचा है और कृत्रिमता का समावेश हो गया है। आधुनिक उपन्यास-कला के पारखी इसमें त्रुटियाँ दिखाने के साथ यह भी नहीं विस्मृत कर सकते कि प्रारम्भिक रचनाओं में यह दोष प्रायः होते ही हैं। कालांतर की रचनाएँ धीरे-धीरे अपने को इनके संसर्ग से मुक्त करती चलती हैं। 'परीक्षा गुरू' की सफलता-असफलता पर मतदान की अपेक्षा जो बात अधिक महत्वपूर्ण है उसे नहीं भूलना है—यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है।

हिंदी के आदि उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट का नाम उल्लेख्य है। भट्ट जी (१८४४-१९१४) ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास लिखे। दोनों उपन्यास सोद्देश्य हैं। सद्वृत्ति, सदाचार, चरित्र-बल और नैतिक विजय आदि आदर्शों के प्रति भट्टजी की निष्ठा उन्हें उपन्यासकार की अपेक्षा उपदेशक अधिक बना देती है। 'सौ अजान एक सुजान' के अंत में तो लेखक स्पष्ट शब्दों में उपदेशक बन गया है। इन त्रुटियों के होते हुए भी हिंदी-उपन्यासों के विकास-अध्ययन की दृष्टि से भट्ट जी के उपन्यासों का महत्व है। 'नूतन ब्रह्मचारी' के सम्बंध में एक आलोचक का मत यहाँ उद्धृत किया जाता है—"दोषों के होते हुए भी उपन्यास-कला के विकास में इस कृति का विशेष स्थान है। यथार्थ-चित्रण की ओर इसमें काफी झुकाव दिखाई देता है। भाषा पात्रों के अनुकूल गढ़ी गई है। नौकर, दासी, चौकीदार आदि अवधी में बोलते हैं। पुलिस के आदमी उर्दू में। पढ़े-लिखे बाबू लोगों की भाषा में अँग्रेजी का भी पुट रहता है। 'मैं आप लोगों के प्रयोजन को सेकेण्ड करता हूं' इत्यादि। कहीं-कहीं पात्र नाटकों की भांति स्वतः और प्रकाश्य दोनों प्रकार से बातचीत करते हैं। भट्ट जी ने अपने उपन्यास को देश-काल की सीमाओं में मजबूती से बांधा है। उन्होंने पृष्ठभूमि

रामविलास शर्मा : भारतेंदु युग, पृष्ठ १३५, १३६।

के चित्रण के लिए अवध का भौगोलिक वर्णन आवश्यक समझा है ......भट्टजी कोरे किताबी विद्वान नहीं थे। स्त्रियों के सूप फटकारने और हाँथ नचा कर वाग्वाण बरसाने को उन्होंने उतने ही ध्यान से सुना था जितने ध्यान से मेघदूत पढ़ा था।"[1]

इन्हीं दिनों राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिंदू' नामक उपन्यास लिखा। डा॰ शर्मा इसकी समालोचना करते हुए लिखते हैं—"इस पुस्तक की विशेषता इस बात में है कि लेखक ने सेठ साहूकारों के लड़कों के बनने-बिगड़ने की कहानी छोड़ कर एक ऐसी समस्या को अपनी कथावस्तु बनाया है जिसका सम्बंध किसी वर्ग से नहीं वरन् पूरे समाज से है। हिंदुओं के बारे में लिखते हुए वे मुसलमानों को नहीं भूले और उनमें साम्प्रदायिक और देश-भक्त दोनों प्रकार के मुसलमानों का चित्रण किया है। दो मित्र गोवध बंद करने के लिये आंदोलन करते हैं, उनका साथ एक मुसलमान सज्जन भी देते हैं। अन्य कट्टर पंथी मुसलमान षड़यंत्र करके इन लोगों को मार डालना चाहते हैं और अंत में दोनों ही ओर के कुछ लोग मारे जाते हैं। यही उसकी कथा है।"[2] कथा-वस्तु के संगठन और पात्र-योजना की दृष्टि से 'निःसहाय हिंदू' निर्दोष रचना नहीं है, किंतु सामाजिकता की दृष्टि से आलोचकों ने इसका महत्व स्वीकार किया है।

सन् १८९१ के लगभग देवकीनंदन खत्री के लोकप्रिय उपन्यास 'चंद्रकांता' का प्रकाशन हुआ। इनके उपन्यासों ने पाठकों की संख्या बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। यह कहना तो अब पुनरुक्ति मात्र है कि 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' पढ़ने के लिये ही अनेक व्यक्तियों ने हिंदी सीखी। प्रेमचंद ने अपने 'उपन्यास' नामक निबंध में लिखा है कि देवकीनंदन खत्री ने अपनी इन प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियों का बीजांकुर फारसी के 'तिलस्म हौसरुबा' से पाया होगा। जो कुछ भी हो किंतु इसमें संदेह नहीं कि पाठकों को 'चंद्रकांता' मौलिक रचना का आनंद देने में समर्थ हुआ। 'चंद्रकांता' और 'संतति' में राजा, रानियों, राजकुमारों उनकी प्रेमिकाओं और ऐयारों के क्रिया-कलाप का चित्रण है। कहानी बहुत कुछ इस ढङ्ग की है—राजकुमार का राजकुमारी पर मोहित होना, उसे पाने

---

[2] रामविलास शर्मा : भारतेंदु युग, पृष्ठ १३९

का प्रयत्न करना और अनेक विघ्न-बाधाओं को दूर करके उसे प्राप्त करना। जन-प्रचलित कथाओं की प्रकृति पर निर्मित ये कथानक दीर्घ कालव्यापी कथा-परम्परा में एक नई वस्तु सन्निविष्ट करते हैं—तिलस्म का रहस्य। भूगर्भ में छिपे तिलस्मों की अनंत सृष्टि कर देवकीनंदन की कल्पना-शक्ति ने अत्यंत कुतूहलपूर्ण कथा-साहित्य की सृष्टि की। इनके उपन्यासों में नायक-नायिकाओं के कार्य कलापों की अपेक्षा उनके ऐयारों के कारनामें अधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं। तेजसिंह और भूतनाथ ऐयारी के 'करतब' दिखाकर हमें चकित कर देते हैं। ऐयारों के झोलों का आकर्षण तो और भी बढ़ा-चढ़ा है जिसके अन्दर रूप-परिवर्तन का सामान और लखलखा ऐसी आश्चर्यजनक वस्तुएँ रहती हैं। तिलस्मी नेजे और तिलस्मी तलवारें भी अद्भुत हैं।

देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में रोचकता और कुतूहल-तत्त्व तो यथेष्ट हैं, किंतु चरित्र-चित्रण आदि मुख्य औपन्यासिक तत्वों की ओर दृष्टि नहीं थी। चरित्र उपन्यासकार के सङ्केत पर कठपुतलियों की भांति काम करते हैं; उनका रञ्चमात्र भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उपन्यासकार एक के उपरांत दूसरी चमत्कारिक-घटना की सृष्टि करता चलता है। उसका कथानक कल्पनाप्रभूत चमत्कारपूर्ण घटनाओं का घटाटोप है। कुतूहल की वृद्धि में सहायक अतिरंजित और अलौकिक घटनाएँ इतने प्रचुर परिणाम में हैं कि आधुनिक बुद्धिवादी पाठक को अस्वाभाविकता के कारण अरुचि हो सकती है। जीवन के कुछ सीमित पक्षों के अन्तर्गत देवकीनंदन की कौतूहलप्रियता और काल्पनिकता ने सम्भव-असम्भव, स्वाभाविक-अस्वाभाविक की चिंता न कर यथेष्ट दौड़-धूप की है। इसमें संदेह नहीं कि देवकीनंदन खत्री की कृतियों ने उपन्यास प्रेमियों की संख्या बढ़ाई, किंतु वे स्थायी साहित्य की वृद्धि नहीं कर सकीं। जिस प्रकार ये रचनाएँ हल्की हैं, उसी प्रकार इनकी भाषा भी चलती हिन्दुस्तानी है।

घटना-प्रधान उपन्यासों की ओर जनरुचि देखकर गोपालराम गहमरी अपने जासूसी उपन्यास लेकर पाठकों के सम्मुख आए। जासूसी उपन्यास वस्तुतः विदेश की देन हैं। इंगलैंड की स्काटलैंड यार्ड नामक विश्वविश्रुत पुलिस संस्था के जासूसों की बुद्धिचातुरी एवं साहस को लेकर अँग्रेजी भाषा में अनेक अच्छे जासूसी उपन्यास लिखे गए। उनसे प्रभावित होकर हिंदी के

कुछ लेखकों ने इस ओर ध्यान दिया। इनमें गोपालराम गहमरी का नाम उल्लेख्य है। इन्होंने 'जासूस' नामक एक पत्र भी निकाला था जिसमें इनके उपन्यास धारावाहिक रूप से छपते थे। यद्यपि जासूसी उपन्यास भी घटना-वैचित्र्य को प्रधानता देते हैं तथापि ऐयारी उपन्यासों की अपेक्षा इनके पात्रों का कार्य-व्यापार बुद्धिग्राह्य होता है। इनमें अलौकिकता के लिये स्थान नहीं है। घटना-चमत्कार भी ऐयारी उपन्यासों की भाँति अस्वाभाविक नहीं होता। हाँ, संयोग और आकस्मिकता के प्रयोग पर कोई बंधन नहीं है। गहमरी जी के उपन्यासों में जनसाधारण द्वारा समझे जाने योग्य भाषा प्रयुक्त हुई है। आगे चलकर अन्य लेखकों ने भी जासूसी-रचना में योग दिया, किंतु हिन्दी जासूसी उपन्यासों में अँग्रेजी-उपन्यासों का सा रचना-कौशल और प्रभावात्मकता दृष्टिगत नहीं होती।

हिंदी-उपन्यासों के आदिकालीन प्रमुख लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अपने जीवनकाल में इन्होंने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी ने जितने उपन्यास लिखे, उतने कदाचित् आज तक हिंदी में कोई अन्य व्यक्ति नहीं लिख पाया है। आदिकाल के उपन्यासकारों में गोस्वामी जी का विशिष्ट स्थान माना जाता है; क्योंकि विषय की दृष्टि से उन्होने हिंदी के आनेवाले कलाकारों का पथ-प्रशस्त किया। इन्होंने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। यह सच है कि वह अपने युग की सीमा में बँधे थे और उन सब दोषों से मुक्त नहीं थे जिन्होंने तत्कालीन रचनाओं में स्थायित्व नहीं आने दिया; तथापि मौलिकता की दृष्टि से इन्हें अपने युग का सबसे बड़ा कथाकार मानना पड़ता है। इसमें संदेह नहीं कि देवकीनंदन अधिक जनप्रिय थे, किंतु नवीन युग के निर्माण का सूत्रपात किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने सामाजिक उपन्यासों द्वारा किया था।

गोस्वामीजी के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करने पर भी उन दोषों एवं त्रुटियों के प्रति आँख नहीं बंद की जा सकती जो उनके उपन्यासों में प्राप्त हैं। 'तारा' गोस्वामी जी का ऐतिहासिक उपन्यास है, किंतु इसमें पात्रों के साथ न तो न्याय किया गया है और न काल-दोष का ध्यान रखा गया है। गोस्वामीजी अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वासनात्मक चित्रण की ओर विशेष प्रवृत्त हैं। 'त्रिवेणी' उनका सामाजिक उपन्यास है। इसमें भी

उपन्यासकार को सफलता नहीं मिली है। इसके पात्र सजीवता से रहित हैं और कथा-प्रवाह नगण्य है। गोस्वामीजी के प्रथम उपन्यास 'कुसुम कुमारी' (१६०१) पर डाक्टर श्रीकृष्णलाल के विचार देखिये—"यह प्रेरणा रीति-कवियों से मिली, जिन्होंने अपने मुक्तक काव्यों के लिये नायिका-भेद एक ऐसा विषय चुना जिसका सम्बंध मूलरूप से नाटकों से ही था। किशोरीलाल स्वयं उसी परम्परा के कवि थे। उन्होंने नायिका-भेद तथा अन्य रीति-साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। इसलिये जब वे उपन्यास लिखने बैठे, तब उन्हें केवल एक सुसंगत प्रेम-कहानी की कल्पना करनी पड़ी और इसमें उन्होंने प्राचीन कवियों की परम्परा के अनुसार प्रेम-सम्बंधी विविध प्रसंगों को यथावसर अनेक अध्यायों में गद्यात्मक भाषा में जड़ दिया। उनकी 'तारा', 'अँगूठी का नगीना' तथा अन्य उपन्यास हर्ष और राजशेखर के संस्कृत प्रेम-नाटकों का स्मरण दिलाते हैं। परम्परागत प्रेम, अभिसार, मान, परिहास इत्यादि इसमें भरे पड़े हैं।"[१] गोस्वामीजी अपने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण और समाज-दर्शन के प्रयत्न में प्रायः असफल रहे हैं। गंदे वासनात्मक चित्रण की ओर उनकी प्रवृत्ति की प्रबलता अनेक स्थलों में दृष्टिगत होती है। उनकी वैयक्तिक रुचि-अरुचि और मानसिक गठन के कारण उनके संकुचित दृष्टि-कोण ने भी उनकी रचनाओं की कलात्मकता नष्ट कर दी है। श्री जनार्दनझा 'द्विज' ने इनकी आलोचना करते हुए बड़े अच्छे ढंग से लिखा है—"उनकी रचना में साहित्यिक सौंदर्य का अभाव नहीं है, किंतु वह सौंदर्य कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक चटकीला और कुप्रभावोत्पादक हो गया है। उनके रस-संचार की प्रणाली कुछ-कुछ असात्विक भावों और दृश्यों को भी अपने साथ रखती हुई सी दीख पड़ती है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने मौलिकता के नाते हिंदी के इस क्षेत्र में बड़ी मुस्तैदी से काम किया और उनमें उपन्यासकार होने की सच्ची क्षमता थी। यह दूसरी बात है कि उस क्षमता को वे बहुत अच्छे ढंग से बहुत अच्छी रुचि के साथ काम में न ला सके।"[२]

किशोरीलाल गोस्वामी के समय में ही कुछ अन्य लेखक उपन्यास-

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्रीकृष्णलाल, पृष्ठ २७८
२ प्रेमचंद की उपन्यास कला—जर्नादन झा 'द्विज', पृष्ठ ८

रचना में प्रवृत्त थे ; किंतु उनकी रचनाओं का विशेष महत्व नहीं है। सन् १८९९ में प्रसिद्ध कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और १९०७ में 'अधखिला फूल' नामक उपन्यास प्रस्तुत किये। दोनों उपन्यास भाषा-प्रयोग की दृष्टि से लिखे गये थे, अतएव उपन्यास-कला की उपेक्षा असम्भव नहीं है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तो अपने नाम से ही अपने उद्देश्य को स्पष्ट करता है। इसमें उपाध्यायजी ने हिन्दी भाषा के ठेठ शब्दों को प्रयुक्त किया है। मेहता लज्जाराम शर्मा ने भी कुछ उपन्यास लिखे जिनमें 'धूर्त रसिकलाल' (१८९९), 'हिंदू गृहस्थ', 'बिगड़े का सुधार' और 'आदर्श हिंदू' (१९१५) उल्लेखनीय हैं। ये उपन्यास अपने नाम से ही उद्देश्य-ग्रस्त होने की सूचना देते हैं। शर्माजी के उपन्यासों में नैतिकता, हिंदू-समाज के पुरातन रूप का उत्कर्ष एवं प्रतिष्ठा अंकित की गई है। उपन्यास के कलात्मक रूप के दर्शन नगण्य हैं। वस्तुतः उपाध्यायजी और शर्माजी को उपन्यासकार मानना भूल होगी। औपन्यासिक-प्रतिभा और क्षमता का इनमें सर्वथा अभाव है।

बङ्गला के भाव-प्रधान उपन्यासों को देखकर हिंदी में बाबू ब्रजनंदन सहाय ने इस ओर प्रयत्न किया। उन्होंने 'सौंदर्योपासक' और 'राधाकांत' नामक दो भाव-प्रधान उपन्यास लिखे। भाव-प्रधान उपन्यासों में भाव-व्यञ्जना के सम्मुख चरित्र-चित्रण ऐसे महत्वपूर्ण तत्त्व की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। लोकरुचि और उपन्यास कला की कसौटी पर इन रचनाओं का अधिक मूल्य नहीं ठहरता। भाव-प्रधान उपन्यासकारों में ठाकुर जगमोहनसिंह की गणना भी है। इनका 'श्यामा स्वप्न' उपन्यास उल्लेख्य है। इसमें भी चरित्र-चित्रण की उपेक्षा की गई है।

आदियुगीन हिंदी-उपन्यासों की संख्या कम न थी ; किंतु वे साहित्यिक गरिमा से रिक्त थे। घटना-प्रधान उपन्यासों की प्रधानता थी, जिनमें चमत्कार और विषयातिरञ्जन अस्वाभाविकता की सीमा तक पहुंच गया था। इस उपन्यास-वाङ्मय से कुछ लोगों का मनोरंजन अवश्य हुआ ; किंतु स्थायी साहित्यिक कृतित्व का पथ प्रशस्त न हुआ। ये रचनाएँ साहित्य को अभीष्ट गति भी न दे सकीं। बङ्गला और मराठी के अनेक औपन्यासिकों की कृतियाँ अनूदित हो हिंदी में लोकप्रिय हो चुकी थीं, अतः स्वाभाविक था कि हिन्दी के उपन्यासकारों पर उनका प्रभाव पड़ता। किशोरीलाल गोस्वामी पर

बङ्गला के सामाजिक उपन्यासों का प्रभाव माना जाता है, पर अनुवाद मौलिक रचना का स्थान नहीं ले सकते। हिन्दी-उपन्यासों के विकास में उनका योग मानने पर भी अपनी भाषा का मौलिक उपन्यास-वाङ्मय प्रस्तुत आलोचना का अभीष्ट है। आदिकाल से उपन्यासों में चरित्र-चित्रण ऐसे मुख्य वस्तु की उपेक्षा की गई है, कथोपकथन और समाज चित्रण का स्थान गौण रहा। भाषा में भी निश्चित आदर्श न था। शैली भी उसी के अनुरूप थी। एक दो लेखकों में लगन और प्रतिभा थी। किंतु उनकी वैयक्तिक रुचि-अरुचि ने उनकी रचनाओं का मूल्य नगण्य कर दिया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्व अधिक है, साहित्यिक कम।

साहित्य-क्षेत्र में प्रेमचंद (१६०४—१६३६) के पदार्पण से हिंदी-कथा-साहित्य में युगांतर उपस्थित हुआ। प्रेमचंद आधुनिक उपन्यासों के प्रवर्तक हैं। उनकी रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन मात्र न था, बल्कि उनका मानव-जीवन और समाज में उपयोग वांछित था। प्रेमचंद का कथा-साहित्य समस्या-प्रधान है जिसमें समाज और व्यक्ति की समस्याओं का व्यापक चित्रण किया गया है। विषय की दृष्टि से भी प्रेमचंद ने नवीनता का परिचय दिया, जहाँ साहित्यिक दृष्टि-विस्तार के लिये बड़ा अवसर था। उन्होंने साहित्य को रूढ़िबद्ध परम्परा से मुक्त किया और आर्त मानवता के जीवन-चित्रण द्वारा कला की सार्थकता अनुभव की। प्रेमचंद ने स्पष्ट शब्दों में कला को जीवन शक्ति से अनुप्राणित देखने में विश्वास प्रकट किया। न केवल उपन्यास-साहित्य में वरन् समस्त हिंदी-साहित्य में प्रेमचंद ने नवीन और स्वस्थ साहित्यिक परम्परा का प्रवर्तन किया, जो समाज की आधारभूत मानवता के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है।

प्रेमचंद ने सर्वप्रथम हिंदी-उपन्यासों के कलात्मक विकास का अच्छा दृष्टांत प्रस्तुत किया। चरित्र चित्रण, कथोपकथन और भाषा-शैली की दृष्टि से उन्होंने हिंदी को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने चरित्र-चित्रण को उपन्यास की आधार शक्ति मानते हुए लिखा है—"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है.........उपन्यास के चरित्रों

का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहन और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा.........''[1] अपने उपन्यासों के चरित्रांकन में प्रेमचंद ने परिस्थितियों का प्रभाव दिखाकर गतिशील पात्रों की सृष्टि की। कुछ आदर्शवादी पात्रों को छोड़कर उनके चरित्र मानव-प्रकृति की बहुमुखी अंतःवृत्तियों का गहरा प्रभाव अंकित कर जाते हैं। उपन्यासों में कथोपकथन के महत्व पर भी उनकी दृष्टि थी। उनके कथोपकथन स्वाभाविकता के अपूर्व उदाहरण हैं। उपन्यासों में प्रेमचंद ने जैसी सरल, सरस, सजीव एवं प्रभावोत्पादक भाषा शैली का प्रयोग किया, वैसी आज तक दूसरा उपन्यासकार नहीं कर पाया है। पूर्ववर्ती उपन्यासों में जिस सहज गतिशील प्रवाह का अभाव दृष्टिगत होता है, वह प्रेमचंद की कृतियों में नहीं है।

सन् १८९४ के लगभग प्रेमचंद का लघुकाय उपन्यास "प्रेमा" प्रकाशित हो चुका था; किंतु १९१४ से १९१६ का युग प्रेमचंद के साहित्य-सृजन का वास्तविक युग है जिसका आरम्भ 'सेवासदन' से और 'गोदान' से होता है। एक साहित्यिक और विचारक के नाते प्रेमचंद अपने युग की प्रवृत्तियों को साहित्यिक चेतना के संसर्ग में समझते रहे थे। उनके युग की राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों को उनके साहित्य में पूरी पैठ मिली है। 'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'सेवासदन' और 'गबन' में प्रेमचंद ने सामाजिक समस्याओं और प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात किया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं की समस्या और 'सेवासदन' में वेश्याओं की समस्या के अतिरिक्त मध्यवर्ग की दैनिक आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण किया गया है। 'गबन' में समाज की अपेक्षा व्यक्ति की समस्या मुख्य है। रमानाथ का मिथ्या प्रदर्शन और जालपा का आभूषण-प्रेम जिन विषम परिस्थितियों की सृष्टि करता है, उनका कलात्मक ढंग से चित्रण किया गया है। प्रेमचंद ने सामयिक [illegible] रूप से गाँधीजी के आंदोलनों को अपने उपन्यासों की विषय-वस्तु बनाया है। 'कर्मभूमि' में राजनीतिक जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। आर्थिक प्रवृत्ति-चित्रण में प्रेमचंद का ध्यान जमींदार-किसान सम्बंध पर विशेष रूप से गया है। यह शोषण का सम्बंध था। जमीदारों, अधिकारी वर्ग और महाजनों के अनवरत शोषण ने तो कृषक वर्ग की पीठ तोड़ दी थी। उस पर आर्थिक

---

[1] प्रेमचंद—कुछ विचार, पृष्ठ ३८, ५४।

मंदी का संकट उसे और ले बैठता था। देहात में रहकर प्रेमचंद ने देखा था कि किसान की मृत्यु पर सामंती और पूँजीवादी शक्तियाँ जी रही थीं। बेगार, बेदखली, नजराना और लगान के नाम पर सामंती शक्ति के अवशिष्ट भूमिपति निर्दयतापूर्वक कृषक-वर्ग का शोषण कर रहे थे और उधर उद्योगीकरण का विकास उन्हें पूँजीवाद के शोषण का लक्ष्य बना रहा था। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने दिखाया है कि बढ़ते हुए उद्योग-धंधे के लिए कृषकों की भूमि छीनी जा रही थी। इस नोच-खसोट से भी शोषक-वर्ग की इच्छा पूरी न होने पर किसानों के उत्पीड़न में अधिकारी-वर्ग का सहयोग लिया जाता। चारो ओर से प्रहार-सहते-सहते किसान जर्जर हो गया था। उसे मनुष्य लूटता था, नियति रुलाती थी। 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में प्रेमचंद ने यही दिखाया है। जीवन का परिश्रम मार, दमन और क्षुधा-पीड़ित पेट की ज्वाला में भस्म हो रहा था। अशिक्षा, रूढ़िवादिता और निर्धनता से जड़ मानवता का जिन क्रूरतम उपायों से शोषण किया जा रहा था उसे प्रेमचंद ने देखा था। साथ ही उन्होंने यह भी देखा था कि कृषक, वर्ग किसान आंदोलनों के फलस्वरूप जाग रहा था, और अधिकारों के लिए उठ कर दमन की शक्तियों का सामना कर रहा था। 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में तद्विषयक चित्रण हुआ है। जीवन-मृत्यु के संघर्ष में व्यस्त इस मानवता के प्रति प्रेमचंद की अपार सहानुभूति थी। उन्होंने अपने उपन्यासों में बड़े विस्तार से इस वर्ग के जीवन के चित्र अंकित किये हैं। अपनी कला को दलित मानवता की उद्धार-साधना का माध्यम बना कर प्रेमचंद ने जागरूक कलाकार के दायित्व का निर्वाह किया था।

यहाँ हमारा यह मन्तव्य है कि प्रेमचंद ने हिंदीउपन्यासों की परम्परा में नवीन युग का सूत्रपात किया और स्थायी साहित्य कों अमूल्य कृतियाँ प्रदान कीं। आदिकालोन उपन्यासों के विपरीत प्रेमचंद के उपन्यासों में कला के ऊँचे स्तर का परिचय मिलता है। हिंदी-उपन्यास परम्परा को प्रेमचंद ने जिस रूप में स्थायित्व प्रदान किया और गति दी उस रूप में दूसरा उपन्यासकार नहीं दे पाया है। वस्तुतः प्रेमचंद ने आधुनिक उपन्यासों की परम्परा का प्रवर्तन किया था। यह परम्परा पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा जीवन और समाज के अधिक निकट थी। हिंदी-उपन्यासों में यदि कहीं

भी महाकाव्यत्व की गरिमा मिलती है, तो प्रेमचंद के उपन्यासों में । उपन्यास सच्चे अर्थ में महाकाव्य के उत्तराधिकारी हैं। जीवन की जितनी व्यापक व्याख्या प्रेमचंद के उपन्यासों में प्राप्त है, उतनी भारतीय भाषा में रचित बहुत कम उपन्यासों में दृष्टिगत होती है। प्रेमचंद जीवन के सबसे बड़े उपन्यासकार थे, जिन्होंने "जीवन समझौते पर टिका है" सिद्धांत के आधार पर यथार्थ और आदर्श के समन्वय का प्रयत्न किया ।

२

वरदान

'वरदान' (१६०४) प्रेमचन्द की प्रारम्भिक रचना है। कालक्रम से यह 'प्रेमा' या 'प्रतिज्ञा' (१६०४) के बाद का उपन्यास है, पर 'प्रतिज्ञा' के परिमार्जित रूप की अपेक्षा इसमें प्रौढ़त्व कम है। अतएव, प्रेमचंद के उपन्यासों के विकास-अध्ययन की दृष्टि से 'वरदान' को 'प्रतिज्ञा' से पहले रखना उचित समझा गया है। इस लघुकाय उपन्यास में मध्यवर्ग के जीवन के चित्र प्रस्तुत किये गए हैं, पर इसमें वर्ग की मुख्य प्रवृत्तियों का पूर्ण चित्रण नहीं किया गया है, क्योंकि इसका प्रतिपाद्य विषय प्रेम और कर्त्तव्य का संघर्ष चित्रण है। मध्यवर्ग का जीवन पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित किया गया है। अभिप्रेत लक्ष्यसिद्धि के निमित्त उपन्यासकार ने जिन घटनाओं और पात्रों की सृष्टि की है, उनमें बल नहीं है। इसीलिये उपन्यास की प्रभावात्मकता में स्थायित्व नहीं है। प्रेमचंद की आदर्शनिष्ठा भी रचना के संगठित प्रभाव में बाधक है। वह त्याग और तपस्या का जो दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं उसे असंभव नहीं कहा जा सकता, पर यह जीवन्त कला की शक्ति-सामर्थ्य को कुंठित अवश्य करता है।

कथा

मुंशी शालिग्राम के परिवार में उनकी पत्नी सुवामा और पुत्र प्रतापचंद्र हैं। वर्षों के सुखमय जीवन के बाद सुवामा को दुःख से पाला पड़ा। मुंशी शालिग्राम का सांसारिक सम्बंध दिखावा मात्र था। वस्तुतः उनकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर थी। कुंभ के मेले में सम्मिलित होने के बहाने वह प्रयाग गए, जहां से वापस नहीं आए। सुवामा पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। मुंशीजी उदारवृत्ति के कारण सहस्रों का ऋण छोड़ गये थे। सुवामा ने इसका नीलाम कराके ऋण चुकाया। आधा मकान भी भाड़े पर उठा दिया। उसके किरायेदार सञ्जीवनलाल हैं जो ठेकेदारी करते हैं। उनकी पुत्री बृजरानी

(बिरजन) और प्रताप में मैत्री हो गई। वयस्क होने पर मैत्री दृढ़ अनुराग में बदल गई, पर बृजरानी का विवाह नगर के डिप्टी श्यामाचरण के आवारा पुत्र कमलाचरण के साथ हो गया। प्रताप को इससे गहरा धक्का लगा। उसने बृजरानी को विस्मृत करना चाहा, पर असफल रहा। उधर बृजरानी ससुराल चली गई। उसकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर उसका पति कमला चरण अपना सुधार करने लगा। वह शिक्षित होने का प्रयत्न करता है। पढ़ने के लिये उसे प्रयाग जाना पड़ा। यहाँ उसकी मनोवृत्तियों को पुनः छूट मिल गई और वह अनभीष्ट पथ पर चलने लगा। वह एक माली की लड़की पर डोरे डालने लगा। एक दिन वह माली द्वारा रँगे हाथों पकड़ा गया। वहाँ से भाग कर स्टेशन पहुँचा। चलती गाड़ी में टिकट चेकर को पुलिस का आदमी समझ कर वह इतना भयभीत हुआ कि गाड़ी से कूद पड़ा। उसकी मृत्यु हो गई।

पति की मृत्यु के बाद बृजरानी की समस्त आशा-आकाक्षाएँ मिट गईं। उसके मनोभाव कविता के रूप में प्रकट होने लगे। इस क्षेत्र में उसे बड़ी सफलता मिली। प्रताप के हृदय में कुछ समय तक प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व चलता रहा। अन्ततोगत्वा वह संन्यासी हो गया। उसने समाज-सेवा द्वारा अल्पकाल में ही विपुल कीर्ति अर्जित की। इधर प्रताप के पीड़ित हृदय को सांत्वना देने के लिये बृजरानी ने अपनी सखी माधवी को उसकी ओर उन्मुख किया और उसके हृदय में प्रताप के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। माधवी प्रताप को पाने के लिये धैर्य से प्रतीक्षा कर रही थी। प्रताप देशाटन करता हुआ काशी आया। यहाँ माधवी से मिलने पर उसने उसकी मनोभावना समझ ली। उसके असीम धैर्य, सहनशीलता और अनुरागाधिक्य से प्रताप का हृदय भींज गया। वह माधवी के लिये सांसारिकता में पुनः प्रवेश करने के निमित्त प्रस्तुत हो जाता है, पर माधवी का प्रेमादर्श बहुत ऊंचा था। वह सांसारिकता की सीमा में बंध कर प्रताप को समाज सेवा से विमुक्त नहीं करना चाहती। प्रेम के प्रतिदान की अपेक्षा न करके वह संन्यासिनी हो जाती है।

वस्तु-शिथिलता आरम्भ से अंत तक परिव्याप्त है। उपन्यास का प्रथम परिच्छेद कथानक के विकास की दृष्टि से व्यर्थ है। इसका वस्तु-विकास में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। वस्तुतः यह परिच्छेद उपन्यास के नाम-करण के निमित्त कथानक के प्रारम्भ में जोड़ा गया ज्ञात होता है। इसमें प्रेमचंद की सेवानिष्ठा का परिचय अवश्य मिलता हैं, पर कथा-विकास में इसका कोई महत्व नहीं है। यदि प्रथम परिच्छेद न भी रहे, तब भी उपन्यास की वस्तु शृङ्खला टूटती नहीं। इसके हटा देने पर उपन्यास में किसी परिवर्तन की वांछनीयता का प्रश्न भी नहीं उठता। इसी से प्रथम परिच्छेद की व्यर्थता सिद्ध हो जाती है। उपन्यास के कार्य-व्यापार में इससे कोई सहायता नहीं मिलती, क्योंकि यह वस्तु का अविभाज्य अङ्ग नहीं है। इसके अतिरिक्त इसे अलौकिक संस्पर्श से चमत्कारयुक्त करने की प्रवृत्ति भी वांछनीय नहीं कही जा सकती।

कथा-विकास में उपन्यासकार ने अनेक स्थलों पर अस्वाभाविक पद्धति का प्रयोग किया है। कमलाचरण की मृत्यु, उसके पिता का देहांत तथा कुछ मात्रों का बात की-बात में संन्यासी हो जाना अरुचि के साथ कृत्रिम कथा-विकास की छाप छोड़ जाता है। उपन्यासकार की पूर्व-निश्चित योजना कथा के सहज-स्वाभाविक विकास का प्रत्यख्यान करती है। प्रताप के सन्यासी हो जाने तथा बृजरानी के कवियित्री बन जाने पर कथानक का स्वाभाविक अन्त हो जाता है; पर प्रेमचंद ने कथानक को आगे घसीटा है और माधवी के आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति का साधन बनाया है। इससे वस्तु की प्रभा-वान्विति खंडित हो गई है। यदि माधवी की कथा को इतना महत्व देना ही था तो उसके लिए पहले से ही भूमि प्रस्तुत कर लेना उचित होता। इसी लिए कथा-संप्रसार और भी अविश्वसनीय और अस्वाभाविक हो गया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में उनकी आदर्शप्रियता ने कुछ स्थलों पर ऐसी ही त्रुटियां प्रस्तुत की हैं, जिससे वस्तु की कलात्मकता अक्षुण्ण नहीं रहती।

'वरदान' प्रेमचंद का प्रारम्भिक उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार संतुलित कथावस्तु की अपेक्षा सनसनी उत्पन्न करने वाली घटनाओं के प्रति अधिक दत्तचित्त है। इस उपन्यास में ऐसी घटनाओं का आधिक्य है जिससे कथा-संगठन का लक्ष्य अप्राप्त रह जाता है। इस लघुकाय उपन्यास के सीमित

कथा-प्रसार में संगठन की कार्यकुशलता दिखाने का बड़ा अवसर था, पर इस ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया। इतना अवश्य है कि प्रेमचंद की सजीव और रोचक वर्णनशैली के कारण ये दोष छिप से जाते हैं।

पात्र

'वरदान' की कथा-वस्तु के कारण पात्रों का व्यक्तित्व पूर्ण विकसित नहीं हो पाया है। उपन्यासों में घटनाबाहुल्य पात्रसृष्टि के सम्यक् विकास में बाधक होता है। इसीलिए 'वरदान' का चरित्रांकन अस्फुट रह गया है। इस उपन्यास के चरित्र सजीवता और विकास की दृष्टि से कोई विशिष्टता नहीं रखते। प्रेमचंद ने चरित्र-चित्रण में माप-तौल की प्रणाली अपना कर उन्हें निर्जीव कर दिया है। कमलाचरण का चरित्र सजीवता से पूर्णतया असंपृक्त नहीं है, पर उसकी जीवन-यात्रा उपन्यासकार के एक संकेत पर समाप्त हो जाती है। 'वरदान' के पात्रों का अस्तित्व प्रेमचंद की लक्ष्यसिद्धि के अधीन है। इसीलिए आवश्यकतानुसार वह स्वाभाविक-अस्वाभाविक ढंग से उन्हें हटाते चलते हैं। इस सम्बंध में कमलाचरण की आत्महत्या का उल्लेख पर्याप्त है। जिन परिस्थितियों में प्रेमचंद ने उसे आत्महत्या के लिए बाध्य किया है, वे इतने बड़े 'क्लाइमेक्स' के लिए पर्याप्त नहीं हैं। कमलाचरण को प्रेमचंद हटाना चाहते हैं, इसीलिए उसे चलती गाड़ी से कूद कर मरना पड़ता है।

"वरदान" की पात्र सृष्टि सबल नहीं है। उसमें प्रभावक्षमता भी नहीं है। प्रेमचंद के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ पात्रों के चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके उन्होंने पूर्ववर्ती हिंदी उपन्यासों की जड़-पात्र-सृष्टि की अपेक्षा स्वाभाविकता एवं कलात्मकता का परिचय दिया, पर इस पद्धति का पूरा उपयोग नहीं किया गया है। उपन्यास के पात्रों की समस्या का समाधान आत्महत्या और आत्मत्याग द्वारा किया गया है। यह कथागत-त्रुटि खटकती रहती है।

"वरदान" के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है :—

उपन्यास का मुख्य पात्र प्रतापचन्द्र है। बृजरानी से उसकी बाल्यकाल की क्रीड़ा-यौवन में अनुरागवृत्ति बन जाती है। दोनों एक दूसरे से प्रेम

करते है, पर नियति के प्रत्याघात से विमुक्त हो जाते हैं। बृजरानी का विवाह कमलाचरण से होने पर प्रताप के हृदय में गहरी चोट लगती है। वह इच्छा रखने पर भी बृजरानी को विस्मृत नहीं कर पाता। उपन्यासकार ने इस प्रतिक्रिया का प्रभाव अंकित करते हुए लिखा है—"उन मनोहर और सुहावने स्वप्नों का इस कठोरता और निर्दयता से धूल में मिलाया जाना उसके कोमल हृदय को विदीर्ण करने के लिए काफी था। वह, जो अपने विचारों में बिरजन को अपना सर्वस्व समझता था, कहीं का न रहा और वह, जिसने बिरजन को एक पल के लिए भी अपने ध्यान में स्थान न दिया था, उसका सर्वस्व हो गया। इस वितर्क से उसके हृदय में व्याकुलता उत्पन्न होती थी और जी चाहता था कि जिन लोगों ने मेरी स्वप्नवत् भावनाओं का नाश किया हैं और मेरे जीवन की आशाओं को मिट्टी में मिलाया है, उन्हें मैं भी जलाऊँ। फलस्वरूप उसके हृदय में ईर्ष्या की प्रचण्ड ज्वाला जल उठी और जब इससे निस्तार मिला तब विधवा बृजरानी को पाने की प्रबल आकाँक्षा मन में जग उठी। पर बृजरानी की अन्तर्निष्ठा ने उसे लोक-सेवा का मार्ग दिखा दिया। वह संन्यासी हो गया और अल्पकाल में ही अपनी सेवावृत्ति और कर्मठता द्वारा विपुल कीर्ति का भागी बना। सेवा-धर्म उसके जीवन का धर्म हो गया। उसके चरित्र-परिवर्तन का पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कार उपन्यासकार उपस्थित नहीं कर पाया है। माधवी के लिए संन्यास त्याग के लिए प्रस्तुत हो जाने का कारण तो और भी लचर है। पर इससे क्या? प्रेमचंद तो प्रताप को समाज-सेवक बनाने और माधवी के प्रेमादर्श का अमोघ प्रभाव दिखाने के लिये कटिबद्ध थे।

प्रताप के आदर्श चरित्र के विपरीत कमलाचरण के चरित्र में यथार्थ का संस्पर्श है। उसे माँ के लाड़-प्यार ने बाल्यकाल से ही बिगाड़ दिया था। पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था में भी वह सीधा पत्र नहीं लिख सकता है। 'सबेरा हुआ, कबूतर उड़ाये जाने लगे। बटेरों के जोड़े छूटने लगे। संध्या हुई और पतंग के लम्बे २ पेच होने लगे। दर्पण, कंघी और इत्र-तेल में तो मानो उसके प्राण बसते थे'। पत्नी के रूप-सौंदर्य से प्रभावित होकर उसने अपना सुधार करना चाहा, पर न कर सका। प्रयाग में उसकी मनोवृत्तियों को छूट मिल गई, क्योंकि उसके ऊपर दृष्टि रखने वाली उसकी

पत्नी का सान्निध्य न था। वह माली की लड़की के साथ अवैध सम्बंध स्थापित कर बैठा। रंगे हाथों पकड़े जाने पर वह जान बचाकर भागा ; पर मृत्यु मुँह बाये खड़ी थी। पुलिस के भय से चलती गाड़ी से कूद पड़ने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसकी आत्महत्या प्रेमचंद का आग्रह है ; चरित्र की स्वाभाविक परिणति नहीं।

बृजरानी (विरजन) का चरित्र भी प्रताप के चरित्र की भाँति प्रेमचंद की आदर्शनिष्ठा की बलि हो गया है। उसका प्रारम्भ स्वाभाविक है। बाल्य-काल की मैत्री यौवन के अनुराग का दृढ़ आधार है, पर प्रताप के स्थान पर कमलाचरण का वरण उसके क्रूर प्रारब्ध का कठोर विधान था। प्रति-कूल परिस्थितियों में उसके जीवन की करुणा जित वेदना का सृजन करती है, उसकी स्वाभाविक निष्पत्ति के प्रति उपन्यासकार अपना दायित्व भूल जाता है। पतिगृह में उसकी अन्तरव्यापी पीड़ा को व्यक्त न करके प्रेमचंद आदर्श प्रेरित हो उसके प्रेम पर कर्त्तव्य की विजय अंकित करने लगते हैं। यह प्रेमचंद का विधान है। पर सत्य यह है कि कर्त्तव्य की वेदी पर बलि किए जाने के उपरांत भी विरजन की अन्तर्वृत्ति छिपती नहीं। पति के प्रति उसका प्रेम उसकी आंतरिक वृत्ति नहीं है, प्रेमचद का आग्रह है। स्वयं उपन्यासकार ने लिखा है—"कमलाचरण भी प्रेम करता था और बृजरानी भी प्रेम करती थी ; परंतु प्रेमियों के संयोग से जो हर्ष होता है, उसका बिरजन के मुख पर कोई चिह्न दिखाई नहीं देता था।" इसका कारण यह है कि बृजरानी के हृदय पर प्रताप का अधिकार है, पति प्रेम लोकाचार मात्र है। वह इस परिस्थिति में अपने को टाल रही थी कि कमलाचरण मर गया। उसकी मृत्यु के बाद बिरजन कवियित्री बन बैठी। यहाँ तक तो आपत्ति को टाला जा सकता है, पर जब बृजरानी माधवी को प्रताप के पीड़ित हृदय की सांत्वना के लिए प्रस्तुत करने लगती है, तब प्रेमचंद के चरित्र चित्रण का यह हकीमी ढंग अक्षम्य हो जाता है। बिरजन की यह प्रवृत्ति उसकी अपनी नहीं है, यह उपन्यासकार का आदर्शनिष्ठ आग्रह है जो कला का प्रत्याख्यान करता है।

माधवी का चरित्र-परिचय उपन्यास के अंतिम पृष्ठों में संग्रहीत है उसके द्वारा प्रेमचद ने प्रेमादर्श की पराकाष्ठा दिखाई है और निस्वार्थ प्रेम

का आदर्श प्रस्तुत किया है। अपने आदर्श की अभिव्यक्ति के निमित्त यदि प्रेमचद उपन्यास के प्रारम्भ से ही भूमि प्रस्तुत करते चलते तो माधवी के चरित्र की परिणति स्वाभाविक होती। पर प्रेमचद उपन्यास के अन्त में माधवी को जैसी महिमामयी सिद्ध करते हैं उस पर सहसा विश्वास नहीं होता। उपन्यास के सौ–सवा सौ पृष्ठों के बाद अकस्मात माधवी का चरित्र आदर्श का विराट रूप धारण कर लेता है जो स्पष्ट ही उसके कंधों पर लादा गया है।

समाज

'वरदान' का मध्यवर्गीय समाज-जीवन के सीमित पक्षों से सम्बन्ध है। उपन्यासकार समाज-चित्रण की अपेक्षा कहानी की ओर अधिक उन्मुख है। उसी के अन्तर्गत उसने प्रेम और अनमेल विवाह की समस्या पर दृष्टिपात किया है। अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण अपूर्ण है। बृजरानी और कमलाचरण का विवाह अनमेल विवाह है। उपन्यासकार ने इस समस्या का स्पर्श मात्र किया है, क्योंकि वह समस्या-चित्रण से विमुक्त हो कर्त्तव्य का आदर्श प्रस्तुत करने लगता है। परवर्ती उपन्यास 'सेवासदन' में अनमेल विवाह के घातक परिणामों का चित्रण करके प्रेमचंद ने व्यापक समाजदृष्टि का परिचय दिया है, किंतु 'वरदान' में वह समस्या की ओर इंगित मात्र कर पाये हैं।

नगर के मध्यवर्गीय समाज की अपेक्षा 'वरदान' में ग्राम जीवन और समाज का चित्रण अधिक सजीव है। 'कमला के नाम बिरजन के पत्र' नामक परिच्छेद में उपन्यासकार का उद्देश्य ही ग्रामीण समाज का चित्रण करना है। इन पत्रों में वह देहाती जीवन के बहुविध चित्र प्रस्तुत करता है। 'वरदान' के केवल अठारह पृष्ठों में ग्राम-जीवन का जैसा मार्मिक चित्रण हुआ है, वैसा सम्पूर्ण उपन्यास में अङ्कित नगर के मध्यवर्गीय जीवन का नहीं हो पाया है। ग्राम-जीवन के प्रति प्रारम्भ से ही प्रेमचंद का आकर्षण था। इसीलिये उनका ग्रामीण समाज-चित्रण जीवन्त शक्ति से अनुप्राणित है। 'वरदान' में प्रेमचद ने इस जीवन के उल्लास-विनोद के मध्य उस विषाद के अंधकार को भी देखा है जो शोषण से प्रादुर्भूत होता है। विपत्तिग्रस्त ग्रामीण मानवता का चित्र कितना मर्मभेदी है—"टूटे-फूटे

फूस के झोपड़े, मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े-करकट के बड़े-बड़े ढेर, कीचड़ से लिपटी हुई भैंसें, दुर्बल गायें.........मनुष्यों को देखो तो उनकी शोचनीय दशा है। हड्डियाँ निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है.........रात दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलतीं।" शोषण, जर्जर मानवता का यह चित्र 'गोदान' के ग्रामीण समाज की भाँति ही हमारे समाज-संगठन के आधारभूत अन्याय का प्रतीक है। यहाँ पर भी सिद्ध हो जाता है कि ग्राम-जीवन के चित्रण की ओर प्रेमचंद का झुकाव उनकी मूलवृत्तियों में से है। इसकी पूर्ण प्रतिष्ठा "गोदान" में सम्भव हुई है।

उद्देश्य

"वरदान" में प्रेमचंद ने कर्त्तव्य और प्रेम का द्वन्द्व-चित्रण किया है। प्रेम पर कर्त्तव्य की विजय अंकित करना उनका लक्ष्य है। इस उद्देश्य प्रतिष्ठा के निमित्त जिस औपन्यासिक संविधान को उन्होंने आधार बनाया है, वह सबल नहीं है। पात्र और कथानक जड़यन्त्र की भाँति उनके संकेत पर चलते हैं। इस लिये द्वन्द्व-चित्रण में जिस संघर्ष की आवश्यकता होती है, वह "वरदान" में अप्राप्त है। फलत् उद्देश्यसिद्धि के उपरान्त भी उपन्यास की प्रभावशक्ति अक्षुण्ण बनी रहती है। कर्त्तव्यमूलक आदर्शवाद की धुनमें रचना की प्रभावात्मकता कम हो गई है। इसके विपरीत यथार्थ के संस्पर्श से "वरदान" का संक्षिप्त ग्रामीण-चित्रण भी अमित प्रभावसम्पन्न हो उठा है।

३

प्रतिज्ञा

"प्रतिज्ञा" (१६०४) पूर्व-प्रकाशित 'प्रेमा' का संशोधित तथा नवीन रूप है। इसमें मध्यवर्गीय समाज की पृष्ठभूमि पर विधवा-समस्या का चित्रण है। इस उपन्यास से यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से ही प्रेमचंद का समाज-चिन्तन प्रगतिशील विचारधारा का समर्थक रहा है। १६०४ के रूढ़िवादी हिन्दू समाज में विधवा-विवाह का समर्थन करना यथेष्ठ साहस का परिचय देता था। इसमें सन्देह नहीं कि नवीन विचारों का प्रवेश भी होने लगा था, पर रूढ़िवादी समाज का बहुमत था। इसी नवचेतना और रूढ़िप्रियता का संघर्ष 'प्रतिज्ञा' में अंकित है। इसी के साथ उपन्यास में प्रेम-साधना और कर्त्तव्यनिष्ठा का सामञ्जस्य भी प्रस्तुत किया गया है।

कथा

महाशय अमृतराय वकील हैं, पर वकालत से अधिक सुधार-कार्य में रुचि रखते हैं। उनका विवाह तब हुआ था, जब वह कालेज में पढ़ते थे। एक पुत्र भी हुआ था, किन्तु प्रसव-काल में पत्नी और पुत्र दोनों चल बसे। अमृतराय के ससुर लाला बदरीप्रसाद उनके शील-स्वभाव पर मुग्ध थे। उन्होंने अपनी छोटी पुत्री प्रेमा से उनका विवाह तय कर दिया। अमृतराय भी अपनी साली की ओर आकृष्ट थे। इसी मध्य काशी के आर्य मन्दिर में सुधार के निमित्त कर्त्तव्य अनुभव कर उन्होंने विधवा-विवाह का व्रत ले लिया। अमृतराय प्रेमा से प्रेम करते हैं, पर समाज-संतप्त विधवाओं के प्रति कर्त्तव्य का ध्यान उन्हें प्रेमा से विलग करता है। इसके अतिरिक्त उनके ससुर रूढ़िवादी समाज-व्यवस्था के कट्टर समर्थक हैं। विधवा-विवाह का व्रत लेकर अमृतराय उनकी पुत्री को किस प्रकार प्राप्त कर सकते थे। अमृतराय के मित्र दीननाथ भी प्रेमा की ओर आकृष्ट थे। उन्हीं के साथ प्रेमा का विवाह हो गया। विवाह के उपरांत भी प्रेमा के

मन में अमृतराय के प्रति श्रद्धा पूर्ववत् बनी रही और वह उनके सुधार कार्य का समर्थन करती रही ।

प्रेमा की सहेली पूर्णा का पति गंगा-स्नान करते समय डूब गया । लाला बदरीप्रसाद ने निराश्रित पूर्णा को आश्रय दिया । उनका पुत्र कमलाप्रसाद अपनी पत्नी की उपेक्षा करता है और विधवा पूर्णा के प्रति कुदृष्टि रखता है । पूर्णा सरल स्वभाव की युवती है । कमलाप्रसाद अपने प्रेमनाट्य द्वारा उसे प्रभावित करने का प्रयत्न करता रहता है । उसकी यह धारणा थी कि एक न-एक दिन पूर्णा उसके पञ्जों में आ फँसेगी ।

दाननाथ से विवाह होने के उपरांत प्रेमा उसके प्रति अपने कर्त्तव्य में पूर्ण सजग थी, किन्तु दाननाथ के हृदय में यह शंका घर कर गई थी कि प्रेमा अब भी मन ही मन अमृतराय से स्नेह करती है । शंका ने उसे ईर्ष्यालु बना दिया । उसका विवेक नष्ट हो गया । उधर दुष्ट कमलाप्रसाद ने भी दान नाथ को अमृतराय के विरुद्ध भड़काया । दोनों ने मिलकर अमृतराय पर निंद्यतम आक्षेप किये । परिस्थितिवश प्रेमा को अमृतराय का पक्ष लेना पड़ा । दाननाथ की शंका को दृढ़ आधार मिल गया, पर कमलाप्रसाद इसी मध्य गड़बड़ कर बैठा । एक दिन पूर्णा को फुसलाकर बगीचे ले गया और उस पर बलात्कार करना चाहा । पूर्णा ने कुर्सी के प्रहार से उसे घायल कर आत्म-रक्षा की । उसे अमृतराय के 'बनिता आश्रम' में आश्रय मिला । नगर में कमलाप्रसाद की बड़ी बदनामी हुई । उसके सहयोगी होने के करण दाननाथ पर भी आक्षेप होने लगे । दाननाथ के लिये जनता में मुँह दिखाना कठिन हो गया ।

दाननाथ के विमुख हो जाने पर भी अमृतराय के हृदय में उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ था । दाननाथ को बदनामी से बचाने के लिये उन्होंने उसकी सफाई प्रस्तुत की । दाननाथ को अपनी ईर्ष्या-जनित भ्रांति पर पश्चाताप हुआ । उन्होंने अमृतराय से क्षमा याचना की । अमृतराय की उदारता ने दाननाथ की द्वेषाग्नि तथा शंका नष्ट कर दी । अमृत राय ने दाननाथ को अपने जीवन का आदर्श "बनिता-आश्रम" दिखाया जिसमें नगर की अनाथ एवं आश्रयहीन विधवाओं के रहने की व्यवस्था थी और उनके शिक्षित होने का प्रबन्ध भी किया गया था । उन्हीं के मध्य पूर्णा

भी रहती थी। अमृतराय ने विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी, पर ऐसा ज्ञात होता है कि प्रेमा को खोकर वह अन्य किसी से विवाह करने की मानसिक-स्थिति न प्राप्त कर सके। वह विधवा से विवाह करने के स्थान पर विधवाओं की समस्या सुलझाने का व्रत लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं।

वस्तु

"प्रतिज्ञा" एक प्रधान कहानी के ढांचे में निर्मित हुआ है। विधवाओं की समस्या प्रधान कहानी के रूप में प्रस्तुत की गई है। इसी के अन्तर्गत प्रेमा और पूर्णा की कथाएँ आती हैं। प्रेमा की कहानी प्रेम और कर्त्तव्य की कहानी है। विषय की दृष्टि से पूर्णा की कथा प्रधान कहानी की समस्या के अधिक निकट है। उपन्यासकार के मन्तव्य की अभिव्यक्ति भी पूर्णा की कथा द्वारा संचय हुई है। प्रेमा और पूर्णा की कथाओं को अनुस्यूत करने के लिये प्रेमचंद ने जिस कौशल से काम लिया है, वह पर्याप्त सफल है। दोनों कहानियों के सम्बंध-सूत्र यथेष्ट दृढ़ हैं। 'प्रतिज्ञा" में घटनाओं की प्रधानता है। इन घटनाओं को उपन्यासकार ने जिस कौशल से वस्तु में नियोजित किया है, वह स्वाभाविक और सफल है। 'वरदान' की भांति अस्वाभाविक और अद्भुत ढङ्ग से 'प्रतिज्ञा' की घटनाओं में तारतम्य नहीं स्थापित किया गया है। अस्वाभाविक घटना-क्रम से कथानक की प्रभावान्वित यथेष्ट कम हो जाती है। इस दृष्टि से 'प्रतिज्ञा' निर्दोष उपन्यास है। इसमें अस्वाभाविक और असंगत घटना-क्रम का बहिष्कार है और वस्तु-विधान की स्वाभाविकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है। "प्रतिज्ञा" का वस्तु-संगठन 'वरदान' की अपेक्षा बहुत अच्छा है। प्रारंभिक रचना होने पर भी "प्रतिज्ञा" के कथा-सौष्ठव में त्रुटियाँ न्यूनतम हैं। इसमें संदेह नहीं कि वस्तु-विकास उद्देश्यपूर्ति के आधीन है, पर इससे उसका संगठन नष्ट नहीं हुआ है। उपन्यास का आदि और अन्त नाटकीयता संपन्न है। दोनों स्थलों पर वही पात्र हैं। उपन्यास का प्रारम्भ और अन्त दाननाथ और अमृतराय की वार्ता से होता है। प्रारम्भ की अपेक्षा अन्त नाटकीय और मर्मस्पर्शी है।

पात्र

'प्रतिज्ञा' के पात्रों का चरित्रांकन कलात्मक नहीं कहा जा सकता;

क्योंकि उपन्यास के पात्र चरित्र-विकास की अपेक्षा चरित्र-स्थैर्य के उदाहरण हैं। उनमें गतिशीलता की न्यूनता सर्वत्र खटकती रहती है। अमृतराय के चरित्र की दृढ़ता प्रभावक्षमता रखती है, किन्तु सिद्धांतवाद और आदर्शवाद के पक्के ढांचे में ढालकर प्रेमचंद ने उसका व्यक्तित्व निर्जीव कर दिया है। इसी प्रकार प्रेमा मशीन की भांति प्रेमियों का परिवर्तन स्वीकार कर लेती है। ऐसी परिस्थिति में जिस मानसिक संघर्ष का चित्रण अनावश्यक समझा गया है, वह 'प्रतिज्ञा' में 'वरदान' की भाँति ही अनुपलब्ध है। दाननाथ के चरित्र में मानवीय दुर्बलताओं के कारण सजीवता है, किन्तु उपन्यास में उसका नगण्य स्थान उसे उपेक्षित सा बनाए रखता है। कमलाप्रसाद के सुधार पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। जो व्यक्ति परले सिरे का धूर्त और पाखण्डी है, उसका आकस्मिक चरित्र-परिवर्तन मन में नहीं जमता। उसके चरित्र-परिवर्तन का कारण न पर्याप्त है और न उपयुक्त।

"प्रतिज्ञा" के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नाङ्कित है:—

अमृतराय के चरित्र की मुख्यवृत्ति उनकी आदर्शनिष्ठ सुधारवादिता है। समाज-सेवा द्वारा वह अपने जीवन का सद्व्यय करना चाहते हैं। इसीलिये समाज-संतप्त विधवाओं की दशा सुधारने के निमित्त उन्होंने सेवा व्रत अपनाया था। अपने पथ पर दृढ़ता और साहस के साथ चलने का संकल्प उनके आत्म-विश्वास का प्रतीक है। उन्होंने कहा था—"आदमी अकेला भी बहुत कुछ कर सकता है। अकेले आदमियों ने ही आदि में विचारों में क्रांति पैदा की है। अकेले आदमियों के कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है... ......अकेले आदमियों से राष्ट्रों के नाम चल रहे हैं।" अपने विश्वास की सत्यता प्रमाणित करने के लिये अमृतराय अपने कर्मपथ पर अकेले ही चल दिये थे। समाज का विरोध उन्हें तनिक भी विचलित न कर पाया और अन्त में विजय उन्हीं की रही। उनके चरित्र में आत्मविश्वास-जनित दृढ़ता के साथ पर्याप्त उदारता भी है। दाननाथ के शत्रुवत् व्यवहार पर भी आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने सच्चे मित्र की भांति उसका साथ दिया। अपनी उदारता द्वारा अमृतराय ने विरोधी पक्ष पर विजय प्राप्त की।

दाननाथ औसत प्रवृत्तियों का मनुष्य है जो प्रेम, द्वेष ईर्ष्या के आंदो-

लित होता रहता है। उसे अमृतराय से प्रेम है, इसीलिये चाहने पर भी प्रेमा से विवाह करने में हिचकिचाता है। विवाह के उपरांत यह संदेह कि प्रेमा अमृतराय से प्रेम करती है, उसके हृदय में ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न कर देता है। संदेह की निराधारता विदित होने पर वह मित्र के सम्मुख क्षमाप्रार्थी बन मन का मालिन्य धो डालता है।

कमलाप्रसाद कृपण-धूर्त और पाखण्डी है। उसे उपन्यास का खल-पात्र कहा जा सकता है। अपनी पत्नी को तिरस्कृत करके वह मित्र की विधवा पत्नी पर कुदृष्टि डालता है। अमृतराय के सुधार कार्य की खिल्ली ही नहीं उड़ाता, उसके चरित्र पर मिथ्या आक्षेप भी करता है। पूर्णा को अपनी वासना के निमित्त भ्रष्ट करना चाहता है। इस कुकृत्य में असफल होने पर बदनामी के भय से सुधर जाता है। उसके सुधार पर प्रेमचंद को विश्वास हो गया हो, पर पाठक को नहीं होता।

प्रेमा को अमृतराय से प्रेम है, पर विवाह होता है दाननाथ के साथ। पति के प्रति कर्त्तव्य-निर्वाह में वह शिथिल नहीं है, किन्तु अमृतराय के प्रति उसकी श्रद्धा पूर्ववत् बनी रहती है। वह उनके सुधार-कार्य की समर्थक है। हिंसापूरित प्रतिवादियों के मध्य साहस और स्थिर बुद्धि द्वारा वह अमृतराय पर आया संकट टालती है। इसके लिये उसे पति के अविश्वास की पात्री बनना पड़ा, किन्तु उसकी अन्तर्निष्ठा अटूट रहती है।

प्रेमा की सहेली पूर्णा सरल हृदय-स्त्री है जिसे कमलाप्रसाद ने अपनी कुदृष्टि का शिकार बनाना चाहा था। वह युवती विधवा थी जिसके मन पर कमलाप्रसाद की अनुरागासिक्त बातों का प्रभाव अवश्यंभावी था। वह कमला प्रसाद के प्रेमजाल में फंस जाती, किन्तु कमला का कपटाचार ठीक अवसर पर प्रकट हो गया। उसका सिर फोड़ कर उसने अपने सम्मान की रक्षा की। उसे अमृतराय के 'वनिता-आश्रम' में आश्रय मिला' जहाँ प्रेमचंद ने उसके निराश और पीड़ित हृदय के लिए भक्ति की व्यवस्था की है। जिन परि-स्थितियों में पूर्णा के चरित्र का विकास अङ्कित किया गया है, उनमें यह निष्कर्ष सर्वथा असंगत और अस्वाभाविक है। वस्तुस्थिति यह है कि पूर्णा के चरित्र की समस्या का समाधान प्रेमचंद के पास नहीं था। इसीलिए उसके निमित्त भक्ति की व्यवस्था की गई है।

समाज

जिस समय 'प्रतिज्ञा' लिखा गया था, उस समय हिन्दू समाज में सुधारवादी आन्दोलनों की धूम थी। इन आन्दोलनों ने सर्वाधिक मध्यवर्ग को प्रभावित किया था। मध्यवर्ग के कुछ व्यक्ति इनके पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में। प्रेमचंद ने 'प्रतिज्ञा' में इसी ऐतिहासिक तथ्य का चित्रण करते हुए रूढ़िवादी और नवीन सुधारवादी सामाजिक शक्तियों का संघर्ष दिखाया है। सुधारवादियों का नेतृत्व अमृतराय करता है और रूढ़िवादियों का नेतृत्व लाला बदरीप्रसाद, कमलाप्रसाद और दाननाथ करते हैं। इससे प्रकट होता है कि एक ही वर्ग में दो विपरीत विचारधाराएँ एक साथ कार्य कर रही थीं। जो वर्ग प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं का पोषण करता था उसी वर्ग के व्यक्ति नवीन मान्यताओं की पुष्टि में प्रयत्नशील थे।

'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद का सामाजिक ध्येय नितान्त स्पष्ट है। इस उपन्यास में उन्होंने विधवाओं की सामाजिक स्थिति पर विचार किया है। समाज विधवा को—विशेषरूप से युवती विधवा को सन्देह की दृष्टि से देखता है। विधवा के लिये रूढ़िवादी समाज-व्यवस्था में सम्मानित जीवन सम्भव नहीं है। उसका विधवा होना मात्र ही जैसे अपयश और कलङ्क के लिये पर्याप्त है। उसकी सामान्य दुर्बलताएँ समाज की दृष्टि में गुरुतम अपराध बन जाती हैं। उस पर लगाए झूठे लांछन को भी सत्य मान लिया जाता है। विधवा को कुलटा बनते देर नहीं लगती। प्रेमचंद ने समाज में विधवाओं की यह दयनीय दशा देखी थी। इस समस्या का समाधान उन्होंने विधवा-विवाह के रूप में अनुभव किया। विधवाओं के पुनर्विवाह द्वारा उनकी दुरावस्था का सुधार सम्भव था। 'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद विधवा विवाह के प्रश्न से कथा प्रारम्भ करते हैं, पर अन्त करते हैं 'बनिता-आश्रम' में जहाँ विधवाओं को आश्रय मिलता है। 'बनिता-आश्रम' समस्या का स्थायी समाधान नहीं है, पर प्रेमचंद इस रूप में भी विधवाओं के संताप को को कम करने का प्रस्ताव रखते हैं। समस्या के सम्भव समाधान से प्रारम्भ करके 'बनिता-आश्रम' की ओर भटक जाना प्रेमचंद के समाजिक युग का प्रभाव है जिसमें 'विधवा-आश्रम' ऐसी संस्थाएँ प्रचुर परिणाम में स्थापित हो गई थीं।

उद्देश्य

'प्रतिज्ञा' का लक्ष्य विधवा-समस्या चित्रण है। इस समस्या का समाधान

पुनर्विवाह मानते हुए भी प्रेमचंद युगप्रभाव से 'वनिता आश्रम' खोल बैठे हैं। 'वनिता-आश्रम' समस्या का स्थायी समाधान नहीं है, क्योंकि सब आश्रम न तो अमृतराय ऐसे सज्जन व्यक्ति सञ्चालित करते हैं और न सब विधवाएँ आश्रमवासी होना पसन्द करेंगी। पूर्णा को चाहे भक्ति में शान्ति मिल गई हो, पर प्रत्येक के साथ यह सम्भव नहीं है। आश्रमहीन विधवाओं की मूल समस्या निर्वाह की समस्या है। अन्न-वस्त्र के निमित्त उन्हें दूसरों के आश्रित होना पड़ता है। प्रायः इसका मूल्य बड़ा मँहगा पड़ता है। तब विवशनारी का सम्मान पुरुषों की कृपाकटाक्ष पर बनता-बिगड़ता है। इसलिए उसकी समस्या निर्वाह-प्रश्न से प्रगाढ़ सम्बन्ध रखती है। जिस प्रकार प्रेमचंद ने 'सेवासदन' में वेश्या-समस्या के आर्थिक कारणों पर दृष्टि नहीं डाली है और सुधार-भाव से 'सेवासदन' की स्थापना कर बैठे हैं, उसी प्रकार 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं की विपन्नता से अनुस्यूत आर्थिक-प्रश्न को चलता कर विधवा-आश्रम' को प्रमुखता प्रदान की है। पर 'विधवा-आश्रम' दुरावस्था का सुधार है, समस्या का समाधान नहीं।

४

सेवासदन

प्रेमचंद का प्रथम विशिष्ट उपन्यास 'सेवासदन' (१६१४) है। कला और कृतित्व की दृष्टि से इसका महत्व सर्वमान्य है। 'सेवासदन' ने ही हिन्दी उपन्यास परम्परा में प्रेमचंद का स्थायी स्थान निश्चित कर दिया था। इसमें प्रेमचंद की सामाजिक विचारधारा नितान्त स्पष्ट है। 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' की भाँति ही 'सेवासदन' मध्यवर्गीय जीवन और समस्याओं पर दृष्टिपात करता है। समाज में प्रचलित दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह और वेश्या समस्या को परस्पर सम्बन्धित कर उपन्यासकार ने एक व्यापक समाज-सम्बन्ध का परिचय दिया है जिसमें व्यक्ति का उत्थान-पतन उसकी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों और वातावरण के आधीन उतना ही है जितना सामाजिक कुरीतियों के अधीन। 'सेवासदन' में प्रथम बार उस शैली का परिचय मिला था जिसने प्रेमचंद के उपन्यासों को लोकप्रिय बना दिया। इसीलिए उपन्यास की विशेषता उसकी सामाजिकता ही नहीं, अभिव्यक्ति का पुष्ट माध्यम भी है।

कथा

दारोगा कृष्णचन्द्र के परिवार में उनकी पत्नी गङ्गाजली के अतिरिक्त दो पुत्रियाँ हैं—सुमन और शान्ता। बड़ी लड़की सुमन की आयु विवाहोपयुक्त है। दारोगा जी उसका विवाह किसी शिक्षित परिवार में करना चाहते हैं, किन्तु वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है। अपनी ईमानदारी के कारण दारोगा जी धनसञ्चय न कर पाये थे। पुत्री के विवाह में दहेज देना था, पर पैसा पास न था। परिस्थितियों ने उन्हें रिश्वत लेने के लिए बाध्य किया। पाप किया, पर करना न जाना। भेद खुल गया। उन्हें घूस लेने के अपराध में चार वर्ष का कारावास दण्ड मिला। सुमन का विवाह जहाँ निश्चित किया

गया था, वहाँ न हो सका। कृष्णचंद्र के साले उमानाथ अपनी बहन और भांजियों को गाँव ले गए। उमानाथ ने सुमन के लिए वर खोजना प्रारम्भ किया, किन्तु उपयुक्त पात्र बिना लंबे दहेज के अप्राप्य था। विवश होकर काशी के गजाधर प्रसाद नामक व्यक्ति से सुमन का विवाह करना पड़ा। वह सब प्रकार से सुमन के अयोग्य था।

गजाधर की आर्थिक विपन्नता के कारण सुमन की इच्छाएँ अपूर्ण रह जाती थीं। उसके हृदय में पति के प्रति प्रेम न उत्पन्न हो सका। जिस वातावरण में वह रह रही थी, वह संस्कारों को बिगाड़ने के लिए पर्याप्त था। जिन स्त्रियों से उसका सम्पर्क था, वे जीवन में इंद्रिय-भोग को ही सर्वस्व समझतीं थीं। सुमन के घर के पास ही भोली वेश्या का निवास-स्थान था। भोली के विलास-ऐश्वर्य की चमक-दमक ने सुमन की अतृप्त आंतरिकता को अभिभूत कर दिया। मन के असंतोष और अतृप्ति में उसे कोमल स्पर्श की आवश्यकता थी। इसके विपरीत उसे पति द्वारा तिरस्कार और अपमान मिला। एक दिन वह अपनी परिचिता सुभद्रा के घर से देर में लौटी। गजाधर ने सन्देहवश उसे घर से निकाल दिया। वह सुभद्रा के यहाँ गई, पर वहाँ उसके पति पद्मसिंह की बदनामी का कारण बनी। चारों ओर से निराश्रित हो भोली बाई के कपट जाल में पड़कर उसने वेश्यावृत्ति ग्रहण की।

पद्मसिंह का भतीजा सदन नगर आने पर सुमन की ओर आकृष्ट हुआ। सुमन का विवाहित जीवन असफल सिद्ध हुआ था। उसका अतृप्त हृदय सदन की ओर ढलने लगा। संभव था कि सदन से उसका सम्बन्ध हो जाता, पर विट्ठलदास के उद्योग से सुमन ने वेश्यावृत्ति त्यागने का निश्चय किया। वस्तुतः सुमन की सद्वृत्तियों का पूर्णतया लोप नहीं हुआ था। निराश्रित होने पर ही उसने यह जीविका ग्रहण की थी, विट्ठलदास के आश्रम ने उसका उद्धार किया। उन्होंने सुमन को विधवा-आश्रम में पहुँचा दिया।

उधर गाँव में सदन का विवाह निश्चित हो गया था। सुमन के प्रति उसकी आसक्ति में तृष्णा का ही आधिक्य था। अतएव बिना किसी प्रतिवाद के वह गाँव चला गया। उसका विवाह सुमन की बहन शान्ता से तय हुआ था। द्वारपूजा के उपरान्त ही उसके पिता मदनसिंह को ज्ञात हुआ कि शान्ता वेश्या सुमन की बहन है। उन्होंने उस कलङ्कित परिवार में विवाह

करना अस्वीकार कर दिया। पद्मसिंह के बहुत समझाने पर भी मदनसिंह सहमत नहीं हुए। बारात वापस लौट आई।

शान्ता का विवाह सदन के साथ सम्पन्न नहीं हो पाया, किन्तु हृदय में उसने सदन को पतिरूप में ग्रहण कर लिया था। जब उसके मामा ने अन्यत्र उसका विवाह करना चाहा, तब वह धर्म-सङ्कट में पड़ गई। उसने पद्मसिंह को पत्र द्वारा अपनी स्थिति बताई और लिखा कि यदि पतिगृह में उसे आश्रय न मिला तो वह आत्महत्या कर लेगी। पद्मसिंह अपने बड़े भाई को नाराज़ नहीं कर सकते थे। अतएव शान्ता को लाकर उन्होंने उस विधवा आश्रम में रखा जिसमें सुमन रह रही थी। उन्हें आशा थी कि कुछ दिनों बाद उसके भाई मदनसिंह का क्रोध शांत हो जायगा। तब शान्ता को घर ले आने में अधिक अड़चन न पड़ेगी।

सदन की एक दिन शांता और सुमन से गंगातट पर भेंट हो गई। सुमन ने शान्ता का परित्याग करने के कारण सदन की प्रताड़ना की। सदन शान्ता के प्रति अपने अन्याय को मानता था, पर समाज-लांछन के भय से दुर्बल बना था। उसने अनुभव किया कि स्वावलम्बी हुए बिना वह शान्ता को ग्रहण नहीं कर सकता। उसने नाव खरीदकर नदी तट पर मल्लाही का काम जमा दिया। उसकी आय दिन प्रति दिन बढ़ने लगी।

उधर विधवा-आश्रम में रहने वाली स्त्रियों को ज्ञात हो गया कि सुमन कुछ दिन पूर्व वेश्या थी। उन्होंने उसके साथ रहना अस्वीकार कर दिया। सुमन और शांता को आश्रम छोड़ देना पड़ा। वे गाँव जाने के निमित्त नदी तट पर किराए की नाव तय कर रही थीं कि सदन ने उन्हें देख लिया। वह उन्हें अपने घर ले गया। उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया था। पिता का विरोध सहकर भी उसने शांता से विवाह किया। शांता और सदन की सेवा में सुमन अपने दिन काटने लगी। पर भोग विलास में लिप्त दम्पति ने उसकी उपेक्षा प्रारम्भ कर दी थी। सुमन समझ गई कि यहाँ भी उसका निर्वाह असंभव है, किंतु शांता का प्रसवकाल निकट जानकर उसने कुछ दिन और कष्ट का जीवन स्वीकृत किया। मदनसिंह को जब पौत्र-जन्म का समाचार मिला तो उनका कोप टिक न सका। वह पुत्र के घर दौड़े आये। पिता-पुत्र में मिलाप हो गया।

परिवार के हर्षोल्लास और आनंदोत्सव में सुमन के लिए कोई स्थान न था। शांता की सास को सुमन की उपस्थिति अप्रिय थी। उसे सुमन के आत्मपरिष्कार पर विश्वास नहीं था। उसके मुख से अपनी लांछना सुनकर सुमन के लिए वहाँ रहना असंभव हो गया। वह निरुद्देश्य चल पड़ी। चलते-चलते वह स्वामी गजानंद की कुटी में जा पहुंची। गजानंद सुमन का पति गजाधर प्रसाद ही था। सुमन के वेश्या हो जाने पर वह सन्यासी हो गया था और सेवाकार्य में दत्तचित्त था। उसकी प्रेरणा से सुमन ने भी सेवाधर्म स्वीकार किया। वेश्यायों की कन्याओं की शिक्षा और सुधार के लिए एक अनाथालय स्थापित किया गया था। यह गजाधर और पद्मसिंह के उद्योग का फल था। सुमन इस संस्था की सञ्चालिका नियुक्त हो गई। उसने 'सेवा-दल' का कार्य सँभाल कर सेवाधर्म की दीक्षा ली।

वस्तु

'सेवा-सदन' में आधिकारिक कथा सुमन की है और प्रासङ्गिक कथा शान्ता की। उपन्यास का पूर्वार्द्ध सुमन और उसके पतन से सम्बंध रखता है, उत्तरार्द्ध शांता की प्रेमकथा पर आधारित है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का सम्बन्ध-सूत्र सुमन ही है। अन्य घटनाओं की भाँति शांता की कहानी भी सुमन के सम्बंध से विकास प्राप्त करती है। शांता की कथा से सम्बंधित घटनाओं की प्रगति सुमन से उसके सम्बंध पर निर्भर है। यदि सुमन वेश्या न होती और शांता की बहन न होती तो शांता एवं सदन के विवाह में कोई बाधा न पड़ती। फलस्वरूप कथानक में संघर्ष-योजना न हो पाती। कथा-सङ्गठन की दृष्टि से भी यह कथाएँ एक दूसरे की सहायक हैं। उपन्यास के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के निर्माण के साथ ही इनका पारस्परिक सम्बंध कथानक के पूर्णत्व के निमित्त नियोजित है। शांता और सुमन की कथाओं को विच्छिन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि वस्तु-विकास इनके सम्बंध की नित्यता पर निर्भर है। एक प्रकार से ये कथाएँ एक दूसरे की पूरक हैं।

कथानक की केन्द्रबिंदु सुमन है। घटनाएँ उसी से सम्बंध रखती हैं और उस सम्बंध द्वारा ही विकास प्राप्त करती हैं। कथा-विकास का एक निश्चित क्रम है जो सुमन के आधार पर स्थिर हुआ है। वस्तु-विकास में जो

शैथिल्य सा ज्ञात होता है, वह घटनाओं के कारण नहीं अपितु कथानक में समाविष्ट विचार-वितर्क के कारण। घटना क्रम कहीं भी खण्डित नहीं होता, समस्या के तर्क-जाल में उलझता चलता है। घटना-क्रम संयोग या आकस्मिकता पर कम आधारित है। परिस्थिति-योजना द्वारा घटनाओं की प्रगति की गई है। यह परिस्थितियाँ बड़े स्वाभाविक ढङ्ग से पात्रों के कार्य-व्यापार द्वारा उत्पन्न होती हैं, इनके निर्माण में किसी कृत्रिम-पद्धति का प्रयोग नहीं किया गया है। 'सेवा सदन' की एक बड़ी विशेषता यह है कि ध्येयोन्मुख उपन्यास होने पर भी इसमें वस्तु की कलात्मकता नष्ट नहीं हुई है।

पात्र

'सेवासदन' की पात्रसृष्टि पूर्ववर्ती उपन्यासों की यांत्रिक पात्र-योजना से भिन्न है। यह भी उद्देश्यनिष्ठ उपन्यास है। इसके पात्र भी उद्देश्य के आधीन हैं। पर चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दिखा कर उपन्यासकार ने पात्रसृष्टि की कलात्मकता का निर्वाह किया है। परिस्थितियों का सर्वाधिक प्रभाव सुमन के चरित्र पर पड़ता है। यह उचित भी है क्योंकि उसका चरित्र मुख्य है, उसकी समस्या ही मुख्य समस्या है।

उपन्यास के गौण चरित्र अपेक्षाकृत प्रभावहीन हैं। गजाधर का चरित्र स्वाभाविक ढङ्ग पर चला था, पर उसे प्रेमचंद की आदर्श-प्रियता की बलि होना पड़ा। गजानंद का सेवाधर्म उसके चरित्र की स्वाभाविक परिणति नहीं है, यह प्रेमचंद के आग्रह का परिणाम है। सुमन के पिता कथानक में योजक न कर सकने के कारण ही आत्महत्या कराई गई है। सामाजिक उद्देश्य के यन्त्र के नीचे दबकर पात्रों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया है। यह गौण पात्रों के विषय में तो और भी अधिक चरितार्थ है। समस्या चित्रण के कारण वे उपेक्षित ही नहीं रहें हैं अपितु उसके भार से संत्रस्त दृष्टिगत होते हैं। दूसरी बात यह है कि मध्यवर्ग स्वयं एक चरित्र के रूप में अवतरित हुआ है, इसीलिए 'सेवासदन' में वैयक्तिक पात्रों के व्यक्तित्व अस्फुट रह गए हैं।

'सेवासदन' हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास है जिसमें मनोविज्ञान का पात्र-सृष्टि में अच्छा प्रयोग किया गया है। परिस्थिति विशेष में विभिन्न

पात्रों के हृदय में कैसे विभिन्न मनोभाव जाग्रत होते हैं, यह प्रेमचंद ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है। मानव-प्रकृति का सूक्ष्म और व्यापक अध्ययन और अनुभव इसमें उपन्यासकार का विशेष सहायक हुआ है। इसीलिए प्रेमचंद का मनोवैज्ञानिक आधार सङ्गत और स्वाभाविक है। इस दृष्टि से भी 'सेवासदन' पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा कलाविशिष्ट है।

'सेवासदन' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है।

सुमन के चरित्र का विकास पतिगृह में आने के उपरांत होता है। अयोग्य पति के सम्पर्क में आने पर उसकी मनोवृत्तियों ने कुपथ पर चलना प्रारंभ कर दिया। पति से मनोमालिन्य होते ही उसकी चञ्चल प्रकृति उसे कुमार्ग की ओर ले गई। उसके पतन के मूलकारण हैं, उसके विकार और उसका वातावरण। चञ्चल और अभिमानी स्वभाव के साथ उसकी अतृप्त इच्छायें उसे प्रतिविमुख कर रहीं थीं। गजाधर की गिरी आर्थिक दशा में यह संभव था कि वह सुमनकी सुख-भोग की लालसा तृप्त करता। अतृप्ति से असंतोष उत्पन्न होता था और सुमन को सन्तोष की शिक्षा नहीं मिली थी। 'उसने अपने घर यही सीखा था कि मनुष्य को जीवन में सुख भोग करना चाहिए। उसने कभी वह धर्मचर्चा न सुनी थी, वह धर्म शिक्षा न पाई थी, जो मनमें सन्तोष का बीजारोपण करती है। उसका हृदय असंतोष से व्याकुल रहने लगा।' इस असंतोष के साथ वातावरण ने उसके पतन का मार्ग और भी सहज कर दिया। मनुष्य के चरित्र की दृढ़ता भी कुसङ्गति के प्रभाव से शिथिल हो जाती है। सुमन के घर के सामने ही भोली वेश्या रहती थी। वेश्या का आदर, सम्मान और ऐश्वर्य देखकर उसका मन कुमार्ग की ओर झुक रहा था। उसकी सहेलियाँ भी नीचे स्तर की स्त्रियाँ थी। जिन महिलाओं के के साथ सुमन उठती-बैठती थी, वे अपने पतियों को इन्द्रिय सुख का यंत्र समझती थीं। पति, चाहे जैसे हों, अपनी स्त्री को सुन्दर आभूषणों से, उत्तम वस्त्रों से सजावें, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलावें। यदि उसमें यह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, उसे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था, वह आदर और प्रेम के योग्य नहीं। सुमन ने भी यही शिक्षा प्राप्त की।' पतिप्रेम शून्य उसका हृदय वातावरण का प्रभाव तीव्रता से

ग्रहण कर रहा था। भोली के प्रति पुरुष का आकर्षण देखकर वह सोचने लगती—'मैं भी यदि वैसा बनाव-चुनाव करूँ, वैसे गहने-कपड़े पहनूं, तो मेरा रंग-रूप और न निखर जायगा, मेरा यौवन और न चमक जायगा ?' उसके पतनोन्मुख मनोभाव उसे आगे ढकेलते थे पर भद्र परिवार के सञ्चित संस्कार और सद्वृत्तियाँ पीछे खींचती थीं। पति द्वारा परित्याग किए जाने पर उसने श्रम द्वारा जीवनयापन करना चाहा, किंतु निराधार युवती के लिए अकेले रहना खतरे से खाली न था। वेश्या जीवन में आकर भी उसने नृत्य गान से निर्वाह किया, शरीर का सौदा नहीं किया। उसने विट्ठलदास से कहा था—'मैंने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तङ्ग किया कि अंत में मुझे इस कुएँ में कूदना पड़ा। यद्यपि इस काजल की कोठरी में आकर पवित्र रहना अत्यत कठिन हैं, पर मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी। नाचूंगी, गाऊँगी पर अपने को भ्रष्ट न होने दूँगी।' उसका पतन अवश्य हुआ था किन्तु उसकी आत्मा कलुषित नहीं हुई थी। इसीलिए विट्ठलदास के उद्बोधन का तत्कालिक प्रभाव पड़ा। सुमन ने वेश्यावृत्ति का परित्याग कर विधवा-आश्रम का कठिन जीवन स्वीकार किया। अपनी बहनों की सेवा द्वारा वह अपने विगत जीवन का कलुष धोना चाहती है। पूर्वकृत्य की स्मृति उसे ग्लानि और पश्चात्ताप से अनुतप्त करती रहती है। उसका जीवन निस्सीम करुणा से परिव्याप्त हो उठता है। उपन्यासकार ने बड़ी सहानुभूति से उसकी इस अवस्था का चित्रण करते हुए लिखा है—"यह सुमन थी, पर कितनी बदली हुई। न वह लम्बे-लम्बे केश थे, न वह कोमल गात, न वह हँसते हुए गुलाब के होंठ, न वह चञ्चल ज्योति से चमकती हुई आँखें, न वह बनाव-सिंगार, न वह रत्न जटित आभूषणों की छटा, वह केवल सफेद साड़ी पहने हुए थी। उसकी चाल में गम्भीरता थी और मुख से नैराश्य और वैराग्य का भाव झलकता था।' उसने त्याग, सेवा, परोपकार और परिश्रम से अपने चरित्र की मलिनता धो डाली, पर समाज में अपना खोया सम्मान न पा सकी। जिनके लिए उसने कष्ट सहे, वे भी उसकी उपेक्षा करने लगे। चारों ओर से तिरस्कृत और प्रपीड़ित सुमन को गजानंद की प्रेरणा से जीवन का स्थायी आधार मिल गया। उसने 'सेवासदन' में सेवा धर्म का दायित्व सँभाला। वह पतिता से पावनी बन गई।

सुमन के पति गजाधर का चरित्र निम्न मध्यवर्ग की प्रवृत्तियों का प्रतीक है। सुमन सी सुन्दर स्त्री पाकर उसका अन्तर्मन संदेह से भर जाता है, क्योंकि वह जानता है कि वह सुमन के अयोग्य है। आयु की दृष्टि से ही नहीं, स्वभाव की दृष्टि से भी वह सुमन के अनुकूल पात्र नहीं है। सन्देह ने उसके पारिवारिक जीवन को विच्छिन्न किया और सुमन को कुपथगामिनी बनाया। यह सच है कि उसकी आर्थिक दशा से सुमन असन्तुष्ट थी, पर उस के विपथ पर जाने का एक मुख्य कारण गजाधर का प्रेमहीन असहनशील व्यवहार भी है। सुमन को अपमानित और तिरस्कृत कर निकाल देने के उपरांत उसे अपनी भूल का ज्ञान होता है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित ने उसे साधु बना दिया। सच तो यह है कि प्रेमचंद ने उसे साधु बना दिया है। उसका चरित्र-परिवर्तन किसी दृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार पर नहीं टिका है, इसीलिए उसकी साधुवृत्ति आकस्मिक-सी ज्ञात होती है। वस्तुतः सेवाधर्म का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार ने उसे सन्यासी बना दिया। सन्यासी बनने के उपरांत गजाधर निर्धन और पीड़ितों की सेवा में जीवन व्यतीत करता है और सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में सहायक बनता है। 'सेवासदन' उसी के प्रयत्नों का फल है। उसी की प्रेरणा से सुमन की निराधार जीवन-नौका को कूल-किनारा मिला। अंत में उसका प्रभाव एक आदर्श-चरित्र के रूप में स्थायित्व प्राप्त करता है। उसका प्रारम्भिक चरित्र यथार्थ के संस्पर्श से जितना स्वाभाविक बन पड़ा है, परवर्ती चरित्र आदर्श के आधार पर उतना ही रूढ़ हो गया है।

पद्मसिंह शर्मा के चरित्र में शिक्षित मध्यवर्ग की अनेक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। उनमें चरित्रगत दृढ़ता का अभाव है। इसीलिए अपने सिद्धांतों पर डटे रहने की क्षमता उनमें नहीं है। उपन्यासकार ने इस सम्बंध में इनका चरित्र-विश्लेषण करते हुए लिखा है—'यद्यपि वह स्वयं बड़े आचारवान मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। वह अपने पक्ष पर अड़ न सकते थे।' वह वेश्या-प्रथा को बुरा समझते हैं, पर मित्रों के आग्रह के सामने झुककर अपने ही घर वेश्या का नाच कराते हैं। उनकी इस दुर्बलता का परिणाम बड़ा भयानक होता है। सुमन उनके ऐसे चरित्रवान व्यक्ति को वेश्या की कृपा-कटाक्ष का अभिलाषी देखकर वेश्या-

जीवन को बड़ा माननीय जीवन समझने लगती है। इस प्रकार उसके पतन में शर्माजी का दायित्व कम न था। उनकी दुर्बलता का उदाहरण शांता-सदन के विवाह के अवसर पर भी मिलता है। वह यह समझते हैं कि अन्याय हो रहा है, पर उसके प्रतिकार का प्रबंध कुछ भी नहीं करते। उनकी यह दुर्बलता भ्रातृ-प्रेम का आवरण खोज लाती है, पर वह झोन्क सिद्ध होता है। भाई के अन्याय को भी शिरोधार्य करके जिस आदर्श पर वह चलना चाहते हैं, उसमें उनकी आत्मा संतुष्ट नहीं रहती, क्योंकि उनकी जागरूकता अन्याय और अनीति का समर्थन नहीं करना चाहती। अपनी इसी विवशता के कारण सुधार-कार्य में भी वह शिथिल हो जाते हैं। पर जब उनका अपना भतीजा खाई में गिरता दिखाई देता है, तब उनकी आंखें खुलती हैं। वह सारा शैथिल्य त्याग कर कार्य क्षेत्र में उतर पड़ते हैं। यह उनकी ही कर्मण्यता का फल था कि वेश्याओं ने उद्धार-पथ पर चलना स्वीकार किया। उनके और गजानन्द के उद्योग से 'सेवासदन' की स्थापना हुई। उन्होंने सुधार कार्य को पूर्ण सफलता से सञ्चालित करने के निमित्त ही वकालत छोड़ दी थी।

पद्मसिंह का भतीजा सदन प्रारम्भ में एक फैशनप्रिय व्यक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आता है। अपने वकील चाचा को फैशन की सामग्रियाँ सञ्चित करते देख उन्हें उपभोग करने की उसकी प्रबल इच्छा होती है। इसीलिए वह गाँव छोड़कर नगर में पद्मसिंह के पास रहने लगता है। नगर आकर शिक्षित होने की अपेक्षा फैशनएबुल बनना अधिक पसंद किया। यहाँ तक कि उसका 'बाँकापन' पद्मसिंह को भी खलने लगा। यदि बात यहीं तक रहती तो उसकी आलोचना का विशेष अवसर न उपस्थित होता, पर उसकी विवेकहीनता ने उसके सदाचरण को शिथिल कर दिया। वह वेश्याओं के बाजार में चक्कर काटने लगा। उपन्यासकार ने उसकी चरित्र व्याख्या करते हुए लिखा है—'उसमें वह विवेक तो नहीं था जो आँखों को ऊपर नहीं उठने देता।' फलस्वरूप वह वेश्याओं के आकर्षण में फंस गया।' यह संयोग था कि वह सुमन की ओर आकृष्ट हुआ, नहीं तो उसका पतन कभी का पूर्ण हो चुका होता। सुमन के सम्पर्क में उसकी लालसा और उद्दामवृत्ति कुछ दब सी गई थी। सुमन ने उसकी मनोवृत्तियों को सँभाल लिया था, अन्यथा वह पूर्ण पतित हो जाता। वस्तुतः उसका मस्तिष्क अपरिपक्व था और विवेक भावनाके

सम्मुख पराभूत। सद्असद् निर्णय करने की शक्ति का उदय उसमें अभी नहीं हुआ था। इसीलिये शान्ता का विवाह-मण्डप में परित्याग करते समय उसे रंच मात्र शोक नहीं हुआ। पर धीरे-धीरे उसके चरित्र में परिवर्तन आता है। उसमें सोचने समझने की बुद्धि का उदय होता है। वह मन में स्वीकार करने लगता है कि शान्ता के साथ अन्याय हुआ है। इसके परिमार्जन के लिये वह अपनी सामर्थ्य को सामर्थ्य में परिणत करता है, क्योंकि बिना आत्म निर्भर हुए शान्ता को स्वीकार करना सम्भव न था। उसने उद्योग और कर्मण्यता का पथ ग्रहण किया। आत्मनिर्भर होते ही उसने शान्ता को पत्नी रूप में ग्रहण कर लिया। इस कृत्य द्वारा उसने अपार साहस का परिचय दिया, क्योंकि रूढ़िवादी समाज का इसमें मत न था। पर सदन की नव जाग्रत विवेक-बुद्धि अन्याय का सामना करने की दुर्दमनीय शक्ति लेकर अवतरित हुई है। अन्त में उसके रूढ़िवादी पिता को उसके सामने झुकना पड़ता है, जिससे पिता-पुत्र में पुनः मिलाप हो जाता है। उसका गृहस्थ जीवन सब की शुभकामनाओं के साथ प्रारम्भ होता है।

सदन की पत्नी शान्ता का चरित्र-परिचय सामान्य शीलवती लड़की के रूप में मिलता है जिसे पतिप्रेमनिष्ठा ने असामान्य बना दिया है। सदन से विवाह न हो जाने पर भी सदन के प्रति उसकी प्रेमभावना अक्षुण्ण रहती है। विधवा-विवाह की तुलना में उसका मानसिक वरण कहीं अधिक गरिमामय है जो उसे भारतीय नारीत्व की अपरिमेय अन्तर्निष्ठा के परमोज्वल प्रकाश से विभूषित करता है। इसीलिए मामा द्वारा दूसरा विवाह निश्चित किये जाने पर वह मन की लज्जा के बन्धन तोड़ कर पद्मसिंह को पत्र लिखती है। उसके आदर्श ने अपना पथ निश्चित कर लिया है—सदन उसका पति है, अन्यथा मृत्यु उसकी सहचरी है। अन्त में उसके प्रेम ने ही विजय प्राप्त की और सदन ने उसे अपना लिया। इस स्थिति में वह जितनी ही ऊपर उठती है, विवाहोपरांत उतने ही नीचे गिर जाती है। पति के आश्रय में उसका चरित्र अति सामान्य स्तर पर उतर आता है। वह सुख-चैन का जीवन यापन करने वाली साधारण-सी स्त्री ज्ञात होती है जिसके पूर्व चरित्र की समस्त गरिमा विलुप्त हो जाती है। सुमन के प्रति उसके व्यवहार को घोर कृतघ्नता ही कहा जाएगा जिस सुमन ने उसकी सेवा की, उसे सदन से मिलाया और उसकी गृहस्थी की

चक्की में पिसती रही, उसी को उपेक्षा, अविश्वास और सन्देह से देख कर शान्ता ने पाठक की सारी सहानुभूति खो दी।

सदन के पिता मदनसिंह प्राचीन परम्पराओं के पोषक हैं। समाज की रूढ़िगत् मान्यताओं ने उनकी अन्तर्वृत्तियों को जड़ बना दिया है। वह पुरानी रीतियों के समर्थक हैं, कुरीति या सुरीति की चिंता नहीं करते। इसीलिये न्याय और अन्याय, नीति और अनीति का विवेक उनमें नहीं है। शांता का तिरस्कार उनका अन्याय था, पर मदनसिंह न्याय अन्याय की विवेचना की अपनी सुनिश्चित धारणा का महत्व अधिक समझते थे। इस धारणा पर जब उनका अपना पुत्र चोट करता है, तो वह तिलमिला उठते हैं। उनका रहा-सहा विवेक क्रोधाग्नि निगल जाती है। पर उनका पुराना किला अधिक दिन टिक नहीं पाया। पौत्र-उत्पत्ति पर वे पुत्र से संधि कर लेते हैं। उनके जड़-चरित्र में यही मानवीय स्पर्श है।

विट्ठलदास निस्वार्थ समाजसेवक और सिद्धांतनिष्ठ सुधारक हैं। वह वेश्याओं को सामाजिक उत्सवों द्वारा प्रश्रय देने का विरोध करते हैं। जब उनके मित्र पद्मसिंह अपने घर वेश्यानृत्य कराते हैं तो विट्ठलदास उनसे रुष्ट हो जाते हैं। इसी सम्बंध में गजाधर की बातें वेदतामय मानकर वह शर्मा जी की बदनामी में सहायक बने। फलस्वरूप सुमन को निराश्रित होना पड़ा और वह वेश्या-जीवन के लिये बाध्य हुई। इस विषय में गजाधर की बातें मानकर विट्ठलदास ने अनुदारता से अधिक विवेकशून्यता का परिचय दिया था। पर अपनी भूल का भीषण परिणाम ज्ञात होने पर वह केवल पश्चात्ताप प्रकटकर बैठे रहने वाले व्यक्तियों में नहीं थे। उन्होंने सुमन के उद्धार का बीड़ा उठाया और उन्हीं की प्रेरणा से सुमन ने वेश्यावृत्ति छोड़ी। समाज-सेवा उनके जीवन का विशिष्ट अङ्ग है। वह बड़ी दृढ़ प्रकृति के प्राणी हैं, जो अपने सिद्धांतों पर डटकर सेवा-कार्य अग्रसर करते हैं। उनकी लोक-सेवा का आदर्श भी बहुत ऊँचा है। म्युनिसिपैलिटी के प्रधान कर्मचारी होने पर पद्मसिंह ने चाहा कि विट्ठलदास भी कोई पद ग्रहण करें। विट्ठलदास ने जैसे निस्वार्थ कर्म की प्रतिज्ञा ले रखी थी। उन्होंने कोई पद स्वीकार नहीं किया। उनका परिनिष्ठित मत है कि पदाधिकारी बनने की अपेक्षा बाहर रह कर वह जनता का अधिक हित कर सकेंगे। उनकी निस्वार्थ लोकसेवा और कर्मनिष्ठा उन्हें सबके सम्मान और श्रद्धा का पात्र बना देती है।

समाज

'सेवासदन' सामाजिक उपन्यास है। इसमें सामाजिक समस्याओं के साथ ही आर्थिक और धार्मिक समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया गया है। इसमें मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न स्तरों का जीवन अङ्कित किया गया है। इसी के अन्तर्गत बदलती सामाजिक मान्यताएँ प्रस्तुत की गई हैं। इन मान्यताओं के चित्रण में प्रेमचंद की सुधारवादी मनोवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसीलिए 'सेवासदन' की सामाजिक-समस्याओं का समाधान भी स्थायी न होकर सुधार मात्र है। वस्तुस्थिति यह है कि प्रेमचंद के समकालीन सुधारवादी सामाजिक आंदोलनों का प्रभाव सबसे अधिक मध्यवर्ग पर पड़ा था। प्रेमचंद भी इसी वर्ग के व्यक्ति थे, अतएव वह भी सुधार-भाव से परिचित थे। इसीलिये उन्होंने यथार्थ समस्याओं के आदर्शमूलक समाधान प्रस्तुत किये हैं।

उपन्यास का समाज-चित्रण दहेज, अनमेल विवाह और वेश्या-प्रथा पर दृष्टिपात करता है। हमारे समाज की अनेक कुरीतियों में दहेज-प्रथा प्रमुख है। यह केवल नैतिक पराभव की प्रतीक ही नहीं है, वरन् यह समाज में ऐसी परिस्थितियों की सृष्टि कर बैठती जिनका परिणाम व्यक्ति और समाज दोनों के लिये घातक सिद्ध होता है। 'सेवासदन' में यही चित्रित किया गया है। सुमन का विवाह बिना दहेज के नहीं हो सकता। अतएव कृष्णचन्द्र ऐसे ईमानदार व्यक्ति को बेईमानी का रास्ता अपनाना पड़ा। यदि दहेज का प्रश्न उनके सम्मुख न होता तो वे क्यों घूसखोरी करते? अतएव उनके नैतिक पतन का दायित्व इस प्रथा पर है। जेल से छूटने के उपरांत भी उनकी मानसिक स्थिति स्वस्थ जीवनयापन योग्य न हो पाई। यहाँ यह प्रथा व्यक्ति के लिए घातक सिद्ध होती है। इसका समाज-व्यापी कुप्रभाव भी उपन्यास में अंकित किया गया है। दहेज का प्रबंध न हो सकने के कारण ही सुमन का विवाह गजाधरप्रसाद ऐसे अपात्र के साथ होता है। इस अनमेल विवाह के कारण ही वे जटिल मनोवैज्ञानिक और आर्थिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई जिनके दबाव से पति-पत्नी का सामाजिक रिश्ता ही टूट गया। सुमन वेश्या बन गई। सुमन को वेश्या बना चित्रित करके प्रेमचंद ने उस सामाजिक कलंक के व्यापक सम्बंध सूत्रों की अनुस्यूतता की ओर संकेत किया

है। उन्होंने दिखाया है कि एक कुरीति का कितना व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव व्यक्ति और समाज दोनों के लिये दुष्परिणामों से भरा है। इस विवेचना को संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैं—दहेज न दे सकने के कारण अनमेल विवाह, जिसके फलस्वरूप सुमन का वेश्या जीवन।

'सेवासदन' की मुख्य सामाजिक-समस्या वेश्या-समस्या है। इसका चित्रण विस्तारपूर्वक किया गया है। वेश्या सम्बंधी समाज की द्विविध चाल प्रेमचंद से छिपी नहीं थी। एक ओर तो समाज वेश्याओं को पतित, कलंकित समझता है; दूसरी ओर उन्हें प्रश्रय भी देता है। धार्मिक सामाजिक उत्सवों में वेश्याओं का नृत्य-गान अनिवार्यता की सीमा तक पहुंच गया था। पद्मसिंह के यहाँ होली के अवसर पर वेश्या-नृत्य होता है। रामनवमी के दिन मन्दिर में भक्तजन भोलीबाई के कृपा-कटाक्षों का लक्ष्य बन अपने जीवन को धन्य समझते हैं। सदन के विवाह में वेश्या-नृत्य की आयोजना न होने पर गाँव वाले क्रुद्ध हो उठते हैं। नगर और गाँव दोनों स्थान पर इस प्रथ का बड़ा जोर है। प्रेमचंद ने यह भी चित्रित किया है कि उच्च वर्ग के विलासप्रिय व्यक्तियों ने अपनी भोग-लालसा की तृप्ति के लिये वेश्याएँ बनाए रखना आवश्यक समझा है। 'सेवासदन' में सेठ बलभद्रदास, चिम्मनलाल और अबुलवफा ऐसे समाज के स्तम्भ वेश्याओं की आवश्यकता का समर्थन करते हैं। उन्हें नगरों के मुख्य स्थान पर बिठा कर वे अपनी सद्वृत्तियों और शुभकर्मों की घोषणा करते हैं। उच्चवर्ग के इन व्यक्तियों के विपरीत मध्यवर्ग के कुछ शिक्षित व्यक्ति वेश्या-प्रथा के विरोधी हैं। वे इस प्रथा को समाज के लिये अहितकर समझते हैं। वे वेश्या-प्रथा का उन्मूलन करना चाहते हैं। इन सुधारवादियों में विट्ठलदास और पद्मसिंह अग्रगण्य हैं। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही सुमन को वेश्यावृत्ति से निस्तार मिला। उनके प्रयत्नों से ही म्युनिसिपैलिटी द्वारा वेश्याओं को नगरबाह्य करने का आदेश हुआ था। प्रेमचंद ने यह भी चित्रित किया है कि अधिकांश वेश्याएँ सम्मानित जीवनयापन की अभिलाषा रखती हैं। यदि अवसर मिलता है तो वे अपना सुधार करने के लिये प्रस्तुत हैं।

प्रेमचंद का विचार है कि मनोविकार और वातावरण का प्रभाव स्त्रियों को कुपथ पर ले जाता है। इसके अतिरिक्त जिन स्त्रियों का दामपत्य

या पारिवारिक जीवन असफल है, उन्हें कुमार्गगामी बनते देर नहीं लगती। सुमन की परिस्थितियाँ ऐसी ही थीं। उसका मन चञ्चल था, वातावरण दूषित, संगति खराब थी और दाम्पत्य जीवन असफल। अतएव उसे वेश्या बनते विलम्ब न लगा। उपन्यासकार ने वैयक्तिक और सामाजिक कारणों को प्रमुखता प्रदान की है, किन्तु वेश्या समस्या के आर्थिक कारणों पर दृष्टि नहीं डाली। 'सेवासदन' के अतिरिक्त 'गोदान' में भी प्रेमचंद ने वेश्यावृत्ति के कारणों पर दृष्टिपात किया है। 'गोदान' के मेहता का यह मत है कि मन के संस्कार और भोगलालसा ही स्त्रियों को इस ओर खींचती है। इसके विपरीत मिर्ज़ा खुर्शेद का यह विचार था कि "रूप के बाजार में वही स्त्रियाँ आती हैं, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मान-पूर्ण आश्रय नहीं मिलता, या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं।[1]" यहाँ प्रेमचंद ने आर्थिक कारण का उल्लेख अवश्य किया है, किन्तु चलते ढंग पर। अतएव यह कहा जा सकता है कि वेश्या समस्या पर प्रेमचंद के विचारों में आगे चलकर विशेष अन्तर नहीं आया। उन्होंने आर्थिक कारण का उल्लेख अवश्य आवश्यक माना है, किंतु उसे मूल समस्या नहीं माना।

'सेवासदन' में वेश्या-समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है, पर स्थायी समाधान नहीं कहा जा सकता। उपन्यासकार ने इसमें कुरीति के उपचार की सुधारवादी दृष्टि से काम लिया है। वेश्याओं के उद्धार और उनके निर्वाह के प्रश्न को इसी दृष्टि से हल किया गया है। पर इसमें संशय नहीं कि अपने युग में प्रेमचंद ही पहले लेखक थे जिन्होंने बड़े उत्साह से इस विषय पर लेखनी उठाई और अपने निष्कर्ष स्पष्ट शब्दों में पाठकों के सम्मुख रखे। म्यूनिसिपल बोर्ड के सम्मुख जो प्रस्ताव रखा गया था, वह इस प्रकार था—

(१) वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थानों से हटा कर बस्ती से दूर रखा जाए।

(२) उन्हें शहर के मुख्य सैर करने के स्थानों और पार्कों में आने का निषेध किया जाए।

---

[1] गोदान : पृष्ठ-४४३, ४४४, ४४५

(३) वेश्याओं का नाच कराने के लिये एक भारी टैक्स लगाया जाय और ऐसे जलसे किसी हालत में खुले स्थानों में न हों ।

यह प्रस्ताव निषेधात्मक अधिक है । इसके द्वारा वेश्याओं की समस्या का पक्का समाधान नहीं । कदाचित् इसीलिये 'सेवासदन' की स्थापना द्वारा उन्होंने वेश्याओं की पुत्रियों के सुधार और घरेलू धंधों द्वारा उनके जीवन-निर्वाह के प्रश्न को हल करना चाहा था ; पर 'सेवासदन' भी समस्या का समाधान नहीं है । हाँ, प्रेमचंद की सुधारवादी दृष्टि में वह ऐसा ही है ।

वेश्या-समस्या का सुधारवादी दृष्टिकोण से समाधान करते हुए भी प्रेमचंद ने वेश्या को घृणा का पात्र नहीं घोषित किया है । उनकी मानवीयता दलित और उत्पीड़ित प्राणी के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखती है । इसीलिये सुमन के पतन में उपन्यासकार की समस्त सहानुभूति उसी के साथ है । प्रेमचंद की ही नहीं, पाठक की सहानुभूति से भी वह एक क्षण के लिये वञ्चित नहीं होती । उसकी समस्याओं को उदार होकर ही समझा जा सकता है । प्रेमचंद में यह उदारता कम नहीं थी । उन्होंने उसके मर्म को अनावृत कर दिखाया है कि वह उतना ही संवेदनशील है, जितना मनुष्य हृदय होना चाहिये । समस्या के प्रति भी प्रेमचंद की यही मानवीय दृष्टि प्रधान है ।

'सेवासदन' प्रमुख रूप से सामाजिक-जीवन का चित्रण करता है, पर उसमें मध्यवर्ग की आर्थिक दशा के कुछ चित्र भी अंकित हो गए हैं । इनमें अभीष्ठ प्रभावोत्पादकता नहीं है, पर यह मध्यवर्ग की आर्थिक विपन्नता का परिचय प्रस्तुत करने में असफल नहीं हैं । सुमन का पति गजाधरप्रसाद निम्न मध्यवर्ग का व्यक्ति है । वह पंद्रह रुपये मासिक वृत्ति पर किसी कारखाने में काम करता है । उसकी आर्थिक दुरावस्था उसके मकान के इस चित्रण में मानो झाँक रही है – 'मकान में केवल दो कोठरियाँ हैं थीं और एक सायबान । दीवारों में चारों ओर लोनी लगी हुई थी । बाहर से नालियों की दुर्गंध आती रहती थी, धूप और प्रकाश का कहीं गुजर नहीं ।' इस चित्रण में प्रभावक्षमता भी कम नहीं है क्योंकि वह कल्पना पर नहीं, यथार्थ पर आधारित है । नगरों का निम्न मध्यवर्ग ऐसी अस्वस्थ परिस्थितियों में जीवन-

यापन करता है। पद्मसिंह शर्मा वकील हैं। उनकी दशा गजाधर की अपेक्षा अच्छी है, किन्तु अर्थ की तंगी सर्वथा बनी रहती है। वस्तुतः "सेवासदन" का मध्यवर्गीय समाज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं कहा जा सकता।

'सेवासदन' में समाज की धार्मिक-दशा का व्यंगमय चित्रण भी किया गया है। दारोगा कृष्णचन्द्र के हल्के में महन्त रामदास रहते थे। वे साधुओं की गद्दी के महन्त थे। उनके कार्य-व्यापारों की व्यंगात्मक आलोचना करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं—"इनके यहाँ सारा कारोबार 'श्री बांके बिहारीजी' के नाम पर होता था। 'श्री बांके बिहारीजी' लेन-देन करते थे और ३२) सैकड़े से कम सूद न लेते थे। वही मालगुजरी वसूल करते थे, वही रेहननामे-बैनामे लिखते थे।......... महन्त जी का अधिकारियों में खूब मान था। 'श्री बांके बिहारी जी' उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग खिलाते थे। उनके प्रसाद से कौन इंकार कर सकता था? ठाकुरजी संसार में आकर संसार की रीति-नीति पर चलते थे।" यदि 'बांके बिहारी जी' की कार्यविधि यहीं तक सीमित रहती तो कदाचित् प्रेमचंद को विशेष आपत्ति न होती, पर जब उनके नाम यह सोलह आने शोषण होने लगता है, तब प्रेमचंद की मनुष्यता विद्रोह कर उठती है। धर्म के पाखण्ड और उसकी शोषण-वृत्ति का विरोध प्रेमचंद के लिये सत्य को अनावृत करना है। उन्होंने धार्मिक पाखंडियों के कुकृत्यों का निर्दयता से पर्दाफाश किया है। रामदास महन्त से अधिक महाजन ही नहीं हैं, वह हत्यारा भी है। उसके चेलों ने ही निरपराध चेतू की हत्या की थी, क्योंकि उसने महन्त के पक्ष में पाँच रुपये देने से इंकार कर दिया था। यही नहीं, धर्म की ओट में पाखण्डियों की विलास-लीला भी चला करती है। सुमन ने ऐसे ही बगुलाभक्तों को उस मन्दिर में देखा था जहाँ वेश्या भोलीबाई का नृत्य हुआ था। उसने देखा था कि वैष्णव तिलक लगाए, भस्म लगाए, कंठी पहने, रामनामी चादर और गेरुआ धारण किये वे सब व्यक्ति बैठे थे जिन्हें वह धर्मात्मा, विद्वान और साधु-सन्यासी मानती थी। सभी भोली को लालायित नेत्रों से देख रहे थे। इस अवसर पर प्रेमचंद ने करारा व्यंग किया है—'भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती थी वह मुग्ध हो जाता था, मानों साक्षात् राधा-कृष्ण के दर्शन हो गये।' कपटधर्मियों के इस पाखण्ड का गजाधर के

इन शब्दों में प्रेमचंद ने पर्दा खोला है —'तो तुमने उन लोगों के बड़े-बड़े तिलक-छापे देखकर ही उन्हें धर्मात्मा समझ लिया। आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक-से-एक मगर-मच्छ पड़े हुए हैं। भोले-भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लम्बी-लम्बी जटाएँ, लम्बे-लम्बे तिलक-छापे और लम्बी-लम्बी दाढ़ियाँ देख कर लोग धोखे में आ जाते हैं, पर यह सबके सब महापाखंडी धर्म के उज्वल नाम को कलंकित करने वाले, धर्म के नाम पर टका कमानेवाले, भोग विलास करनेवाले पापी हैं। भोली का आदर-सम्मान उनके यहाँ न होगा तो किसके यहाँ होगा ?' यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद धर्म के विरोधी नहीं हैं, वे धर्म की ओट में होने वाले दुराचार, पाखंड और शोषण के विरोधी हैं। जो धर्म मनुष्यता के शोषण, उत्पीड़न और पतन का कारण बन जाता है, उसकी आलोचना करना प्रत्येक जागरुक साहित्य-कार का दायित्व है।

उद्देश्य

इस उपन्यास का उद्देश्य नितांत स्पष्ट है। वह वेश्या समस्या का चित्रण करता है। इसके अन्तर्गत ही भले घर की स्त्रियों के वेश्या बनने के कारण और वेश्या जीवन पर दृष्टिपात किया गया है। प्रेमचंद का वेश्या-समस्या सम्बंधी समाधान स्थायी नहीं है। इस समस्या को प्रेमचंद ने कुरीति के रूप में देखा है और उसके सुधार के निमित्त अपनी योजना प्रस्तुत की है। उसमें वेश्या को सामाजिक जीवन से पृथक् कर देने पर अधिक जोर दिया गया है। समाज को उनके दुष्प्रभाव से बचाने का यह ढङ्ग सुधारवादी है। यह समस्या के मूल कारणों की अपेक्षा उसके तात्कालिक उपचार का विधान करता है। 'सेवासदन' की स्थापना द्वारा उपन्यासकार के इसी मत की प्रतिष्ठा होती है। उसने वेश्याओं की पुत्रियों को पढ़ाने-लिखाने के अतिरिक्त घरेलू धंधों में कार्यकुशल बनाने का प्रस्ताव भी रखा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'सेवासदन' प्रेमचंद की सामा-जिक सुधारनिष्ठा की आदर्श सृष्टि है।

———

५

प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम' (१९१८) प्रेमचंद की उपन्यास-कला की प्रगति का सूचक है। इस उपन्यास में नगर के मध्यवर्ग की समस्याओं से आगे बढ़कर ग्राम-जीवन और उनकी समस्याओं का चित्रण किया गया है। भूमिपति और कृषक के परम्परागत सम्बंधों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के चित्रण में उपन्यासकार ने अपूर्व क्षमता का परिचय दिया है। ग्रामीण समाज की समस्याओं के आर्थिक पक्ष पर उसकी दृष्टि विशेषरूप से जमी है। इसीलिये कृषक-जीवन की विपन्नता और जमींदार वर्ग की शोषण-नीति का उसने ब्योरेवार चित्रण किया हैं। 'प्रेमाश्रम' की समस्या आर्थिक-समस्या है। वह जमींदारी प्रथा की समस्या है। प्रेमचंद ने इसका चित्राँकन बड़ी कुशलता से किया है। समस्या-चित्रण में उनकी यथार्थवादी दृष्टि ने जितना बल प्रदान किया है, समाधान प्रस्तुत करने में उनकी आदर्शवादिता ने उतनी ही अशक्ति भर चित्रण किया है, वह कल्पना की सृष्टि है। भारत के अस्वस्थ, रूढ़िवादी, शोषित जर्जर गावों से उसका कोई साम्य नहीं। इसीलिये 'प्रेमाश्रम' के यथार्थवादी लोक-जीवन में लखनपुर की मायासृष्टि अविश्वसनीय हो उठी है।

कथा

लखनपुर के जमींदारों का मकान काशी में औरङ्गाबाद के निकट था। लाला जटाशंकर की मृत्यु के उपराँत उनके छोटे भाई प्रभाशंकर जमींदारी सम्बंधी कार्यों की भी देख-रेख करते थे। जटाशङ्कर के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रेमशङ्कर और छोटे का नाम ज्ञानशङ्कर था। प्रेमशङ्कर घर वालों को बिना सूचना दिए अमरीका चले गए थे। वहाँ वह कृषि-शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। उनकी पत्नी श्रद्धा उनके नाम को रोया करती थी।

ज्ञानशङ्कर ने बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली थी। उनका विवाह लखनऊ के एक बड़े ताल्लुकेदार राय कमलानंद की पुत्री विद्यावती से हुआ था। उनके पुत्र का नाम मायाशङ्कर है। लाला प्रभाशङ्कर ही कुटुम्ब के बुजुर्ग थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी के अतिरिक्त तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। जेष्ठ पुत्र दयाशङ्कर पुलिस सब-इंस्पेक्टर थे। शेष दो लड़के तेजशङ्कर और पद्मशङ्कर स्कूल में पढ़ते थे। पुत्रियाँ अभी अविवाहित थीं।

ज्ञानशङ्कर महात्वाकांक्षी व्यक्ति हैं। वह चाहता है कि उसका कुटुम्ब पुनः समृद्धि के शिखर पर पहुंच जाय। पर उसकी शिक्षा ने उसे इतना स्वार्थप्रिय बना दिया था कि वह घर के अन्य प्राणियों को फूटी आखों देखना भी पसंद नहीं करता था। उसे अपने चाचा प्रभाशङ्कर की जमींदारी कार्य-सम्बंधी उदार नीति रंचमात्र भी नहीं भाती। आये दिन शाब्दिक संग्राम होते रहते थे। प्रभाशङ्कर प्राचीन परम्परा और कुल मर्यादा के भक्त हैं, ज्ञान शङ्कर की प्रवृत्ति इसके विपरीत है, वह मर्यादापालन के निमित्त किये गए व्यय को अपव्यय समझता है। अतएव उसमें और प्रभाशङ्कर में विरोध अवश्यंभावी हो गया। प्रभाशङ्कर अपने भतीजे से मनोमालिन्य नहीं करना चाहते, किंतु ज्ञानशङ्कर अपनी दुर्नीति का चक्र चलाया करता है। उसे परमार्थ से स्वार्थ पर अधिक श्रद्धा है। साधारण सी बात पर वह लखनपुर के किसान मनोहर को इज़ाफा लगान के दावे की धमकी देता है। प्रभाशङ्कर अपने निर्द्वन्द्व स्वभाव के अनुसार मामले को टालना चाहते हैं। ज्ञानशङ्कर उन्हीं से उलझ पड़ता है। अन्त में प्रभाशङ्कर को ही दबना पड़ा।

प्रभाशंकर का पुत्र सब-इन्स्पेक्टर दयाशंकर अपने इलाके में बड़ी धाँधली मचाए था। ज्ञानशंकर के मित्र ज्वालासिंह जब डिप्टी कलेक्टर होकर उसी इलाके में भेजे गए, तब दयाशंकर की घूसखोरी और भी बढ़ गई। उन्हें अपने चचेरे भाई के मित्र का भरोसा था। पर एक मामले में दयाशंकर फँस गया। उस पर झूठे मुकदमें बनाने का अभियोग लगाया गया। केस ज्वाला सिंह के इजलास में था। प्रभाशंकर की इच्छा थी कि ज्ञानशंकर अपने मित्र से कह-सुन कर दयाशंकर को बरी करा दें। पर ज्ञानशंकर का चाचा के प्रति द्वेष भाव इतना इतना बढ़ चुका था कि वह ज्वालासिंह के पास दयाशंकर के विरुद्ध मत देने गया। अपने मित्र की नीचवृत्ति से ज्वालासिंह को बड़ा खेद

हुआ। अभियोग सप्रमाण न होने के कारण ज्वालासिंह ने दयाशंकर को बरी कर दिया था।

ज्ञानशंकर अपने चाचा से पृथक् होना चाहता था। उसे यह देखकर बड़ी ईर्ष्या होती थी कि सम्मिलित कुटुम्ब की आय का अधिकांश उसके चाचा के बड़े परिवार के निर्वाह में व्यय होता है। उसने प्रभाशंकर को बँटवारे के लिए बाध्य किया। इधर बँटवारा हुआ ही था कि लखनऊ में ज्ञानशंकर के ससुर राय कमलानन्द का एकमात्र पुत्र चल बसा। हर्षातिरेक से ज्ञानशंकर का मन नाच उठा क्योंकि अब उसका पुत्र मायाशंकर ही रायसाहब की विशाल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी था। पर अपने अमानुषीय स्वार्थ पर समवेदना का आवरण डालकर वह कमलानन्द के पास गया। वहाँ रायसाहब की बड़ी लड़की गायित्री से उसकी भेंट हुई। गायत्री विधवा है और विशाल सम्पत्ति की स्वामिनी। ज्ञानशंकर उसे अपने प्रेमजाल में फाँसने लगे। गायत्री के रूप-लावण्य से अधिक ज्ञानशंकर की दृष्टि उस की सम्पत्ति पर थी। एक दिन उसने गायित्री पर अपनी दुर्भावना प्रकट कर दी। गायित्री स्तब्ध रह गई। इस अवांछित परिस्थिति से छुटकारा पाने के निमित्त वह तत्काल गोरखपुर चली गई।

गायित्री के प्रस्थान के उपरान्त ज्ञानशंकर की समस्त वृत्तियां रायसाहब पर केन्द्रित हो गईं। यह निश्चित था कि ज्ञानशंकर का पुत्र मायाशंकर ही कमलानंद की सम्पत्ति का वारिस होगा। इससे ज्ञानशंकर की धनलिप्सा की बड़ी तुष्टि हुई किंतु इस संदेह से कि कहीं रायसाहब दूसरा विवाह न कर लें उसकी स्वार्थवृत्ति को आघात पहुँचा। कमलानंद ने उसके मन का भाव ताड़ लिया। उन्होंने ज्ञानशंकर की शंका निराधार बताई। पर ज्ञानशंकर को अपने ससुर पर विश्वास न आया। वह कमलानंद के साथ नैनीताल चला गया। नैनीताल में रायसाहब के अपव्यय देख कर वह मन ही मन कुढ़ा करता था।

इन्हीं दिनों एक अप्रत्याशित बात हो गई। ज्ञानशंकर को अमरीका से अपने बड़े भाई प्रेमशंकर का पत्र मिला जिसमें उसके स्वदेश लौटने की सूचना थी। इसके पूर्व प्रेमशंकर ने घर एक भी पत्र न डाला था। इससे ज्ञानशंकर ने अनुमान लगाया कि वह इस संसार में नहीं हैं। अतएव वह लखनपुर को को सोलहों आने अपना गाँव समझता था। प्रेमशंकर के आने से आधा उन्हें

देना पड़ेगा। उसकी स्वार्थ-भावना को यह रुचिकर न लगा। प्रेमशंकर से निवृत्ति पाने के लिये उसने कपट व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। विदेश से लौटने पर प्रेमशंकर का समाजिक वहिष्कार उसी की दुष्प्रेरणा का परिणाम था। इतना ही नहीं, उसने प्रेमशंकर की धर्मनिष्ठ पत्नी श्रद्धा को उनसे विमुख कर दिया। ज्ञानशंकर की कपट नीति को श्रद्धा ने सच मान लिया और वह अपने पति को धर्मद्वेषी समझ कर उनसे दूर रहने लगी। उसके हृदय में पति के प्रति अश्रद्धा[1] नहीं है, पर धर्म-बन्धन मिलन में बाधक है। प्रेमशंकर इस आपत्ति-विपत्ति से विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपना पथ स्वयं निर्धारित कर लिया था। अमरीका में उन्होंने कृषिशास्त्र का अध्ययन किया था। उनकी इच्छा थी कि वह किसी गांव में जाकर बसे और कृषकों के मध्य सेवाकार्य अग्रसर करें। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर उन्होने नगर से चार-पांच मील वरुणा के किनारे हाजीगंज में रहना निश्चित किया।

ज्ञानशंकर को चिंता थी कि प्रेमशंकर सम्पत्ति के विभाजन का प्रश्न न छेड़ दें, पर प्रेमशङ्कर को सम्पत्ति का मोह न था। पूर्वजों की सम्पत्ति भोग करने की अपेक्षा वह अपने श्रम की रोटी खाना अधिक पसन्द करते हैं। उन्होने सम्पति से इस्तीफा देकर ज्ञानशङ्कर को संतुष्ट कर दिया लखनपुर को सोलहों आने अपने अधिकार में कर ज्ञानशङ्कर ने इजाफा लगान का दावा कर दिया। उसका दावा निस्सार सिद्ध हुआ। ज्वालासिंह ने उसे खारिज कर दिया। ज्ञानशङ्कर ने अपील की किंतु वह भी खारिज हो गई। असफलता के कारण वह ज्वालासिंह से द्वेष करने लगा। उसने समाचार पत्रों में ज्वालासिंह के विरुद्ध विष वमन किया और अनेक मिथ्या आक्षेप किए। ज्वालासिंह को बदनाम करके ज्ञानशङ्कर की क्रोधाग्नि ठंडी पड़ी। पर यह असफलता उसे अधिक खली नहीं, क्योंकि इसी समय गोरखपुर से गायित्री का बुलावा आ गया। ज्ञानशङ्कर ने गायित्री की प्रशंसा में समाचार पत्रों में लिखा था, दूसरे अपने इलाके का प्रबंध करने की क्षमता उसमें नहीं थी। कारिंदों आदि की छीना-झपटी और लूट-खसोट से बचने के लिए उसने ज्ञानशङ्कर को अपनी रियासत का प्रबंधक नियुक्त किया था। ज्ञानशङ्कर गोरखपुर जा पहुँचे और प्रबंधपटुता और कार्यक्षमता के कारण गायित्री के विश्वासपात्र बन गए। इसी मध्य गायित्री को रानी की उपाधि मिल गई थी। ज्ञानशङ्कर की दृष्टि

अब भी गायत्री और उसकी सम्पत्ति पर थी। पर गायत्री को प्रभावित करने का ढङ्ग उसने बदल दिया था। गायत्री की भक्ति-भावना को दृढ़ करके ही वह उसके हृदय तक पहुँच सकता था। इसीलिये उसने भक्ति और धर्म का स्वाँग रचा। सरला गायत्री उसके पाखंड जाल में फंसने लगी।

ज्ञानशङ्कर के गोरखपुर जाने के उपराँत उसके कारिंदा गौसखाँ ने लखनपुर के किसानों पर अत्याचार बढ़ा दिये। उसने तालाब का पानी रुकवाना चाहा, पर सुक्खू चौधरी के प्रयत्न से असफल रहा। गौसखाँ ने दारोगा नूरआलम की सहायता से मिथ्या अपराध सिद्ध कराके सुक्खू को दो वर्ष का कारावास का दंड दिलाया। उसने चरागाह पर रोक लगा दी। मनोहर की पत्नी विलासी से इसी सम्बंध में कहासुनी हो गई। गौसखाँ के चपरासी फैलू ने विलासी को इतने जोर से धक्का दिया कि वह लहू लुहान हो गई। यह अपमान उसके पति मनोहर और पुत्र बलराज को असह्य था! दोनों के सहयोग से गौसखाँ को मार डाला गया। मनोहर ने थाने में जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। किंतु ज्ञानशङ्कर की तुष्टि तब हुई जब गाँव के सब बालिग व्यक्ति हिरासत में ले लिये गए। प्रेमशङ्कर का लखनपुर वालों से सम्पर्क था, अतएव उन्हें भी जेल जाना पड़ा। वह तो कुछ दिन बाद निर्दोष सिद्ध होने पर छूट गए, शेष अभियुक्तों पर मुकदमा चलने लगा डाक्टर प्रियनाथ के बयान पर अभियुक्त सेशन सुपुर्द कर दिये गए। अपने कृत्य के कारण सारे गाँव पर विपत्ति देख मनोहर को घोर आत्मग्लानि हुई। वह अपने को सबकी विपत्तियों का कारण समझने लगा। दुश्चिंताओं से उद्विग्न होकर उसने आत्महत्या कर ली। उधर बैरिस्टर इर्फानअली की उपेक्षा के कारण मुकदमे की पैरवी उचित रूप से न हो सकी। सब अभियुक्तों लम्बी अवधि के लिये दंडित कराने की ज्ञानशङ्कर की अभिलाषा पूर्ण हुई।

उधर लखनऊ में राय कमलानन्द ने एक विशाल संगीत सम्मेलन की आयोजना की। उसमें ज्ञान शंकर भी सम्मिलित हुआ। उसे रायसाहब का समस्त आयोजन अपव्यय ज्ञात होता था। राय कमलानन्द अपनी रियासत के स्वामी थे और व्यय अपव्यय सम्बन्धी मामले में किसी का हस्तक्षेप पसन्द नहीं कर सकते। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया था कि ज्ञानशंकर का भक्तवेश कपटवेश है और वह गायत्री को फांसने के लिए यह भक्ति लीला रचाये है।

रायसाहब का मुंह बन्द करने के लिए ज्ञान शंकर ने उन्हें भोजन में विष दे दिया। रायसाहब ने यौगिक क्रियाओं से विष निकाल दिया। वह मृत्यु के मुख से बच गए, पर उनका शरीर जर्जर हो गया। इस घातक प्रयोग में असफल होने पर ज्ञानशंकर बनारस भाग गया।

बनारस आकर ज्ञानशंकर को यह भय बना हुआ था कि कहीं रायसाहब गायत्री के समक्ष उसके पाखंड को अनावृत न कर दें। गायत्री को इस विषय में कुछ भी ज्ञात न था। वह ज्ञानशंकर से मिलने के लिए अधीर हो रही थी। जब ज्ञानशंकर गोरखपुर न पहुँचा तब वह स्वयं बनारस आ पहुंची। महाशय ज्ञानशंकर की भक्ति-भावना पुनः जाग उठी। खूब सत्संग होने लगे। गायत्री की धर्मनिष्ठा और मानसिक दुर्बलता से ज्ञानशंकर ने पूरा लाभ उठाया। एक रात्रि भक्ति के आवेश में गायत्री ज्ञानशंकर के चरणों पर गिर पड़ी। ज्ञानशंकर ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। इसी समय उसकी पत्नी विद्या वहां पहुंच गई। इस दृश्य ने पति की असलियत उस पर प्रकट कर दी। वह क्षुब्ध हो वहां से चली गई। गायत्री को ग्लानि थी, पर अब भी ज्ञानशंकर का जादू उसके सिर से नहीं उतरा था। ज्ञानशंकर गायत्री से अधिक उसकी रियासत के इच्छुक थे। गायत्री ने मायाशंकर को गोद लेकर ज्ञानशंकर की मनोकामना पूर्ण कर दी। इस व्यवस्था में विद्यावती की तनिक भी सम्मति नहीं थी। पति की स्वार्थलीला ने पुत्र को उससे विलग कर दिया। उसका हृदय इस मर्मान्तिक चोट को न सह सका। वह पति और पुत्र दोनों को खो चुकी थी। निराधार जीवन दुस्सह हो गया। उसने विषपान कर लिया।

विद्यावती की आत्महत्या ने गायत्री की आँखें खोल दीं। उसे ज्ञानशंकर का वास्तविक परिचय मिलगया। उसकी स्वार्थपरता, नीचता और संकीर्णता के अनेक दृष्टान्त उसे मिल चुके थे। भक्ति का छद्मवेशी आवरण गिर गया था और ज्ञानशंकर का यथार्थ स्वार्थी रूप अनावृत हो गया। ज्ञानशंकर का सम्पर्क गायत्री के लिए घातक सिद्ध हुआ। समाज उसकी ओर उँगली उठाने लगा था। वह इस स्थिति का सामना न कर सकी। आत्मदाह और ग्लानि से उसकी अन्तर्व्यथा बढ़ गई। रियासत का प्रबन्ध ज्ञानशंकर पर छोड़ और दत्तक पुत्र मायाशंकर को प्रेमशंकर के सुयोग्य हाथों में देकर उसने तीर्थयात्रा

के लिए प्रयाण किया। बद्रीनाथ के पथ पर उसने किसी आत्मदर्शी महात्मा की चर्चा सुनी। उनसे मिलने के निमित्त चल दी। महात्मा और कोई नहीं उसके पिता राय कमलानन्द थे जिन्होंने सन्यास ले लिया था। उन्हें इस रूप में देखकर गायत्री को अपना जीवन कालिमा से निबद्ध दृष्टिगत हुआ। लज्जा और ग्लानि से अभिभूत गायत्रीने पहाड़ी के शिखर से गिरकर आत्म-हत्या कर ली। उसका आत्मदाह ठंडा हो गया।

प्रेमशङ्कर लखनपुर के निर्दोष कृषकों की बन्दीगृह से मुक्ति के निमित्त अपील करना चाहते थे। अभियुक्तों को दंडित कराने में डाक्टर प्रियनाथ और विसेसर साह के बयानों का मुख्य हाथ था। दोनों बयान ही झूठे थे और पुलिस की सहायता के लिए दिए गए थे। डाक्टर साहब को प्रेमशंकर ने अपनी जान पर खेल कर भीड़ के सांघातिक प्रहारों से बचाया था। इसलिए वह प्रेमशंकर के भक्त हो गए थे। इस परोपकार ने उनका [illegible] कर दिया था और उन्होंने अपील के दौरान में सच्चा बयान देकर अभियुक्तों की निर्दोषता सिद्ध कर दी। उनके इस प्रयत्न में विसेसर साह वैरिस्टर इर्फान-अली ने बहुमूल्य सहयोग दिया। सब अभियुक्त निर्दोष सिद्ध हुए और मुक्त कर दिए गए। प्रेमशंकर की लोकसेवा ने उन्हें जन-प्रिय बना दिया। वह जनता की श्रद्धा-भक्ति के पात्र बन गये। प्रेमशंकर के त्याग, सेवा और सद्कार्यों ने उनकी धर्मनिष्ठा पत्नी श्रद्धा की सब शंकाएँ मिटा दीं। वह मिथ्या-धर्म की बाधा तोड़कर पति से आ मिली।

उधर ज्ञानशंकर गायत्री की रियासत के प्रबन्ध में दत्तचित्त थे। तभी उसे सूचना मिली कि राय कमलानन्द ने उसके पुत्र मायाशंकर को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाकर सन्यास ले लिया है। ज्ञानशङ्कर की सम्पत्ति लालसा पूर्ण हो गई। उसका सौभाग्य-सूर्य अब मध्याह्न पर था। सम्पत्तिशाली होने पर उसकी संकीर्णता कम हो गई। उसने प्रभाशंकर की पुत्रियों के विवाह में यथेष्ट सहायता दी, पुत्रों की दुखान्त मृत्यु पर शोक प्रकट करने आया। दिन-प्रतिदिन उसका यश और सम्मान बढ़ रहा था। मायाशंकर के बालिग होने पर उसका राज्य तिलक समारोह हुआ। तिलकोत्सव में उसने सब अधिकारों और स्वत्वों को त्याग दिया जो प्रथा, नियम और समाज-व्यवस्था ने उसे दिये थे। उसने अपनी रियासत के किसानों को मुक्त कर दिया। मायाशंकर

का यह सुकृत्य ज्ञानशंकर के प्रबन्ध पर प्रबलाघात था। उसके जीवन के समस्त उद्योग व्यर्थ हो गये। सम्पत्ति और अधिकारों का स्वर्ण-स्वप्न टूट गया। उसे जीवन की निरर्थकता और ग्लानिमयता ने इतना अभिभूत किया कि उसने गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली।

वस्तु

'प्रेमाश्रम' में छोटी-बड़ी कई कथाएँ हैं। प्रमुख कथा ज्ञानशंकर की है। सहायक कथाओं में प्रेमशंकर की कथा, कमलानन्द की कथा, गायत्री की कथा, प्रभाशंकर की कथा, ज्वालासिंह की कथा एवं लखनपुर के किसानों की कथा मुख्य हैं। ये कथाएँ ज्ञानशङ्कर की कथा से किसी न किसी प्रकार अनुस्यूत हैं और उसे अग्रसर करने में सहायक हैं। मुख्य कथा और सहायक कथाओं का सम्बन्ध ज्ञानशंकर द्वारा स्थापित होता है। वह प्रेमशंकर का भाई है, कमलानन्द का दमाद है, गायत्री की सम्पत्ति पर दृष्टि रखता है, प्रभाशंकर का भतीजा है, ज्वालासिंह का दुष्प्रकृति मित्र है और लखनपुर के किसानों का रक्त चूसने वाला जमीन्दार है। उसकी कथा सहायक कथाओं से उसके इन्हीं सम्बन्धों द्वारा प्रभावित है। सब कथाओं का सम्बन्ध-सूत्र भी वही है। उपन्यासकार ने ज्ञानशंकर के चरित्र के इर्द-गिर्द उन सब घटनाओं की योजना की है जो उपन्यास की वस्तु की प्रगति के साथ ही मुख्य और सहायक कथाओं को परस्पर सम्बन्धित करती हैं। प्रमुख कथा के साथ गौण कथाओं का सम्बन्ध-निर्वाह यथेष्ट सफल है। वे परस्पर मिली-जुली मालूम देती हैं और उनकी पृथक् प्रतीति नहीं होती।

कथा वस्तु की घटनाओं के छः केन्द्र हैं। तीन गौण हैं। मुख्य केन्द्र बनारस, गोरखपुर और लखनऊ हैं। मुख्य केन्द्रों का निर्णय ज्ञानशंकर के कार्य कलाप के आधार पर किया गया है। उपर्युक्त तीन केन्द्रों में ही उसके कार्य-व्यापार सम्पन्न होते हैं। बनारस में वह लखपुर के शोषण का प्रबन्ध करता है, गोरखपुर में गायत्री को अधिकृत करने में प्रयत्नशील है और लखनऊ में राय कमलानंद की रियासत पर दृष्टि रखता है। उसकी महत्वाकांक्षा भी इन तीन केन्द्रों में सीमित है। इन केन्द्रों का सम्बन्ध-सूत्र भी वही है। आवश्यकतानुसार वह तीनों केन्द्रों का परिभ्रमण कर उनमें संबंध स्थापित करता रहता है। गायत्री भी इन केन्द्रों का सम्बन्ध-सूत्र है, पर बहुत क्षीण।

इस उपन्यास से समझना चाहिये। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के उपन्यासों की कथावस्तु-कला के विकास में 'प्रेमाश्रम' का उल्लेखनीय स्थान है।

कथा

पात्र-सृष्टि के व्यापकत्व की दृष्टि से भी 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है। 'वरदान,' 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' में एकवर्गीय चरित्रों का प्राधान्य है। इन उपन्यासों का सम्बंध मूलतः मध्यवर्ग से है। इसलिये मध्यवर्गीय पात्रों के अतिरिक्त अन्यवर्गीय पात्रों के लिए स्थान न था। 'प्रेमाश्रम' में प्रथमबार प्रेमचंद व्यापक समाज सम्बधों को लेकर चले हैं, अतएव इसमें कई वर्ग के पात्रों की अवतारणा हुई है। इसमें जमीन्दार वर्ग, अधिकारीवर्ग, मध्यवर्ग और कृषकवर्ग के चरित्र जुटाए गए हैं। नागरिक और ग्रामीण पात्रों के प्रवृत्ति चित्रण में उनके वातावरण का ध्यान भी रखा गया है। इस उपन्यास में विकास-विस्तार के कारण पात्र-संख्या अधिक है। इसमें प्रेमचद सामाजिक प्रश्न से आगे बढ़कर राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार करते हैं, जिनमें भूमि की समस्या मुख्य है। इस समस्या के साथ जमीन्दारों और किसानों का प्रगाढ़ सम्बंध है। इसके अतिरिक्त मध्यवर्ग के उन शिक्षित व्यक्तियों का सम्बंध भी है जो अधिकारीवर्ग में बदल जाते हैं और समस्या के अङ्ग बन जाते हैं। इनमें अपने वर्ग के समस्त गुण-दोष प्रतिफलित होते हैं। 'प्रेमाश्रम' में इन वर्गों के पात्रों की चरित्र-व्याख्या में उपन्यासकार को अच्छी सफलता मिली है, किंतु जहाँ वह उद्देश्य की दृष्टि से पात्रों के व्यक्तित्वों को निजी मन्तव्यों से प्रभावित करता है, वहाँ पात्र-सृष्टि की कलात्मकता को गहरा आघात लगता है।

'प्रेमाश्रम' में उपन्यासकार ने लिखा है—'मानव चरित्र न बिलकुल श्यामल होता है, न बिलकुल श्वेत। उसमें दोनों ही रङ्गों का विचित्र समिश्रण होता है, किंतु स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह परिस्थितियों का खिलौना मात्र है।' यहाँ प्रेमचंद ने ठीक ही लिखा है कि मनुष्य के चरित्र-निर्माण में परिस्थितियों का मुख्य हाथ रहता है। अतएव उपन्यास के पात्रों के चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों का प्रभाव दिखाना वांछनीय है। पर 'प्रेमाश्रम' के पात्रों पर परिस्थितियों का

प्रभाव बहुत कम अंकित किया गया है। चरित्र एक 'टाइप' में ढले हैं और परिस्थितियों का उन पर प्रभाव बहुत कम पड़ता है। ज्ञानशङ्कर के चरित्र में यथेष्ट व्यापकत्व है किंतु उसके चरित्र पर परिस्थितियों का प्रभाव नहीं दिखाया गया है। प्रारम्भ से ही उसे एकरूप प्रस्तुत किया गया है। उसकी मनोवृत्तियाँ सब परिस्थितियों में अपरिवर्तित रहती हैं। वस्तुतः इस उपन्यास के अधिकांश चरित्र प्रेमचंद की पूर्व-निश्चित योजना के प्रतिरूप हैं। वे उनके संकेत पर ही अपने कार्य-कलाप निर्धारित करते हैं। प्रेमशङ्कर की आदर्शवादिता उनकी मानवीयता की उपेक्षा कर गढ़ी गई है। उनके चरित्र में प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व-चित्रण के लिये पर्याप्त अवसर था, पर उपन्यासकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। इस चरित्र पर परिस्थितियों का प्रभाव भी नहीं अंकित किया गया है। आदि से अन्त तक दृढ़ आदर्शवादी पात्र का परिचय मिलता है जो मनुष्य से अधिक देवता है। कमलानंद का चरित्र तो अपने प्रकार का एक ही है। इस पात्र की चरित्रगत विशिष्टताओं में अद्भुत-तत्त्व की प्रधानता है। यह न परिस्थितियों द्वारा परिचालित है और न सामान्य मानवीय स्तर पर टिका है। संक्षेप में कमलानंद को असामान्य पात्र कहा जा सकता है।

'प्रेमाश्रम' में चरित्रों के हृदय-परिवर्तन के कई उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं। यहाँ भी प्रेमचंद के आग्रह से ऐसा हुआ है, यह चरित्रों की निजी प्रवृत्ति नहीं है। इसीलिये इस पर विश्वास नहीं होता, मान लेना पड़ता है। ईजादहुसेन ऐसा धूर्त, इर्फानअली ऐसा लोभी और प्रियनाथ ऐसा सरकारी पिट्ठू—यह सब एक ही दिन में प्रेमशङ्कर की सद्वृत्तियों से प्रभावित होकर अपनी दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़कर सेवाधर्म के 'पुतले' बन जाते हैं। चीते के दाग मिट जाते हैं और वह अहिंसा का पुजारी बन जाता है। हृदय-परिवर्तन असम्भव नहीं है, पर जिस प्रकार उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है उस पर विश्वास लाना कठिन है। इस उपन्यास में स्त्री-पात्रों की अपेक्षा वस्तु के कार्य-व्यापार में गायत्री का अधिक योग है। विद्या, श्रद्धा, शीलमणि और बड़ी बहू के चरित्र-चित्रण की अन्तिम झलक मर्मस्पर्शी है। उसकी मृत्यु प्रगाढ़ नैराश्य और करुणाप्लुत वातावरण का प्रभाव छोड़ जाती है।

'प्रेमाश्रम' के सामान्य पात्र विशेषरूप से ग्रामीण पात्रों के चरित्र

बड़े सजीव और स्वाभाविक बन पड़े हैं। मनोहर, बलराज, कादिर, डपटसिंह आदि के चरित्र सामान्य और संक्षिप्त हैं, पर इनमें यथेष्ठ प्रभावक्षमता है। ग्रामीण पात्र-सृष्टि में उपन्यासकार की यथार्थवादी दृष्टि प्रमुख है, इसीलिये इन पात्रों में चरित्र-चित्रण कला का अच्छा विकास हुआ है। मनोहर के अभिमान में, बलराज के आवेश और उद्दण्डता में, कादिर की सत्यनिष्ठा में, जीवन के स्वरों में आरोह-अवरोह ध्वनित होता है। इन्हीं चरित्रों में से कुछ को लेकर प्रेमचंद ने [illegible] चित्रण प्रस्तुत किया है। मनोहर के चरित्र-चित्रण में यह विशेषरूप से द्रष्टव्य है। ग्रामीण पात्र-सृष्टि में प्रेमचंद की चरित्र-चित्रण कला का पूर्णोन्मेष हुआ है।

'प्रेमाश्रम' में सबसे बड़ी कलागत त्रुटि है, अनेक आत्महत्याएँ। आत्महत्याओं के आधिक्य से पात्र-योजना कृत्रिम ज्ञात होती है। वस्तु में पात्रों की समस्या का संगत और स्वाभाविक समाधान न कर सकने के कारण उपन्यासकार उनकी आत्महत्या करा देता है। विद्या, गायत्री, मनोहर, ज्ञान शङ्कर को आत्महत्या द्वारा हटाया गया है। यदि कमलानंद सन्यासी न हो जाते तो कदाचित् उन्हें भी आत्महत्या करनी पड़ती। तेजशङ्कर और पद्म शङ्कर प्रसङ्ग भी हत्या और आत्महत्या द्वारा समाप्त होता है। अन्य पात्रों की आत्महत्या की भाँति ही प्रमुख पात्र ज्ञानशङ्कर जिन परिस्थितियों में आत्महत्या करता है, वह कृत्य को स्वाभाविक परिणाम सिद्ध करने में सहायक नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु में ज्ञानशङ्कर का स्थान न रहने के कारण उसे इस कृत्रिमतापूर्ण प्रणाली से हटाया गया है। आत्महत्या के समय ज्ञानशङ्कर अपील भरे शब्दों में कहता भी है 'हाय! मैं जबरन मारा जा रहा हूं!' पर उसकी अपील का उपन्यासकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह ज्ञानशङ्कर को गङ्गा में डूबने के लिये बाध्य करता है। उपन्यासकार ने अन्याय अपने कई पात्रों के साथ किया है। पात्र-सृष्टि का यह मनमाना संहार उसकी कलागत त्रुटियों में प्रधान है।

'प्रेमाश्रम' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है।

ज्ञानशङ्कर उपन्यास का मुख्य पात्र है। उसकी चरित्र-व्याख्या के निमित्त उसका जीवनदर्शन समझना नितान्त आवश्यक है। इससे उसकी चरित्रगत प्रवृत्तियां अत्यधिक स्पष्ट हो जाती हैं। उसी के शब्दों में—'मैं विचार का

उपासक हूं ......मैं अपनी विचार-स्वतंत्रता के सामने लोकमत की लेश-मात्र भी परवाह नहीं करता। जीवन आनंद से व्यतीत हो, यह हमारा अभीष्ट है। यदि संसार स्वार्थपरता कहकर इसकी हँसी उड़ाये, निन्दा करे, तो मैं उसकी सम्मति को पैरों के तले कुचल डालूँगा...... ..मैं तो इसे भी सर्वथा अनुचित समझता हूं, कि कोई असमय और बिना पूर्व सूचना के मेरे घर आये, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो ....यह जीवन-संग्राम का युग है, और यदि हमको संसार में जीवित रहना है तो विवश होकर नवीन और पुरुषोचित सिद्धांतों के अनुकूल बनना पड़ेगा।' नवीन और पुरुषोचित सिद्धांत से उसका अभिप्राय है दयाहीन स्वार्थपरता और अनवरत शोषण। इन शब्दों में उसकी नीति और भी स्पष्ट हो जाती है—यह जीवन-संग्राम है। इस क्षेत्र में विवेक, धर्म और नीति का गुजर नहीं। यह कोई धर्मयुद्ध नहीं हैं। यहाँ कपट, दगा, फरेब सब कुछ उपयुक्त है, अगर उससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो। यहाँ छापा मारना, आड़ से शस्त्र चलाना विजय प्राप्त के साधन हैं। यहाँ औचित्य-अनौचित्य का निर्माण हमारी सफलता के आधीन है।' जीवन के दुष्प्रयोग की इस दुर्दमनीय धारणा ने उसके समस्त कृत्यों को असाधारण अमानुषीय बना दिया है। स्वार्थसिद्धि के निमित्त ज्ञानशंकर ने कपटाचार, मक्कारी, हिंसात्मक कृत्य, झूठ, द्वेष और अनाचार का जी भर के प्रयोग किया। उसका जीवन-दर्शन उसे जिस कुपथ पर चलाता है, वह अनीति और अविचार का लम्बा रास्ता है। प्रवृत्तियों के मूल में वह शिक्षा-प्रणाली है जिसने मनुष्य को स्वार्थसेवी बना दिया है। राय कमलानन्द ने उससे कहा था—'तुम अधर्म स्वार्थ के पञ्जे में दबे हुए हो। यह.........तुम्हारी धर्मविहीन शिक्षा का दोष है। तुम्हें आदि से ही भौतिक शिक्षा मिली है.........तुम्हारे गुरुजन स्वयं स्वार्थ के पुतले थे। उन्होंने कभी सरल सन्तोषमय जीवन का आदर्श तुम्हारे सामने नहीं रखा........ तुम्हारे आत्मिक विकास की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया, तुम्हारे मनोगत भावों को, तुम्हारे उद्गारों को सन्मार्ग पर ले जाने की चेष्टा नहीं की गयी......... . ...तुम जो कुछ भी हो, अपनी शिक्षा-प्रणाली के बताये हुए हो।' इसी के फलस्वरूप जिस स्वार्थ-सिद्धान्त ने ज्ञानशंकर के जीवन-दर्शन की आधारशिला रखी, वह मनुष्य सद्वृत्तियों को पीस कर पी गया। उसके चरित्र में दम्भ, द्वेष, ईर्ष्या, कपट, पाखण्ड, अनीति, अत्याचार

अनाचार और अविचार प्रतिफलित हुए। जो उसके स्वार्थपथ में अवरोध बनकर आया, उसी पर ज्ञानशंकर ने विरोध-वृत्ति से प्रहार किया। मित्र पर मिथ्या आक्षेप किये, भाई के साथ कपट-व्यवहार किया, ससुर को विष दे डाला और निरीह किसानों के घर उजाड़ दिए। स्वार्थ-सेवा ने उसका विवेक हर लिया। सद्-असद् ज्ञान नष्ट हो गया। पत्नी की उपेक्षा करके उसने बड़ी साली को अपने कपट जाल में फाँसना चाहा। उसे गायत्री की अपेक्षा उस की सम्पत्ति की चाह थी। इसी के लिए उसने भक्ति का झूठा स्वाँग रचा। उसकी महत्वाकाँक्षा धन-सम्पत्ति की उपासना में केन्द्रस्थ थी जिसके पथ पर उसकी दुर्नीति और दुष्कृत्य गहरे चिन्ह छोड़ गए थे। उसकी सम्पत्ति-लालसा पूरी होती है। भाग्य के विधान से वह गायत्री और कमलानन्द की विपुल सम्पत्ति अधिकृत करता है। उसे न सही, उसके पुत्र को सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। पर उसका पुत्र मायाशंकर उसकी इच्छा के विरुद्ध रियासत के सब अधिकार त्याग देता है। ज्ञानशंकर प्रारब्ध का यह आघात नहीं झेल पाता। जिस सम्पत्ति के लिए उसने जीवन भर उद्योग किया, निंद्यतम कर्म किए, वही निमिष मात्र में हाथ से निकल गई। उसे सम्पत्ति विहीन जीवन वृथा मालूम दिया। निराशा के प्रगाढ़ क्षणों में उसने गङ्गा में कूद कर आत्महत्या कर ली। उसका अविश्रान्त जीवन चञ्चल लहरों में शान्त हो गया।

प्रेमशंकर का चरित्र ज्ञानशंकर के सर्वथा विपरीत है। ज्ञानशंकर की मनोगुणात्मक प्रकृति और प्रेमशंकर की सात्विक में बड़ा अंतर है। अमरीका-प्रवास में प्रेमशंकर ने कृषिशास्त्र का अध्ययन किया था। देश लौटने पर उन्होंने किसानों की सेवा और उनके जीवन सुधार-कार्य को अपने जीवन का ध्येय बना लिया। 'सेवा की धुन ने उन्हें शारीरिक सुखों से विरक्त कर दिया था। किसी गाँव में हैजा फैलने की खबर मिलती, कहीं कीड़े ऊख के पौधों का सर्वनाश किए डालते थे; कहीं आपस में लठियाव होने का समाचार मिलता, प्रेमशंकर डाकियों की भाँति इन सभी स्थानों पर जा पहुंचते और यथासाध्य कष्ट-निवारण का प्रयास करते।' कृषकों की सेवा के लिए यह आवश्यक था कि नगर छोड़कर गाँव में बसा जाय। इसी निमित्त प्रेमशंकर ने बनारस छोड़कर हाजीगंज में रहना प्रारम्भ किया। उन्होंने सरल

सन्तोषमय जीवन की सार्थकता प्रत्यक्ष कर दी। उनके प्रभाव से हाजीगंज की काया पलट हो गई। प्रेमशंकर ने अपना जीवन-क्रम जिन आदर्शों और नियमों के अनुसार स्थिर किया था, उन पर वे अदम्य भाव से दृढ़ रहे। उन्होंने यदि सम्पत्ति को बुरा समझा, तो उसे ठुकरा दिया; जमींदारी को दलाली माना, तो त्याग दिया; मिथ्या विश्वास को निरर्थक घोषित किया, तो धर्मान्ध पत्नी का वियोग स्वीकार किया। उन्होने अपने उद्योग, अध्यवसाय और दृढ़ता से उन सब परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की जो उनके प्रतिकूल थी। उनके आदर्श निजी जीवन निर्माण में ही नहीं, अन्य भटकते प्राणियों के उद्धार में भी सहायक हुए। प्रेमशंकर के प्रभाव से ही ईर्फानअली, प्रियनाथ और ज्वालासिंह ने अनीति और शोषण का पथ छोड़ कर न्याय और नीति का पथ ग्रहण किया। यह उनकी शिक्षा की प्रेरणा थी कि इतनी अल्पायु में मायाशंकर ने त्याग का महान् दृष्टांत प्रस्तुत किया। उनके चरित्र की महानतम विजय थी पत्नी के मिथ्या विश्वासों में परिवर्तन। उन्होंने अपने सत् कर्मों द्वारा घर और बाहर सबकी श्रद्धा अर्जित की।

प्रेमशंकर के चाचा प्रभाशंकर प्राचीन परम्पराओं का पोषण करने वाले मर्यादा प्रेमी व्यक्ति हैं जिन्होंने 'भविष्य-चिन्ता का पाठ न पढ़ा था। उनका समस्त जीवन विलास और कुल-मर्यादा की रक्षा में व्यतीत हुआ था। खिलाना, खाना और नाम के लिए मर जाना—यही उनके जीवन के ध्येय थे; उन्होंने सदैव इसी त्रिमूर्ति की आराधना की थी और अपनी वंशगत सम्पत्ति का अधिकांश बर्बाद कर चुकने पर भी वह अपने व्यावहारिक नियमों में संशोधन करने की जरूरत नहीं समझते थे, या समझते थे तो अब किसी नये मार्ग पर चलना उनके लिए असाध्य था। वह एक उदार और गौरवशील पुरुष थे। सम्पत्ति उनकी दृष्टि में मर्यादा पालन का साधन मात्र थी। इससे श्री वृद्धि भी हो सकती है.........दान-दक्षिणा के शुभ अवसर आते तो उनकी हिम्मत आसमान पर जा पहुंचती थी। उस नशे में उन्हें इसकी सुध न रहती थी; कि फिर क्या होगा और काम कैसे चलेंगे ?' उनका स्वभाव भी प्राचीन रईसों की निर्द्वन्दता से पूर्ण है। इसीलिये जमींदारी में उनके कार्यों में उदारता आ गई है। वे व्यर्थ में अपने असामियों को कष्ट नहीं देना चाहते। इसी सम्बन्ध में उनकी अपने भतीजे ज्ञानशंकर से कहा—

सुनी हो जाती है। यद्यपि उन्हें ज्ञानशंकर से पृथक् होना पड़ता हैं, पर वे सम्मिलित परिवार-प्रथा के अनुमोदक हैं। जब उन्हीं के कुटुम्ब की प्राचीन मर्यादा का यह स्तम्भ गिर जाता है, तब उन्हें बड़ा दुःख होता है। नियति चोट पर चोट करती है। उनके दो पुत्र अकाल मृत्यु प्राप्त करते हैं। वृद्धावस्था में पुत्र-शोक उन्हें जर्जर कर देता है, पर उनके आतिथ्य-सत्कार में अंतर नहीं पड़ता अवसर पड़ने पर प्रभाशंकर अपने समस्त पाक-नैपुण्य से अतिथियों का आदर-सत्कार करते हैं। उनके निरर्थक जीवन का यही अर्थ अवशेष रह जाता है।

राय कमलानंद अद्भुत, विलक्षण और असाधारण व्यक्ति हैं। उनकी बहुज्ञता आश्चर्यचकित कर देती है। उपन्यासकार के शब्दों में—'रायसाहब बड़े रसिक पुरुष थे। घुड़दौड़ और शिकार, सरोद और सितार से उन्हें समान प्रेम था। साहित्य और राजनीति के भी ज्ञाता थे ....दिव्य कलाओं में भी वह इससे कम प्रवीण न थे........काव्य-कला में भी उनकी कुशलता और मार्मिकता कवियों को लज्जित कर देती थी, उनकी रचनाएँ अच्छे-अच्छे कवियों से टक्कर लेती थीं। संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, सभी भाषाओं के वे पण्डित थे। स्मरणशक्ति विलक्षण थी।' यहाँ तक तो उनका चरित्र असामान्य होकर भी लौकिक है। पर प्रेमचंद ने उसे आत्मदर्शिता से मण्डित अलौकिक-स्पर्श प्रदान किया है। राय कमलानंद ज्ञानशङ्कर के आंतरिक भावों को एक दृष्टि से भांप ही नहीं लेते, उसके मुँह से प्रकट भी करा लेते हैं। उनकी 'हिपनोटिक' शक्ति के सम्मुख ज्ञानशङ्कर असमर्थ हो जाता है। यही नहीं, यौगिक क्रियाओं द्वारा वे ज्ञानशङ्कर द्वारा दिये विष के प्रभाव से अपनी रक्षा में समर्थ होते हैं। उनकी बहुज्ञता और प्रतिभा के साथ उनकी अलौकिक सिद्धियों ने उन्हें विलक्षण प्रभावसम्पन्न व्यक्ति बना दिया है, जिसके प्रति संभ्रम और आतङ्क का अनुभव होता है।

गायत्री राय कमलानंद की विधवा पुत्री है। पति की मृत्यु के उपरांत वह स्वयं अपनी रियासत का प्रबंध करती है। सरल प्रकृति के कारण वह ज्ञानशङ्कर के जाल में फंस जाती है, किन्तु ज्ञानशङ्कर की कुचेष्टा उसकी सम्मान-भावना को पुनः उद्दीप्त कर देती है। पर ज्ञानशङ्कर के प्रशंसात्मक लेख से प्रसन्न हो वह पूर्व दुर्व्यवहार भूल जाती है और उसे अपनी रियासत का

प्रबंधक नियुक्त करती है। उसकी धार्मिक मनोवृत्ति परख कर ज्ञानशङ्कर ने इसी रास्ते उसके हृदय में प्रवेश निश्चित किया। सरला गायत्री उसकी कपट चाल न समझ सकी। प्रेम-भक्ति का रंग चढ़ाने के लिये ज्ञानशङ्कर ने जिस राधा कृष्ण-लीला का सूत्रपात किया, वह अज्ञात रूप से गायत्री के अन्तर को प्रभावित कर रही थी। राधाकृष्ण के प्रेमाभिनय से उसकी अतृप्त कामनाएँ उत्तेजित हो रही थीं। वास्तव में वह राधा और कृष्ण के प्रेमतत्त्व को समझने में असमर्थ थी। उसकी भौतिक दृष्टि उस प्रेम के ऐन्द्रिक स्वरूप से आगे न बढ़ सकती थी और उसका हृदय इन प्रेम-सुख कल्पनाओं से तृप्त न होता। वह उन भावों को अनुभव करना चाहती थी। विरह और वियोग, ताप और व्यथा, मान और मनावन, रास और बिहार, आमोद, और प्रमोद का प्रत्यक्ष स्वरूप देखना चाहती है। उसकी इसी दुर्बलता पर भक्ति का रंग चढ़ा कर ज्ञानशङ्कर ने उसे वशीभूत कर लिया। पर विद्या की आत्महत्या ने ज्ञानशङ्कर की कपट-धार्मिकता का नग्न रूप प्रकट कर दिया। उसी के साथ गायत्री को अपने पतन की अनुभूति होने लगी! भक्ति का रोगन उड़ गया और वास्तविकता का विकराल रूप प्रकट हो गया। उसकी सम्मान भावना पर भक्ति बिजली बन गिरी और हृदय आत्मदाह में जलने लगा। उसकी वेदना का अन्त जीवन के साथ ही हुआ। ग्लानिमय जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा उसे मृत्यु का पथ अंगीकृत था।

समाज

"प्रेमाश्रम" में ग्रामीण और नागरिक समाज का चित्रण है जिसके अन्तर्गत विभिन्न वर्गों के जीवन-चित्र प्रस्तुत किये गए हैं। उपन्यासकार की दृष्टि ग्रामीण समाज के चित्रण में कृषक वर्ग की समस्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण है। इस उपन्यास की मूल समस्या भूमि की समस्या है। इससे जमीन्दार और कृषकों का सीधा सम्बंध है, किन्तु अधिकारी वर्ग भी किसी न किसी रूप से सम्बंधित है। वह किसी एक पक्ष का सहयोगी अवश्य है— अधिकतर वह भूमिपति वर्ग के साथ है। इस प्रकार नगर का शिक्षित वर्ग भी समस्या से असम्पृक्त नहीं है। अतएव 'प्रेमाश्रम' के समाज-चित्रण में प्रायः सब वर्गों के जीवन की झलक मिल जाती है।

यह हिन्दी का प्रथम उपन्यास है जिसमें भारतीय ग्रामीण-समाज की समस्याओं को व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। 'प्रेमाश्रम' का ग्रामीण समाज शोषित समाज है। शोषण के चक्र में अनवरत पिसते रह कर वह दुरावस्था की उस सीमा तक पहुँच गया है, जहाँ जीवन अभिशाप हो उठता है। उसे भूमिपति, अधिकारियों और महाजनों की सम्मिलित शक्ति ने निचोड़ लिया है। उपन्यासकार ने ग्रामीण-समाज की दुर्दशा चित्रित करते हुए लिखा है --'चारों तरफ तबाही छायी हुई थी, ऐसा बिरला ही कोई घर था जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोंपड़े में और कुछ दिखाई न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँ तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थीं और वह घर ही क्या थे? एक-एक, दो-दो, छोटी तंग कोठरियाँ थीं। एक मनुष्यों के लिये एक पशुओं के लिये। उसी एक कोठरी में खाना, सोना, उठना, बैठना सब कुछ होता था.........जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे, उनके बदन पर साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वह भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे.........।' यह व्यापक दीनता और दरिद्रता उस आर्थिक शोषण का फल है जो जमीन्दारी प्रथा का अनिवार्य अङ्ग है। जमीन्दार आर्थिक शोषण से ही संतुष्ट नहीं होता, कृषक वर्ग को पीस डालने के लिये वह शारीरिक यातनाओं का प्रयोग भी करता है। प्रेमचंद ने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है 'फैजुल्लाह ने सख्ती करनी शुरू की। किसी को चौपाल के सामने धूप में खड़ा करते, किसी को मुश्कें कसकर पिटवाते, दीन नारियों के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसी की चूड़ियाँ तोड़ी जातीं, किसी के जूड़े नोचे जाते।" कृषकों के उत्पीड़न द्वारा शोषण का पथ खूब प्रशस्त किया जाता है। इस विषय में सब जमीन्दार एक हैं। स्वार्थी ज्ञानशङ्कर यदि शोषण करता है तो आश्चर्य नहीं, पर आश्चर्य तब होता है जब आत्मदर्शी राय साहब अपने कृषकों को हन्टरों से पीटते हैं और उनकी सुयोग्य पुत्री गायत्री अपने असामियों के घर जला देने की व्यवस्था करती है। पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि यह व्यक्तियों का प्रश्न नहीं है, प्रथा का दोष है। यह जमीन्दार और किसान सम्बंध का दोष है जिसमें शोषण ही व्यवस्था का आधार है। प्रेमचंद ने यह भी चित्रित किया है

कि शोषण और दमन से कृषकों की नैतिकता कमजोर हो गई है। सच बोलते उन्हें डर लगता है, पारस्परिक विश्वास टूट गया है और एक दूसरे के विरुद्ध गठबन्धन करते हैं। यहाँ उपन्यासकार का यह मन्तव्य है कि उनके अधः पतन का दायित्व उस आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पर है जिसने उनकी मनुष्यता को पैरों तले रौंद डाला है।

'प्रेमाश्रम' जहाँ शोषण और उत्पीड़न का चित्रण करता है, वहीं वह कृषकों की जाग्रति और विद्रोहात्मक स्वर का परिचय भी देता है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने सामाजिक अन्याय और आर्थिक-शोषण के विरुद्ध कृषकों की संघर्ष-कथा का चित्रांकन भी किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें पराभूत होना पड़ता है, पर अन्याय का विरोध करने की भावना उनमें विद्यमान है। मनोहर और उसका पुत्र बलराज अनीति और अन्याय का सर्वाधिक विरोध करते हैं। बलराज कहता है—'जब से दुनिया का थोड़ा-बहुत हाल जानने लगा हूँ, मुझसे अन्याय नहीं देखा जाता। जब किसी जबरे को किसी गरीब का गला दबाते देखता हूँ तो मेरे बदन में आग सी लग जाती है······ जमीन्दार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुँह न खोलें। इस जमाने में तो बादशाहों का भी इतना अख्तियार नहीं, जमींदार किस गिनती में हैं।' वह यह जानता है कि 'रूस देश में काश्तकारों ही का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पञ्चायत राज करती है।' कृषक-वर्ग की अपने अधिकारों के प्रति जाग्रति पूर्ण नहीं है, पर उपन्यासकार ने यह दिखाया है कि आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष का रास्ता भी अपना लेता है। 'प्रेमाश्रम' के किसानों को भूमि की रक्षा के लिए यही करना पड़ा था। परिस्थितियों ने कादिर ऐसे सहिष्णु व्यक्ति को बाध्य किया कि वह कहे—'हम भी इसी धरती से पैदा हुए हैं और एक दिन इसी में समा जायेंगे। फिर यह चोट क्यों सहें? धरती के ही लिए छत्रधारियों के सिर गिर जाते हैं, हम भी अपना सिर गिरा देंगे।' यह संघर्ष की भावना प्रेमचन्द के समकालीन ग्रामीण समाज में धीरे-धीरे घर कर रही थी। जिस प्रकार यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि जमींदारी-प्रथा ने किसानों का शोषण किया, उसी प्रकार यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि कृषक वर्ग राजनीतिक जाग्रति के फलस्वरूप अपने

अधिकारों के निमित्त संघर्ष का पद ग्रहण करने लगा था। आगे चलकर व्यापक आधार पर किसान आंदोलनों का प्रभाव पड़ा, जिसका 'कर्मभूमि' में चित्रण हुआ है।

'प्रेमाश्रम' में जमींदार वर्ग के नवीन और प्राचीन रूप से परिचय होता है। प्रभाशंकर प्राचीन परम्पराओं में पगे जमींदार है, ज्ञानशंकर जमींदार वर्ग का आधुनिक संस्करण है। यद्यपि ये दोनों ही शोषण पर निर्भर हैं, लेकिन प्राचीन सामन्तवाद शोषण के साथ-साथ परोपकार और दया-दक्षिणा भी करता जाता है। कृषकों के साथ उसका व्यवहार उतना कठोर नहीं है, जितना नवीन सामन्तवाद का। पश्चिमी शिक्षा और पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव में आकर स्वार्थी, लालची और क्रूर हो गया है। अपने स्वार्थ के लिए यह अन्याय, अनाचार और अविचार के पद पर चलता है। निर्भय शोषण ही इसका लक्ष्य है। प्राचीन जमींदार वर्ग जिलाता भी है और शोषण भी करता है, नया केवल शोषण करता है। यह मानवीयता से असम्पृक्त शोषण की मशीन है। सामन्तवाद ने कृषक-वर्ग के जीवन को जटिलतापूर्ण कर दिया है। किसानों की विषम आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का कारण प्रेमचंद सामन्ती-व्यवस्था को मानते हैं। 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने कृषक-जमींदारी सम्बंध प्रसूत समस्याओं का विस्तारपूर्वक चित्रण किया है। इसके साथ यह ध्वनि भी 'प्रेमाश्रम' में निहित है कि सामन्तवाद पतनोन्मुख है। लखनपुर के जमींदारों के पूर्वजों का जर्जर भवन नाशोन्मुख सामन्ती-व्यवस्था का प्रतीक है—'दोनों ही खण्ड जगह-जगह टूट-फूट गए थे। कहीं कोई कड़ी टूट गयी थी और उसे थूनियों के सहारे रोका गया था, कहीं दीवार फट गई थी और कहीं छत धँस पड़ी थीं—एक वृद्ध रोगी की तरह जो लाठी के सहारे चलता हो........।'

इस उपन्यास में अधिकारी वर्ग को भी शोषकवर्ग के रूप में चित्रित किया गयाहै। यह वर्ग जनता की सेवा न करके उसके उत्पीड़नमें सहायक होता है। सरकारी काम के नाम पर न केवल बेगार कराता है अपितु अत्याचार भी करता है। प्रेमचंद ने दिखाया है कि झूठे मुकदमें बनाकर निरपराध व्यक्तियों को फँसाना, रिश्वत लेना और प्रजा-पीड़न में यह वर्ग, दक्ष है। दारोगा, चपरासी, तहसीलदार आदि छोटे-बड़े अफसर कृषकों के शोषण-उत्पीड़न में

अग्रणी हैं । कादिर के शब्दों में— 'हाकिमों का दौरा क्या है, हमारी मौत है ।' इन दौरों में अधिकारी वर्ग की धाँधली और अंधेर और भी बढ़ जाता है । अधिकारियों द्वारा 'प्रेमाश्रम' के ग्रामीण-समाज के शोषण का यथार्थ वर्णन उपन्यासकार ने इन शब्दों में किया है—'देहातों में ..उनका हाथ अपने सोंटे पर होता है या किसी दीन किसान की गर्दन पर......जितना खा सकते हैं, बार-बार खाते हैं और जो नहीं खा सकते, वह घर भेजते हैं......देहात वालों के यह बड़े संकट के दिन होते हैं, उनकी शामत आ जाती है, मार खा जाते हैं, बेगार में पकड़े जाते हैं, दासत्व के दारुण निर्दय आघातों से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है ।' 'प्रेमाश्रम' में अधिकारी वर्ग के कारनामों की कलई खोली गई है और यह दिखाया गया है कि प्रजा-रक्षक प्रजा-भक्षक बन जाते हैं । इसी प्रकार पुलिस, वकीलों और न्यायलयों की लोकविरोधी नीति की आलोचना भी उपन्यास में की गई है । प्रेमचंद ने लिखा है—'इन जजों का यही हाल है, उनका अभीष्ट सरकार का रोब जमाना होता है, न्याय करना नहीं.........कितने निरपराधी केवल पुलिस के कौशल तथा वकीलों की दुर्जनता के कारण दण्ड भोगा करते हैं.........आदमियों के जीवन-मरण का निर्णय सत्य और न्याय के बल पर नहीं, न्याय को धोखा देने के बल पर होता है ।' अपनी इस आलोचना के प्रमाण रूप में उपन्यासकार के लखनपुर ने निरपराध व्यक्तियों का दण्डित होना दिखाया है ।'

प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में यह स्पष्ट अंकित किया है कि नगर का शिक्षित-समाज स्वार्थी और आत्मसेवी है । वकील और डाक्टर ऐसे शिक्षा सम्पन्न प्राणी भी जन-शोषण में सहायक हैं । डाक्टर प्रियनाथ और इर्फान-अली ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी प्रभुसता को धन-सञ्चय की मशीन बना लिया है । 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर ही ऐसे व्यक्ति हैं जो शिक्षा का आदर्श समाज-सेवा मानते हैं और आदि से अंत तक लोक-सेवा में दत्तचित्त रहते है । उपन्यासकार ने कौंसिल और राजसभा में चुने गए सदस्यों की यथार्थ प्रवृत्ति का उद्घाटन इन शब्दों में किया है—'कोई मुअक्किलों के सेवा-सत्कार में लिप्त हुआ, कोई अपने बही-खाते की देखभाल में कोई अपने सैर और शिकार में । जाति-हित की वह उमङ्ग शांत हो गई । लोग मनो-विनोद की रीति से राज-सभा में आते.........वाक्य-नैपुण्य का परिचय देकर

चले जाते......उनमें सेवा-भाव का जरा भी लगाव न था।' जनता को बड़े-बड़े वादों से झूठा आश्वासन देकर निर्वाचित हो जाने पर आने राग-रंग में लिप्त होकर यह व्यक्ति सब कुछ भूल जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों का ध्येय स्वार्थ-वाद है। प्रेमचंद ने इनकी दुहरी चाल को अनावृत करते हुए लिखा है कि यह लोग विलासमय होटलों में शराब और लेमोनेड पीते हुए देश की दरिद्रता और अधोगति का रोना रोते हैं। राय कमलानंद के द्वारा उपन्यासकार ने ऐसे छद्मवेशी जन-सेवकों की आलोचना की है। 'प्रेमाश्रम' के राज्यसभा में निर्वाचित सदस्यों की कार्यविधि का वर्णन करके प्रेमचंद ने सच्चे जन-सेवकों का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। लोकसेवा का प्रेमचंदीय आदर्श निःस्वार्थ सेवा-भाव में विश्वास करता है।

'प्रेमाश्रम' की प्रमुख समस्या जमींदारी-प्रथा है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, जमींदारी-प्रथा भूमिपति और किसान से सीधा सम्बन्ध रखती है किन्तु अधिकारी वर्ग एवं नगर का शिक्षित वर्ग भी न्यूनाधिक मात्रा में इस समस्या को प्रभावित करता है। वस्तुतः प्रेमचंद जमींदारों के साथ अधि-कारी तथा शिक्षित वर्ग को भी शोषक वर्ग मानते थे। प्रजा-उत्पीड़न में शिक्षित मध्यवर्ग सामन्तवाद का हथियार बन जाता है। डाक्टर प्रियनाथ और कुछ अंशों में इर्फानअली ऐसे ही व्यक्ति थे। ये लखनपुर के जमीन्दार ज्ञानशङ्कर की अनीति और अत्याचार का अपने ढंग से समर्थन कर रहे थे। इसीलिये जब प्रेमचंद जमीन्दारी-प्रथा के दुष्परिणामों का चित्रण करते हैं, तब वे उसके समाज-व्यापी प्रभाव को भूल नहीं जाते।

प्रेमचंद ने जमीन्दारी-प्रथा को 'वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का कलङ्क चिह्न' माना है। आधुनिक नीतिवाद में विषम जीवन को प्रश्रय देना अनीति और अन्याय है। प्रेमचंद के प्रायः सब सामाजिक निष्कर्ष वर्तमान नीतिवाद से प्रभावित है। जमींदारी-प्रथा अन्यायमूलक प्रथा है। आज के सामन्तवादी युग में तो वह कलंक चिन्ह है ही, प्रेमचंद उस परम्परा को भी दूषित मानते हैं, जिसने इस प्रथा को प्रश्रय दिया। राय कमलानंद के इन शब्दों में उपन्यासकार का मन्तव्य यथेष्ट स्पष्ट हो गया है—'यह जायदाद नहीं है। इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है? मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया। नवाबों के जमाने

में किसी सूबेदार ने इस इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था । मेरे पिता पर भी नवाबों की कृपा बनी रही । इसके बाद अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राजविद्रोह के समय पिताजी ने तनमन से अंग्रेजों की सहायता की । शांति स्थापित होने पर हमें वही पुराना अधिकार फिर मिल गया । यही इस रियासत की हकीकत है । हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गए हैं। इसी दलाली के लिए हम एक-दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। इसी दीन-हत्या को हम रोब कहते हैं, इसी कारिंदागिरी पर हम फूले नहीं समाते। सरकार अपना मतलब निकालने के लिए हमें इस इलाके का मालिक कहती है, लेकिन जब साल में दो बार हमसे मालगुजारी वसूल की जाती है, तब हम मालिक कहाँ रहे ?' यहाँ प्रेमचंद का यह स्पष्ट मत है कि जमींदारी प्रथा शासकवर्ग की स्वार्थसिद्धि का माध्यम है और जमींदार यथार्थ में दलाल से अधिक कुछ नहीं है। फिर भी वह अपने को मालिक समझता है और इसे सिद्ध करने के लिए अकाण्ड ताण्डव करता है ।

उपन्यासकार का मत है कि 'भूमि उसकी है जो उसको जोते ।' उसने अपने मन्तव्य को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है—'भूमि या तो ईश्वर की है, जिसने इसकी सृष्टि की, या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपभोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है, इसलिये उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है.........अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्यपदार्थ बनाने की स्वच्छन्दता दी जाती है; तो इस प्रथा को वर्तमान समाज व्यवस्था का कलङ्क समझना चाहिये ।' प्रेमचंद ने यहाँ स्पष्ट मत दिया है कि भूमि उसकी है जो उसका उपयोग करता है। इस दृष्टि से वह किसान को भूमि का अधिकारी मानते हैं। देश की रक्षा के लिए शासक को कर लेने का अधिकार है, किन्तु किसी अन्य वर्ग को किसानों के परिश्रम का फल भोगने का अधिकार नहीं है और न उसके शोषण-उत्पीड़न का। इस दृष्टि से जमींदार वर्ग का कोई स्थान नहीं है। इसी को ध्यान में रखकर उपन्यासकार ने प्रेमशकर के मुँह से कहलाया है—किसी तीसरे वर्ग की प्रेमचंद ने चर्चा की है, वह परोपजीवी वर्ग है और कृषक-वर्ग के शोषण

पर जीता है। प्रेमचंद ऐसे वर्ग का समाज व्यवस्था में कोई स्थान नहीं मानते, इसीलिए वह जमींदारी-प्रथा का विरोध करते हैं और उसके अवसान में किसानों का हित देखते हैं। यहाँ तक समझ लेना भी उचित होगा कि प्रेमचंद प्रथा को दूषित समझते हैं, व्यक्ति को दोष नहीं देते। उन्होंने लिखा है—'यह सम्बंध ही ऐसा है, कि एक ओर तो प्रजा में भय, अविश्वास और आत्महीनता के भावों को पुष्ट करता हैं और दूसरी ओर जमींदारों को अभिमानी, निर्दय और निरंकुश बना देता है।' इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद आर्थिक-सामाजिक प्रथागत सम्बन्ध को दूषित मानते हैं, जिस ने शोषण और अन्याय को प्रश्रय दे रखा है।

उद्देश्य

'प्रेमाश्रम' का उद्देश्य नितांत स्पष्ट है। इसमें जमींदारी-प्रथा के अनर्थकारी प्रभाव का चित्रण किया गया है और यह विश्वास प्रकट किया गया है कि इस प्रथा के उन्मूलन से ग्रामीण समाज और जीवन का उद्धार संभव है। उपन्यासकार ने किसानों की समस्या और कृषक-भूमिगति सम्बंध-चित्रण में यथार्थवादी दृष्टि से काम लिया है। समस्या का उपचार-चित्रण उसके आदर्श की प्रेरणा है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यथार्थ वादी समस्या का आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद की यह प्रवृत्ति 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' की परम्परा में है जिसमें यथार्थवादीप्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं। 'प्रेमाश्रम' इस परम्परा की अंतिम रचना है। इसके उपरांत प्रेमचंद ने पुनः आश्रम-स्थापन का स्वप्न नहीं देखा और न लखनपुर ऐसे आदर्श गाँव की सृष्टि का प्रयत्न किया। सच है कि 'प्रेमाश्रम' परवर्ती कृतियों के आदर्श का प्रत्याख्यान नहीं करतीं, पर वे यथार्थ के प्रति पहले से अधिक उन्मुख हैं।

६
निर्मला

'निर्मला' (१९२३) प्रेमचंद के लघुकाय उपन्यासों में उल्लेख्य है। यह मध्यवर्गीय समाज और उसकी समस्याओं का चित्रण करता है। इस में दहेज और अनमेल विवाह के प्रश्न पर दृष्टिपात किया गया है। वैसे तो प्रेमचंद का अन्य लघुकाय उपन्यास 'प्रतिज्ञा' भी मध्यवर्ग की समस्या से अनुस्यूत है, पर उसमें और 'निर्मला' में एक विशेष अंतर है। 'प्रतिज्ञा' में समस्या का समाधान सुधारवादी दृष्टि से किया गया है; 'निर्मला' केवल समस्या का चित्रण करता है, कुरीतियों का दुष्परिणाम दिखाता है किंतु उसका उपचार नहीं प्रस्तुत करता है। यही इसकी विशेषता है और एक दृष्टि से बहुत बड़ी विशेषता है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि क्रमशः प्रेमचंद का झुकाव जीवन के यथार्थ चित्रण की ओर होता जा रहा था। 'निर्मला' में उपन्यासकार की यथार्थवादी दृष्टि आदि से अंत तक परिलक्षित है। उसने बड़े कौशल से मुख्य घटनाओं को 'निर्मला' के चरित्र के आस-पास सँजोया है, और उसके जीवन की विषम व्यथा से प्रभावित दिखाया है। हमारा यह मन्तव्य नहीं है कि 'निर्मला' में कलागत त्रुटियाँ नहीं हैं; त्रुटियाँ हैं और उनका यथास्थान उल्लेख किया। पर यह भी सच है कि कि इस उपन्यास में यथार्थनिष्ठ समाज-चित्रण प्रभावात्मक ही नहीं, हृदयद्रावक भी है।

कथा

बाबू उदयभानु के परिवार में उनकी पत्नी कल्याणी के अतिरिक्त दो पुत्रियाँ और पुत्र हैं। बड़ी लड़की का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा है। निर्मला का विवाह भुवनमोहन सिनहा के साथ निश्चित हो गया था। इसी

मध्य उदयभानुलाल की अकाल मृत्यु हो गई। उन्हें एक गुण्डे ने मार डाला जिसे तीन वर्ष का कारावास दण्ड दिलाने में उनका मुख्य हाथ था। परिवार पर विपत्ति टूट पड़ी। निर्मला का विवाह भुवनमोहन के साथ नहीं हो सका; क्योंकि उसका पिता एक अनाथ परिवार की लड़की को अपनी बहू बनाकर दहेज से हाथ धोने के लिए प्रस्तुत नहीं था। कल्याणी के सन्मुख विषम समस्या थी। जवान बेटी का विवाह करना था, पर दहेज के लिए धन न था। विवशतावश निर्मला का विवाह एक वृद्ध वकील मुंशी तोताराम से कर दिया गया। तोताराम की प्रथम पत्नी से तीन पुत्र थे—मंशाराम, जियाराम और सियाराम। जेष्ठ पुत्र मंशाराम निर्मला का समवयस्क है। तोताराम निर्मला को वस्त्राभूषणों से प्रसन्न रखना चाहता है, पर युवती पत्नी और वृद्ध पति में प्रेम असम्भव था। निर्मला तोताराम का आदर करती है, किंतु पिता समान आयु के पुरुष से प्रेम नहीं कर पाती। वृद्ध वकील की काम-लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वह अपने पुत्र मंशाराम पर संदेह करने लगता है। उसे निर्मला और मंसाराम के मध्य अनुचित सम्बंध की शंका ईर्ष्या-जर्जर कर देती है। यह संदेह परिवार की सुख-शांति को नष्ट कर देता है। मुँशी तोताराम का मनोभाव निर्मला समझ जाती है। पतिके मनसे संदेह निकालने के निमित्त वह मंसाराम के प्रति क्रूरता का अभिनय करती है। जब मंसाराम को निर्मला के व्यवहार-परिवर्तन का वास्तविक कारण ज्ञात होता है, तब उसके स्वाभिमानी हृदय पर दारुण आघात लगता है। इसी आघात में उसकी मृत्यु हो जाती है किन्तु प्रस्थान के पूर्व तोताराम का शंकाजनित भ्रम दूर हो जाता है।

मुंशी तोताराम पुत्र-शोक में जर्जर हो गए। उसके प्रति अपने दुर्व्यवहार की स्मृति से उन्हें और भी कष्ट होता। उनके संदेह ने उनके सबसे होनहार पुत्र के प्राण ले लिए थे। निर्मला के प्रति तोताराम का संदेह टूट गया था। जिस डाक्टर ने मंसाराम का इलाज किया था, वह भुवनमोहन था जिससे पहले निर्मला का विवाह निश्चित हुआ था। भुवनमोहन की पत्नी सुधा और निर्मला का परिचय साहचर्य में परिणत हो गया। भुवनमोहन को यह ज्ञात हो गया कि निर्मला ही वह लड़की है जिससे पहले उसका विवाह निश्चित हुआ था। उधर निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह भुवनमोहन के भाई से हो गया। इसी अवसर पर निर्मला को ज्ञात हुआ कि डाक्टर साहब

ही वह व्यक्ति हैं जिनसे उसका विवाह दहेज के कारण नहीं हो पाया था। निर्मला इस समाचार से विचलित न हुई। पर भुवनमोहन के हृदय में उस के प्रति आकाँक्षा जाग्रत हो उठी।

उधर तोताराम के सुख-वैभव की दीवार ढहने लगी। पुत्र शोक से वह विश्रृङ्खल हो गए। वकालत का चलना मन्द पड़ गया। तोताराम के द्वितीय पुत्र जियाराम ने अपने पिता की अवज्ञा आरम्भ कर दी। वह बात-बात पर तोताराम का तिरस्कार करता है। एक दिन उसने निर्मला के आभूषणों की पेटी चुरा ली। बात खुल गई। पुलिस द्वारा पकड़े जाने के भय से उसने आत्महत्या कर ली। तोताराम पर वज्र-प्रहार हो गया। उनकी रही-सही शक्तियों ने भी साथ छोड़ दिया। उधर निर्मला से एक पुत्री हुई थी। दिन प्रति दिन बढ़ती दुरावस्था और अभाव में उसे बच्ची का भविष्य अन्धकारमय दृष्टिगत होता था। हृदय पर पड़े अनवरत प्रहारों ने उसे कठोर बना दिया था। वह पाई पाई को पकड़ने लगी। उसके कठोर व्यवहार से त्रस्त हो सियाराम एक साधु के साथ चला गया। दुर्भाग्यग्रस्त तोताराम उसे खोजने के लिए घर से निकल पड़े। निर्मला अपनी दुरावस्था में अकेली रह गई। चिन्ताओं ने उसकी सद्भावनाओं पर आवरण डाल दिया था और वह कठोर कटु हो गई। यहाँ तक कि उसे अपनी पुत्री से भी विरक्ति होने लगी। जब मन बहुत उद्विग्न होने लगता तो वह सुधा के घर चली जाती। एक दिन सुधा की अनुपस्थिति में डाक्टर भुवन मोहन ने निर्मला से हृदयस्थ आकाँक्षा प्रकट कर दी। निर्मला पर मानों वज्राघात हो गया। सुधा को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने पति की भर्त्सना की। ग्लानि और लज्जावश डाक्टर ने विष खा लिया पति की मृत्यु के पश्चात् सुधा अपने देवर के साथ घर चली गई। निर्मला के लिए चारों ओर अँधेरा था। द्रव्य के अभाव, चिन्ता शोक और असफल जीवन की मर्मभेदी पीड़ा ने उसे पीस डाला। उसकी रोगावस्था बढ़ने लगी। मृत्यु के समय उसकी जीवन-व्यापी वेदनाओं का अन्त हो गया। मुंशी तोताराम दाह के समय आ पहुँचे।

वस्तु

उपन्यास की मुख्य कथा निर्मला की कहानी है। गौण कथाओं में

सुधा-भुवनमोहन की कहानी उल्लेख्य है। इस कहानी को 'निर्मला-तोताराम' की मुख्य कथा के साथ भलीभाँति अनुस्यूत किया गया है। निर्मला की बहन कृष्णा की प्रसंग कथा अपेक्षाकृत संक्षिप्त है, पर वह भी मुख्य कथा के प्रसार की सीमा में आ जाती है। इन कथाओं के सम्बन्ध-सूत्र पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों द्वारा निर्मिति हुए हैं, घटनाओं द्वारा कम। कृष्णा निर्मला की बहन हैं, उसका विवाह भुवनमोहन के भाई से होता है। भुवनमोहन वह व्यक्ति है जिससे पहले निर्मला का विवाह निश्चित हुआ था। उसकी पत्नी सुधा निर्मला की सहेली है और वह निर्मला के पति का मित्र है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध उपन्यास की कथावस्तु में सन्निहित कथाओं के सम्बन्ध-सूत्र दृढ़ करता है।

'निर्मला' का कथानक पर्याप्त संगठित है। समस्त घटनाएँ एक दुर्भाग्यग्रस्त लड़की के जीवन के चतुर्दिक केन्द्रित हैं। उपन्यासकार निर्मला की करुण-कहानी को अधिकाधिक प्रभावतीव्रता प्रदान करना चाहता है। इसीलिए वह घटनाओं का एक सुनिश्चित क्रम अपनाता है। यह घटनाएं समुचित वेग से लक्ष्यप्राप्ति को अग्रसर होती हैं। इसी सम्बन्ध में उपन्यास-कार ने अनेक स्थानों पर आकस्मिकता और संयोग का प्रयोग किया है। उपन्यास में इनका आधिक्य अरुचिकर हो उठा है। अतएव कथा-विकास भी नैसर्गिक पद्धति पर नहीं हुआ है। कुछ घटनाएँ-जैसे उदयभानु की मृत्यु, मंसाराम द्वारा साँप का मारा जाना आदि-तो स्पष्ट ही अवसर के अनुकूल गढ़ली गई हैं, उनमें संयोग की स्पष्ट छाप है। यदि 'निर्मला' की कथा इतनी हृदयद्रावक न होती तो संयोग और आकस्मिकता का आधिक्य उसका प्रभाव यथेष्ट कम कर देता। उपन्यास का अन्त इतना मार्मिक है कि इस ओर ध्यान जाता ही नहीं। पराकाष्ठा (climax) का प्रभाव अमिट है और समग्र-प्रभाव हृदयद्रावक।

'निर्मला' एक दुखान्त उपन्यास है। विषय का विषाद रोचकता का प्रतिबन्ध है। उपन्यास की नायिका की जीवन-व्यापी कथा को प्रेमचंद ने अधिकाधिक प्रभावतीव्रता प्रदान की है क्योंकि वह उसके जीवन की करुणा से उपन्यास के वातावरण की सृष्टि करना चाहते हैं। इसलिए रोचक परि-स्थितियों के निर्माण के प्रति वह सचेष्ट नहीं हैं। फिर भी मोटेराम शास्त्री द्वारा कुछ रोचकता का समावेश हो गया है। मोटेराम की पेटुकता से अधिक-

उनकी कार्यविधि हास्य-मनोरञ्जन की योजना करती है। मोटेराम की उपस्थिति से कुछ 'रिलीफ' मिल जाती है, अन्यथा दुखान्त कथानक का गहरा विषाद पाठक को अभिभूत किए रहता है।

पात्र

'निर्मला' के पात्र चरित्र-विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं, उनका महत्व एक सामाजिक समस्या के अंग-रूप में अधिक है। पात्रों का व्यक्तित्व समस्या-चित्रण के आधीन अधिक है, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व बहुत कम है। निर्मला के चरित्रांकन में उपन्यासकार ने परिस्थितियों के प्रभाव की झलक दिखाकर उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय अवश्य दिया है। अभाव और दुरावस्था में मानव प्रकृति कठोर और कटु हो जाती है। निर्मला के चरित्र में यही दृष्टव्य है। उसके परवर्ती चरित्र की कठोरता परिस्थितियों की देन है, निर्मला का निजी स्वभाव नहीं। पर चरित्र–चित्रण की इस कलात्मक प्रणाली का निर्मला के चरित्र में उपयोग परिसीमित है। इसका पूरा–पूरा उपयोग उपन्यासकार नहीं कर पाया है। निर्मला के चरित्र में मानसिक घात–प्रतिघात सर्वाधिक है, अतएव उसमें अपेक्षाकृत सजीवता भी है। उसी के चरित्र द्वारा नारी-मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से उसका चरित्र प्रेमचन्द के विशिष्ट चरित्रों में परिगणेय है।

'निर्मला' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र–व्याख्या निम्नांकित है—
निर्मला का जीवन विवाद की विशद कथा है। बाल्यकाल की सुखद क्रीड़ाओं के बाद उसने यौवन का स्वप्न-संसार बनाना भी न सीखा था कि दुर्भाग्य ने उसे एक वृद्ध विधुर वकील की पत्नी बना दिया। उसका पति तोतारामा उसे वस्त्राभूषणों से सन्तुष्ट करना चाहता है किन्तु निर्मला को 'न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने में संकोच होता था। इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुका कर, देह चुराकर निकलती थी, अब उनकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती।' पति से निराश उसका हृदय बालकों के लालन–पालन में व्यस्त रहना चाहता है किन्तु अतृप्ति की वेदना बड़ी विषम थी। 'उसके हृदय में विषाद की

ज्वालासी दहकती रहती थी, जिसकी असल वेदना ने उसे संज्ञाहीन सा कर रखा था।' उसकी कामनाएँ होम हो चुकी थी, फिर भी पति का साहचर्य निभाना पड़ता था। उपन्यासकार ने इस दशा में उनकी मर्मवेदना का वर्णन करते हुए लिखा है—'हृदय रोता था, पर मुख पर हँसी का रंग भरना पड़ता था। जिसका मुँह देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हँस-हँस बातें करनी पड़ती थीं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिंगित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्म-वेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है? उस समय उनकी यही इच्छा होती थी कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ।' आत्मपीड़ा और मनोव्यथा का यह दुस्सह भार उठा कर उसे क्या मिला? पति का तिरस्कार और सन्देह। तोताराम को निर्मला और अपने ज्येष्ठ पुत्र मंसाराम के मध्य अनुचित सम्बन्ध का सन्देह हुआ। पति के इस सन्देह से मर्माहत निर्मला ने उसका भ्रम दूर करने के निमित्त मंसाराम के प्रति जिस क्रूरता का अभिनय किया, उसने उसकी अन्तर्वेदना को शतगुणा कर दिया। वृद्ध पति की तुष्टि के लिए उसे जो रूप भरने पड़े, वे उसकी विवशता की सच्ची व्याख्या हैं। वह जीवन-यज्ञ में तिल–तिल जल रही थी। उधर बढ़ती हुई दुरावस्था और अभाव में पुत्री के जन्म ने उसे और भी संकट में डाल दिया। भविष्य की अंधकारमयता उसे अभिभूत करने लगी। उसकी पुत्री को उसी की भाँति किसी अपात्र के गले न मढ़ दिया जाय, इसकी चिंता ने उसे घर के व्यय में कतर–ब्योंत के लिए बाध्य किया। जीवन के विषम-पात्र में विषाक्त घूँट पीते-पीते उसकी चेतना मर रही थी। परिस्थितियों ने उसके स्वभाव की कोमलता और मधुरता छीन ली। वह कटु और कठोर हो उठी। दुर्भाग्य से लड़ते–लड़ते वह उस स्थिति को पहुंच गई थी जहाँ टूटना ही अवशेष था। पति चला गया, निराश्रित संताप में परपुरुष ने प्रेम-प्रस्ताव किया—उसका मर्म निर्मम आघातों से छलनी हो गया। मन जर्जर हो गया था, शरीर भी टूटने लगा। मृत्यु का अंधकार जीवन के अवसान पर छा गया। एक संध्या को 'जब पशु–पक्षी अपने-अपने बसेरे को लौट रहे थे, निर्मला का प्राण-पक्षी भी दिन भर शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पंजों और वायु के प्रचंड झोकों से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया।'

वृद्ध वकील तोताराम तीन-तीन पुत्र के होते हुए भी एक युवती से

विवाह कर अपने परिवार की सुख-शांति में आग लगा देता है। युवती पत्नी की आवश्यकता को वह खेल-तमाशों और वस्त्राभूषण से पूर्ण करना चाहता है। असंभव को संभव करने के उसके विवेकहीन प्रयत्न उसे हास्यास्पद बना देते हैं। मिथ्या वीरत्व और साहस की डींग मारकर वह वीते यौवन का चमत्कार दिखाना चाहता है। यदि उसकी वृत्तियाँ यहाँ तक सीमित रहती तो उसकी आलोचना का विशेष अवसर न उपस्थित होता, किंतु उसके मन का कलुष पुत्र और पत्नी के मध्य अनुचित सम्बन्ध का सन्देह करने लगा। काम-वासना ने उसका विवेक नष्ट कर दिया था। वह अपने होनहार और सच्चरित्र पुत्र का शत्रु बन गया। उसकी सन्देहशीलता ने पुत्र को गृह–परित्याग के लिए वाध्य किया। उसे अपनी सन्देहवृत्ति का महँगा मूल्य चुकाना पड़ा। पुत्र के प्राण लेकर ही उसका भ्रम दूर हुआ। तब ग्लानिमय पीड़ा के परिताप से व्याकुल तोताराम अपने मनः स्थैर्य को न पा सके। 'यों तो जवान-बूढ़े सभी मरते हैं, लेकिन दुःख इस वात का था कि उन्होंने स्वयं लड़के की जान ली। जिस दम यह बात याद आ जाती, तो ऐसा मालूम होता था कि उनकी छाती फट जायगी-मानों हृदय बाहर निकल पड़ेगा।' उसकी वृद्ध वासना का यह पहला वलिदान था। बहुत शीघ्र ही दूसरा पुत्र भी मर गया और तीसरे ने किसी साधु का साथ कर लिया। इन प्रहारों से तोताराम क्षत-विक्षत हो गया। उसकी कार्य शक्ति मन्द पड़ने लगी। इसी के साथ अभाव और दुरावस्था ने उसके जीवन की शाखा-प्रशाखाओं को जकड़ लिया अंत में अपने वृद्ध हाथों से युवती पत्नी की चिता जलाकर वह अपने अभिशप्त जीवन के अवशेष दिन व्यतीत करने के लिए रह गया।

तोताराम का ज्येष्ठ पुत्र मंसाराम सच्चरित्र और होनहार युवक था। उसके स्वस्थ और निर्मल जीवन में उसके शंकालु पिता ने घुन लगा दिया। उसकी स्वाभिमानी प्रकृति मिथ्या सन्देह के मर्मान्तिक प्रहार को न सह सकी। घृणित कलंक का जीवन उसे ग्राह्य न था। उसकी मानरक्षा और निर्मला की आत्मरक्षा के लिए उसे प्राणों का वलिदान अभीष्ट था। उसका वलिदान निर्मला के चारित्र की निष्कलंकता का प्रयोजन था।

निर्मला के 'माइल्ड' चरित्र सुधा का चरित्र-दर्प और ओज से पूर्ण है। उसकी चरित्रगत प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ से ही उसकी वैयक्तिक विशेषताओं

की छाप लिए हैं। पति की सामान्य चारित्रिक दुर्बलता उससे सही नहीं जाती। उसकी इस असहनशीलता का परिणाम है उसका वैधव्य। पर एक लम्पट व्यक्ति की पत्नी कहलाने की अपेक्षा वह विधवा होना अधिक पसन्द करती है। उसने निर्मला से निःसंकोच कहा था—'ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं सुखी है, जिसे उसका धन साँप बनकर काटने दौड़े। उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।' सुधा के चरित्र की यह विशेषता उसकी दृढ़ नैतिकता की परिचायक भी है।

समाज

'निर्मला' मध्यवर्गीय समाज का चित्रण करता है। उपन्यासकार ने समाज-चित्रण के अन्तर्गत समस्या-चित्रण का पूरा ध्यान रखा है। इस उपन्यास में उसने अनमेल विवाह और दहेज की समस्या पर दृष्टिपात किया है। दहेज और अनमेल-विवाह का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाकर उसने इन कुप्रथाओं को व्यापक सामाजिक दुष्प्रभाव के रूप में प्रकट किया है। उपन्यास की समस्या कथा में बड़ी कुशलता से पिरोई गई है। निर्मला की माँ दहेज न दे सकने के कारण उसका विवाह तोताराम के साथ करती है। तोताराम आयु में निर्मला के पिता के समान हैं। इस अनमेल विवाह के मूल में दहेज प्रथा है। निर्मला से अनमेल विवाह की भाँति ही अनेक अनमेल विवाहों के मूल में दहेज की समस्या वर्तमान है। दहेज न दे सकने के फलस्वरूप अनमेल विवाह और उसके परिणाम-चित्रण में एक स्पष्ट क्रम है। तोताराम के परिवार के भग्न-खंडहर अनमेल-विवाह के घातक परिणाम की ओर संकेत करते हैं। निर्मला के जीवन की निस्सीम करुणा और विफलता इसके कठिन प्रतिफल का परिणाम है। इसी के कारण उसका जीवन नष्ट हो गया-यौवन में श्मशान की राख उड़ने लगी। इसीलिए मृत्यु-शय्या पर उसने अपनी पुत्र के निमित रुक्मिणी से कहा था—'चाहे क्वाँरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा।' यहाँ कुपात्र से उसका आशय अनमेल पात्र से है। निर्मला के इन शब्दों में उसकी मर्मव्यथा ही नहीं है अपितु विफल जीवन नारी-समाज की अन्तर्वेदना परिव्याप्त है।

उद्देश्य

'निर्मला' के पूर्व 'सेवासदन' में भी दहेज और अनमेल विवाह के प्रश्न पर दृष्टिपात किया था। उसमें भी नारी-जीवन की दुरावस्था से इन प्रथाओं का सम्बन्ध दिखाया गया। सुमन की वेश्यावृत्ति का मुख्य कारण अपात्र के साथ उसका अनमेल विवाह था। तोताराम और गजाधर की अवस्था में अंतर अवश्य है, पर दोनों ही अपनी पत्नियों के लिए अपात्र थे। गजाधर स्वभाव के कारण, तोताराम आयु के कारण। 'सेवासदन' की भाँति 'निर्मला' में इन समाजिक कुप्रथाओं का समाजव्यापी प्रभाव नहीं अंकित किया गया है, पर उपन्यासकार 'निर्मला' की समस्या को व्यक्तिगत-समस्या नहीं मानता, वह इसे समाजिक-समस्या के रूप में ग्रहण करता है। 'निर्मला' की कहानी केवल उसकी ही नहीं, हमारे समाज की अनेक निर्मलाओं की है। वस्तुतः दहेज और अनमेल विवाह की समस्याओं के समाज व्यापी प्रभाव को समझने के लिए 'सेवासदन' और 'निर्मला', दोनों कृतियों का अध्ययन आवश्यक है।



रंगभूमि

'रंगभूमि' (१९२४) प्रेमचंद का सबसे वृहद् उपन्यास है। इसके समाज-चित्रण में बड़ी व्यापकता है। इसमें हिंदू, मुसलमान और समाज के जीवन-चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। औद्योगिक शोषण, राजनीतिक परतंत्रता और संघर्ष से ओतप्रोत इस उपन्यास में भारतीय जीवन के अनेक पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है। बढ़ती हुई पूँजीवादी सभ्यता के सम्पर्क में आने पर ग्राम जीवन की सरल-संतोषमयता के अस्त-व्यस्त होने का चित्रण उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से किया है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने तत्कालीन भारतीय राजतंत्र का शोषण—दमन निरभ्र रूप खोल कर रख दिया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट अङ्कित किया है कि शोषण और दमन की प्रतिक्रिया संघर्ष का रूप धारण कर लेती है। 'रंगभूमि' समाज—शास्त्रीय दृष्टि से जितनी महत्वपूर्ण रचना है, प्रेमचंद के राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक विचारों के अध्ययन की दृष्टि से भी उतनी ही उल्लेख्य कृति है। वस्तुतः इसमें महा-काव्य का सा व्यापकत्व और गाम्भीर्य है।

कथा

बनारस के निकट पाँडेपुर ग्राम में सूरदास नामक एक अंधा भिखारी रहता है। वह पाँडेपुर की कुछ परती जमीन का स्वामी है। यह भूमि उसे पुरखों से विरासत में मिली थी। भूमि पाँडेपुर निवासियों के पशुओं के चरने आदि की दृष्टि से बड़ी सुविधाजनक थी। जान सेवक नामक एक ईसाई उद्योगपति इस भूमि पर सिगरेट का कारखाना बनाना चाहता है। वह सूरदास से भूमि क्रय करने के लिए बातचीत करता है, पर सूरदास पूर्वजों की भूमि बेचने से इन्कार कर देता हैं। सिद्धांत से भी वह औद्योगीकरण को मनुष्य के नैतिक पतन का कारण मानता है, अतएव वह भूमि देने के लिए प्रस्तुत नहीं होता।

जान सेवक का बँगला सिगरा में था। उसके पिता सेना-विभाग से अवकाश प्राप्त थे। जान सेवक के पुत्र का नाम प्रभु सेवक और पुत्री का सोफिया था। सोफिया की अपनी माँ से नहीं बनती क्योंकि उसकी धर्मांध माँ पुत्री की जिज्ञासु और तर्कशील प्रकृति को ईसाई धर्म के प्रति उसकी अनास्था समझती है। जानसेवक इस ओर विशेष ध्यान नहीं देते क्योंकि उनकी समस्त वृत्तियाँ उद्योग-व्यवसाय की ओर लगी रहतीं हैं। सूरदास का नकारात्मक उत्तर पाकर भी वह हतोत्साह नहीं होता।

बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष राजा महेन्द्रकुमार थे। उसकी पत्नी इंदु कुँवर भरतसिंह की पुत्री थी। भरतसिंह की पत्नी का नाम जाह्नवी था। वह अपने पुत्र विनय को एक आदर्श जाति-सेवक बनाना चाहती है। एक अवसर पर सोफिया स्वयं घायल होकर अग्नि से विनय की रक्षा करती है। इस प्रकार कुँवर भरतसिंह के परिवार से उसका परिचय घनिष्टता में परिवर्तित हो जाता है। माँ के निर्मम व्यवहार से क्षुब्ध होकर वह रानी जाह्नवी के घर रहने लगती है, जहाँ उसकी बालसखी इंदु भी उपस्थित थी। इन्दु और राजा महेन्द्रकुमार में न पटती थी, इसलिए वह पितृ-गृह में रह रही थी। सोफिया और कुँवर भरतसिंह के परिवार की घनिष्टता से जान सेवक ने पूरा,पूरा लाभ उठाया। उसने म्युनिसिपैलिटी के प्रधान राजा महेन्द्रकुमार के हस्तक्षेप द्वारा, सूरदास की भूमि प्राप्त करने की चेष्टा की। महेन्द्रकुमार भूमि दिलाने के लिए प्रस्तुत हो गए।

सोफिया सूरदास की भूमि पर अपने पिता के आधिपत्य के विरुद्ध थी। उसे यह घोर अन्याय प्रतीत होता था कि एक निर्धन और अपाहिज की भूमि व्यक्तिगत लाभ के लिए,बलपूर्वक ली जाय। इसी मध्य इंदु से अपमानित उसका हृदय प्रतिशोध के लिए तड़प उठा। राजा महेन्द्रकुमार की आज्ञा से भूमि जान सेवक को मिलने वाली थी। उन्हें नीचा दिखाकर सोफिया इंदु के गर्व को दलित करना चाहती थी। इसके लिए उसने जिला अफसर क्लार्क को अपने प्रेमपाश द्वारा प्रभावित कर उस सरकारी आज्ञा को भंग कराना चाहा जिसके अनुसार भूमि जान सेवक को दी जाने वाली थी। महेन्द्र ने इसके विरुद्ध गवर्नर से अपील की। उनकी विजय हुई और क्लार्क का तबादला बनारस से उदयपुर कर दिया गया। विनय इन दिनों

उदयपुर में बंदी था। उसे विद्रोहियों का सहयोगी समझ कर पकड़ा गया था। सोफिया और विनय में परस्पर प्रेम था। सोफिया उससे मिलना चाहती थी, संभव हो तो उसे बंदीगृह से मुक्त कराना चाहती थी। अतएव उसने क्लार्क के साथ उदयपुर जाने का निश्चय किया। क्लार्क सोफिया की मनोगत भावना से परिचित न था। वह समझता था कि सोफिया उससे विवाह कर लेगी। इस आशा से वह सोफिया को साथ ले जाने के लिए प्रस्तुत हो गया।

क्लार्क पोलिटिकल एजेन्ट के पद पर नियुक्त होकर उदयपुर गया था। यद्यपि सोफिया और क्लार्क का परस्पर विवाह नहीं हुआ, किंतु उनकी घनिष्टता के कारण बाहर वाले उन्हें पति पत्नी समझते थे। सोफिया विनय को छुड़ाने के निमित्त क्लार्क के साथ रह रही थी। उसने क्लार्क को लक्ष्यसिद्धि का साधन बना रखा था। सोफिया उसके अधिकार का उपयोग करके बंदीगृह में विनय से मिली उसने विनय की उन शंकाओं का निवारण कर दिया, जो विनय के हृदय में क्लार्क के संग उसे देखकर उठी थीं। सोफिया ने विनय को बंदीगृह से मुक्त कराने का आदेश-पत्र प्राप्त कर लिया किंतु विनय ने बंदीगृह न छोड़ा।

इधर कुँवर भरतसिंह को विनय के बन्दी होने का समाचार मिल चुका था। उन्होंने नायकराम पण्डा को बंदीगृह से विनय को मुक्त कराने के लिए उदयपुर भेजा। नायकराम चतुर और साहसी व्यक्ति था। उदयपुर पहुँच कर उसने जेल के दरोगा से मेल-जोल कर लिया। उसी की सहायता से वह जेल में विनय से मिला। पिता और माता की वियोगजन्य कष्टावस्था का उल्लेख कर उसने विनय को जेल छोड़ने के लिए राजी कर लिया। दोनों व्यक्ति जेल फाँद कर बाहर आ गए। संयोगवश उसी दिन उदयपुर में एक काण्ड हो गया था। क्लार्क की मोटर के नीचे दबकर एक मनुष्य मर गया था। अत्याचार क्षुब्ध जनता का असंतोष और रोष फट पड़ा। वह क्लार्क की मोटर घेर कर खड़ी हो गई। क्लार्क ने गोली चला दी। एक आदमी मर गया। उद्विग्न और क्रुद्ध जनता ने क्लार्क का बँगला घेर लिया। उत्तेजित जनता को सोफिया समझा रही थी कि विनय और नायकराम भी वहाँ पहुँच गए। सोफिया के पत्थर लगते ही विनय ने विद्रोहियों के नायक-

वीरपाल सिंह पर गोली चला दी। वीरपाल बच गया। जनता और पुलिस में ईंट-पत्थर व गोलियाँ चलने लगी। इसी मध्य वीरपाल घायल सोफिया को उठा ले गया।

इस दुर्घटना से राज्य में हाहाकार मच गया। अँग्रेजी सरकार के हस्तक्षेप के भय से राज्य के अधिकारियों ने अपराधियों की पकड़-धकड़ में असाधारण तत्परता दिखाई। अपराधी कम, निरपराधी अधिक पकड़े गए। सन्देहमात्र से लोगों को क्रूरतम यातनाएँ दी जाती थीं। रियासत को इन अत्याचारों में विनय का भी सहयोग प्राप्त था। सोफिया को खोकर उसका मानसिक सन्तुलन नष्ट हो गया था। वह क्रूरकर्मा प्रजा पीड़क बन गया। राज्य के अत्याचार और क्रूर दण्ड नीति से क्षुब्ध होकर सोफिया उस विद्रोही दल में सम्मिलित हो गई, जिसका नायक उसे उठा ले गया था। एक दिन बन में सोफिया और विनय की भेंट हो गई। सोफिया ने विनय के अत्याचारों के कारण उसकी प्रताड़ना की और उसके साथ जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। लज्जित विनय वहाँ से लौट आया।

इसी मध्य जाह्नवी का पत्र पाकर विनय बनारस चल दिया। उधर क्रांतिकारियों की उग्रनीति के फलस्वरूप होने वाले हत्याकाण्डों के कारण सोफिया ने उनका साथ छोड़ दिया था। रास्ते में दोनों की भेंट हो गई। सोफिया को विनय के प्रति अपने पिछले व्यवहार के कारण बड़ा दुःख था। उसने विनय से क्षमा याचना की। दोनों ने साथ रहना निश्चित किया। बीच रास्ते में ट्रेन छोड़कर वे एक गाँव में रहने लगे। सोफिया विनय पर मोहित थी, पर रानी जाह्नवी की अनुमति के बिना विवाह नहीं करना चाहती। एक वर्ष के एकान्त जीवन के उपरांत विनय और सोफिया बनारस जा पहुँचे। सोफिया और विनय के आगमन से रानी जाह्नवी के अतिरिक्त उनके परिवार के अन्य व्यक्ति भी प्रसन्न हुए।

सूरदास के विरोध के बावजूद भी उसकी भूमि ले ली गई थी और उस पर सिगरेट का कारखाना खुल गया था। जान सेवक उसकी प्रगति में तन-मन से लगे थे किंतु कारखाना खुल जाने से पाण्डेपुर का वातावरण पूर्णतया खराब हो गया था। वहाँ के सरल-संतोषमय जीवन में दुष्प्रवृत्तियों का प्रवेश हो गया था। पाण्डेपुर में जुआ घर और वेश्यालय खुल गए। नई आयु के लड़के विशेष रूप से कुवासनाओं के शिकार

हो गए थे। गाँव की आत्मीयता समाप्त हो चली थी। इसी मध्य जान सेवक मिल के मजदूरों के मकानों के निमित्त पाण्डेपुर की बस्ती खाली कराने का प्रस्ताव रखा। इस निर्वासन-चेष्टा में पाण्डेपुर के निवासियों का नाश निहित था किंतु वे किसी प्रकार का सक्रिय प्रतिकार करने में असमर्थ थे। सूरदास से यह अन्याय नहीं सहा गया। उसने प्राण रहते अपने झोपड़े की रक्षा का निश्चय किया।

पाण्डेपुर खाली कराने की सरकारी आज्ञा आते ही निवासियों की भूमि और मकान का मुआवजा निश्चित करने में अधिकारियों ने बड़ी धाँधली की। मुआवजा पाने के पूर्व ही पाण्डेपुर निवासियों को घर खाली करने पड़े। इससे जनता में बड़ा असंतोष फैला। बाध्य होकर राजा महेंद्र कुमार ने अपने पास से मुआवजा देना प्रारम्भ किया। सूरदास ने मुआवजा लेने से इन्कार कर दिया। उसने घोषणा की कि प्राण रहते वह झोपड़ी नहीं खाली करेगा क्योंकि वह अनीति और अन्याय के सम्मुख झुकना नहीं चाहता। उसकी दृढ़ता राजा महेन्द्रकुमार का अपमान बन गई। उन्होंने पुलिस को आज्ञा दी कि सूरदास की झोपड़ी गिरा दी जाय। जनता में सनसनी फैल गई। उद्विग्न जन-समूह को शांत करने में प्रचेष्टा एक स्वयं-सेवक को पुलिस ने गोली मार दी। विनय ने उसका स्थान ग्रहण किया। पुलिस के सिपाहियों ने निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया।

सरकार ने जब यह रुख देखा तो क्लार्क को राजपूताना से बुलाकर यहाँ की स्थिति सँभालने के लिए विशेष-अफसर नियुक्त किया। जनता का क्रोध शासकों के व्यवहार से बढ़ता जा रहा था। एक दिन उसने जान सेवक को घेर लिया। जान सेवक का जनता ने पीछा किया। सूरदास ने जनता के तूफान को रोकना चाहा। क्लार्क ने समझा कि वह जनता को भड़काने की चेष्टा कर रहा है। उसने सूरदास को गोली मार दी। सोफिया वहाँ उपस्थित थी। उसने तत्काल सूरदास को अस्पताल पहुँचाया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। उधर सूरदास पर प्रहार होते ही जनता क्रोध से उन्मत्त हो गई थी। वह मारने-मरने को प्रस्तुत थी। विनय भी वहाँ उपस्थित था। उसने देखा कि अनर्थ हुआ चाहता है, अतएव जनता को रोकना चाहा। जनता उदयपुर में विनय के जन-उत्पीड़न सम्बन्धी पूर्व कृत्यों को भूली नहीं

थी। उसे विनय के सद्भाव पर अविश्वास था। जन-समूह के व्यंग्मय शब्दों द्वारा दुत्कारे जाने पर विनय का स्वाभिमान आवेश में बदल गया। अपनी ईमानदारी, देश प्रेम और वीरता का प्रमाण देने के लिए उसने गोली मार कर आत्महत्या कर ली। जन-समूह में हाहाकार मच गया। उसकी आलोचना करने वाले प्रसंशक बन गए। रानी जाह्नवी को पुत्र की वीर-मृत्यु पर गर्व था किंतु सोफिया का हृदय मर्मान्तिक पीड़ा से रो पड़ा। विनय-विहीन जीवन में उसे कोई आकर्षण न रहा। उधर उसकी माँ उससे क्लार्क के साथ विवाह करने का आग्रह कर रही थी। इस स्थिति से निवृत्ति पाने के निमित्त उसने नदी में डूब कर प्राण-विसर्जन कर दिए।

राजा महेन्द्रकुमार की दोरंगी नीति अनावृत हो गई थी। म्युनिसिपैलिटी में जनवादी शक्तियों का प्रभाव बढ़ गया था। राजा साहब पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर उन्हें स्तीफा देने के लिए बाध्य किया गया। उधर उनकी पत्नी इन्दु अपनी जाह्नवी के साथ समाज-सेवा के पथ की अनुगामिनी हुई क्योंकि उसे अपने पति की स्वार्थपरता असह्य थी। राजा साहब अपनी परेशानियों का कारण सूरदास को समझते थे। सूरदास की मृत्यु के उपरांत भी उनका हृदय द्वेष-ज्वाला से जल रहा था। सूरदास की स्मृति में पाण्डेपुर में प्रस्थापित उसकी मूर्ति तोड़ने के प्रयत्न में उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। उनकी द्वेषाग्नि ठण्डी पड़ गई।

वस्तु

'रंगभूमि' प्रेमचंद के रचना-कौशल का महत् उदाहरण है। इस उपन्यास का प्रासाद एक विशाल शिला के आधार पर खड़ा किया गया है। अतएव इसका कथानक व्यापकता में विस्तृत है। वस्तु के अन्तर्गत अनेक कथाएँ एक साथ चलती हैं। सूरदास और पाण्डेपुर की कथा, विनय-सोफिया की प्रेम-कहानी, ताहिरअली के मध्यवर्गीय जीवन की कथा एवं उदयपुर की सामंती व्यवस्था की कथा इनमें मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त कथानक में कुछ ऐसे प्रसङ्ग आए हैं जिनसे भारतीय समाज और जीवन की विभिन्नस्वरूप व्यापकता का परिचय मिलता है। जिन आलोचकों ने इतने बड़े उपन्यास में एक-कथा वाले उपन्यासों की सी संगठन-कुशलता का अभाव देखा है, उन्होंने रंगभूमि का तात्पर्य ही नहीं समझा। 'रंगभूमि' भारतीय समाज की सम्पूर्णता को गाथाबद्ध करने का सबसे बड़ा प्रयास है।

हिंदी कथा-साहित्य में इसकी जोड़ का दूसरा प्रयास अनुपलब्ध है। जिस उपन्यास में इतना व्यापक समाज-चित्रण किया गया हो, उसमें कई कथा-सूत्रों का होना अनिवार्य है। ऐसी कृति में उपन्यासकार कथा-सूत्रों के पारस्परिक दृढ़ सम्बंध और वस्तु संगठन की अपेक्षा उद्देश्य-प्रतिष्ठा की ओर अधिक ध्यान देता है। इस दृष्टि से 'रंगभूमि' की रचना-कुशलता निःसंशय है। इस उपन्यास के जीवन के व्यापक विस्तार में प्रेमचंद की रचनात्मक प्रतिभा का पूर्णोन्मेष हुआ है। यदि कथाओं के परस्पर सम्बंध-शैथिल्य की दृष्टि से भी 'रंगभूमि' पर विचार किया जाय तो इसकी गणना 'नॉविल ऑफ दि लूज प्लाट' (असम्बद्ध कथावस्तुयुक्त उपन्यास) में की जा सकती है। अतएव विशालकाय उपन्यास में एक कथावाले उपन्यासों का संगठन-कुशलता की अपेक्षा करना समुचित आलोच्य दृष्टि का प्रत्याख्यान करता है।

'रंगभूमि' की वस्तु-विकास के तीन केंद्र हैं - पाण्डेपुर, काशी और उदयपुर। पाण्डेपुर उन ग्रामीण व्यक्तियों का निवास-स्थान है जिन्हें दमन और संघर्ष का सामना करना पड़ता है। बनारस उच्च मध्यवर्गीय और कतिपय [illegible] का निवास स्थान है जो [illegible] का जा[illegible] पहन कर अपने पूर्वजों से भिन्न पथ पर चलने का दावा करते हैं। नगर में ही जान सेवक ऐसे उद्योगपति भी रहते हैं। उदयपुर से जसवंतनगर सामंती शासन और देशी राज्यों की निरंकुशता का प्रतीक बन कर आया है। इन तीन केंद्र को परस्पर सम्बद्ध करने के लिए उपन्यासकार ने विनय-सोफिया की कथा को लिया है। विनय और सोफिया बनारस में रहते हैं, उदयपुर के दमन और संघर्ष में सम्मिलित होते हैं और पाण्डेपुर के अङ्ग बनते हैं जिसमें विषय को प्राण देने पड़े। अतएव वस्तु के तीन केंद्रों को अनस्यूत करने के प्रयत्न की दृष्टि से विनय-सोफिया की कथा का विशेष महत्व है।

यहाँ उपन्यास की मुख्य कथा का प्रश्न विचारणीय है। विनय सोफिया की प्रेमकथा के अतिरिक्त सूरदास की कथा मुख्य कथा के उपयुक्त है। इस समस्या का हल 'रंगभूमि के केंद्रस्थ आकर्षण का निर्णय करके ही पाया जा सकता है। इस उपन्यास की मूलवृत्ति संघर्ष है। यह राजनैतिक, सामाजिक और पारिवारिक संघर्ष से ओत प्रोत है। उपन्यास का समस्त आकर्षण उसकी व्यापक संघर्ष योजना में है, विनय-सोफिया की प्रेमकथा में नहीं। इस दृष्टि से सूरदास की कथा ही मुख्य है, क्योंकि उसी के आधार पर कथा-

गत संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचता है। उपन्यास की संघर्षमय व्यस्तता का मूलाधार सूरदास ही है। उपन्यास का नायक भी वही है, उसके चरित्र के विनय का चरित्र-प्रभावविशिष्ट नहीं कहा जा सकता। अतएव विनय-सोफिया की कथा का वस्तुगत महत्व मानते हुए भी उसे मुख्य कथा नहीं कहा जा सकता। मुख्य कथा सूरदास के जीवन संघर्ष की कहानी है।

पात्र

'रंगभूमि' में भारतीय समाज के सब वर्गों के प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र आए हैं। वर्ग की दृष्टि से इसमें उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के पात्र आए हैं। धर्म की दृष्टि से हिंदू और मुसलमानों के अतिरिक्त ईसाई पात्र भी संयोजित किये गए हैं। इन पात्रों में उनके वर्गगत और धर्मगत संस्कार कुशलतापूर्वक चित्रित किये गए हैं। यद्यपि कुछ पात्र इसके प्रतिवाद हैं। सोफिया और सूरदास इसके वर्गनिहित चरित्र नहीं हैं, उनमें वैयक्तिकता संलिप्त है। इसीलिये वे उपन्यास की आकर्षण शक्ति के स्तम्भ हैं। सूरदास का चरित्र तो वैयक्तिक प्रवृत्तियों के संविधान का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

उपन्यास के प्रधान चरित्रों के अतिरिक्त सामान्य पात्रों की सजीवता प्रदान करने की कला में प्रेमचंद ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। पाण्डेपुर के निवासियों के चरित्रांकन में उपन्यासकार ने स्वाभाविकता और सजीवता पर विशेष ध्यान रखा है। इसीलिए 'रंगभूमि' के ग्रामीण-पात्र 'प्रेमाश्रम' के ग्रामीण चरित्रों की भाँति ही जीवन्त शक्ति से अनुप्राणित हैं। भैरों, सुभागी, जमनी, बजरंगी, नायकराम, जगधर और ठाकुरदीन इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सामान्य पात्रों में स्वाभाविकता, सजीवता और संगति की प्रभावात्मक कला का पूर्ण विकास आगे चल कर 'गोदान' की अमर ग्रामीण पात्रसृष्टि से हुआ। 'रंगभूमि' में वस्तु के अन्तर्गत पात्र की समस्या के समाधान की त्रुटि पूर्ववत् ही बनी हुई है। पात्र की स्थायी व्यवस्था न कर सकने के कारण उपन्यासकार उसे आत्महत्या के लिये बाध्य करता है। सोफिया और विनय के चरित्र इस दृष्टि उल्लेख्य हैं। सोफिया जिस स्थिति में पड़ गई थी, उसमें आत्महत्या चाहे अनिवार्य हो गई हो, किंतु विनय को तो प्रेमचंद ने छुटकारा पाने के लिये ही आत्महत्या का पथ बता दिया। वीरता और देशप्रेम का प्रमाण देने के लिये आत्महत्या की आवश्यकता नहीं होती, वरन् कर्मक्षेत्र में

उतरना पड़ता है। प्रेमचंद भी यह जानते थे विनय भी यह जानता था। तथापि इसी बहाने प्रेमचंद ने उसे आत्महत्या का आवेश दिलाया है क्योंकि उसकी समस्या का समाधान उनकी सामर्थ्य के बाहर था। यहाँ प्रभुसेवक के चरित्र का उल्लेख भी अनावश्यक न होगा। बड़े विस्तार से उसकी चरित्र-व्याख्या करने के उपरांत, उपन्यासकार कथा से पृथक करने के लिये उसे विलायत भेज देता है। यह बहुत कुछ इसी प्रकार है जिस प्रकार अपने अन्य उपन्यासों में पात्र से निवृत्ति पाने के निमित्त उपन्यासकार ने उसे सन्यासी बनाकर मंतव्य पूरा किया। यह प्रवृत्ति पात्रसृष्टि की कलागत न्यूनता है जिससे उनकी प्रभावात्मकता कम हो जाती है।

'रंगभूमि' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है :—

उपन्यास का नायक सूरदास बहुत ही क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति है जो भीख मांग कर अपना जीवन निर्वाह करता है। वह केवल भिखारी ही नहीं दाता भी है। उसकी भूमि पर ही नायकराम के जजमानों का पड़ाव पड़ता है तथा गांव के पशु चरते हैं। इसके बदले वह उनसे कुछ नहीं लेता है। जिस भूमि से दो-ढाई सौ की आय हो सकती है, वह उसे गांव के निवासियों के उपयोग के लिये दे डालता है। इसी हेतु उसने जान सेवक को भूमि बेचने से इन्कार कर दिया था। जब उसकी इच्छा के विरुद्ध भूमि उसके हाथ से निकल गई, तब उसने मुआवजे के हजार रुपये सेवा समिति को दे दिये थे क्योंकि वह परोपकार-कार्य धर्म-कार्य समझता है। इसी प्रकार अन्याय का विरोध वह धर्म-कार्य समझ कर ही करता है। जब मिथ्या कारण से भैरों ने अपनी पत्नी सुभागी को घर से निकाल दिया, तब सूरदास ने सुभागी को आश्रय देना अपना 'धरम' समझा। इस सम्बंध में लोगों ने कलङ्क लगाया किंतु सूरदास अपने धर्म-पथ से रंचमात्र भी विचलित नहीं हुआ। वैयक्तिक जीवन की भांति ही सामाजिक जीवन में भी वह अन्याय और अनीति का विरोधी है। पाण्डेपुर में अधिकारियों के अन्याय के विरुद्ध वह सत्याग्रह करता है। उसका समस्त जीवन ही अन्याय और अनीति के विरुद्ध संघर्ष की कहानी है क्योंकि "अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था। अनीति उसके लिये असह्य थी।" इसके लिये जिस आत्मविश्वास, साहस और निष्ठा की आवश्यकता होती है, वह सूरदास के चरित्र में यथेष्ट है। प्रलोभन और प्रतिकार भी उसे सत् पथ से पृथक नहीं करते। उसका विश्वास

अडिग है और वह धुन का पक्का व्यक्ति है । यदि कोई लाख बार उसका घर जलाये तो वह उतनी ही बार घर बसाने का हौसला रखता है । उसकी इस अदम्यता के साथ ही उसमें देवोमय उदारता भी है । अपने विरोधियों के प्रति तो वह अत्यधिक उदार है । भैरों ने उसका घर जलाया, उसके रुपये चोरी किये, उसे कलङ्कित किया किंतु सूरदास के हृदय में उसके प्रति लेश मात्र भी दुर्भावना नहीं है । यहाँ तक कि सुभागी के द्वारा किये रुपये वह पुनः भैरों को दे आया । जान सेवक ने सूरदास को सर्वाधिक आघात पहुंचाया था । उसने सूरदास की भूमि छीन ली और पाण्डेपुर में झोपड़ी गिरने के प्रयत्न में उसकी जान भी ले ली । मृत्यु शय्या पर सूरदास ने अपनी देव तुल्य उदारता का परिचय देते हुए जॉन सेवक से कहा था—'मेरा तो आपने कोई अहित नहीं किया, मुझसे और आपसे दुश्मनी ही कौन सी थी ....नहीं साहब, आपने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया.........मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं।' उसकी इस असंपृक्त मनोवृत्ति के मूल में उसका जीवन दर्शन है । वह जीवन के [illegible] जय-पराजय से असंपृक्त हो खेलना । सूरदास 'रंगभूमि' के जीवन का सबसे बड़ा खिलाड़ी है । उसका सुनिश्चित मत है—'सच्चे खिलाड़ी कभी नहीं रोते, बाजी पर बाजी हारते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते । हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती, दिल पर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, न किसी से जलते हैं, न चिढ़ते हैं।' जीवन-संग्राम में खिलाड़ी के इस दर्शन ने उसे सदा प्रेरणा दी थी । उसने सत्य और न्याय, नीति और धर्म के रास्ते जीवन का खेल खेला था । उसने भैरों से कहा था—'खेलना तो इस तरह चाहिये कि निगाह जीत पर रहे, पर हार से घबराए नहीं, ईमान को न छोड़े। हार-जीत तो जिन्दगानी का साथ है।' उपन्यासकार ने उसके चरित्र की आलोचना करते हुए यथार्थ ही लिखा है—'कोई कहता था सिद्ध था, कोई कहता था, वली था; कोई देवता कहता था; पर वह यथार्थ में खिलाड़ी था, वह खिलाड़ी, जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाए, जीता, तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा, तो प्रसन्न-चित्त रहा; हारा, तो जीतनेवाले से कीना नहीं रक्खा; जीता, तो हारनेवाले पर तालियाँ नहीं बजाईं, जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धांधली नहीं की, कभी द्वन्द्वी पर छिपकर चोट नहीं की।'

उसका यह उदात्त देवत्व उसके मनुष्यत्व का प्रत्याख्यान नहीं करता। उसमें मानवसुलभ दुर्बलताएँ भी हैं। पर यह दुर्बलताएँ न्याय और नीति के संस्पर्श से उसके चरित्र की सद् शक्ति के रूप में प्रकट होती हैं। उपन्यासकार ने ठीक ही लिखा है—'वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था, एक क्षुद्र, शक्तिहीन प्राणी था, चिन्ताओं और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमें अवगुण भी थे और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था। किंतु ये सभी दुर्गुण उस गुण के सम्पर्क से, नमक की खान में जाकर नमक हो जानेवाली वस्तुओं की भांति, देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे—क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदनुराग, मोह सदुत्साह के रूप में प्रकट होता था, और अहंकार आत्माभिमान के वेश में। और वह गुण क्या था? न्याय प्रेम, सत्यभक्ति, दर्द या उसका जो नाम चाहे रख लीजिए...।' इन्दु ने उसके विषय में कहा है—'वह अपनी धुन का पक्का, निर्भीक, निःस्पृह, सत्यनिष्ठ आदमी है, किसी से दबना नहीं जानता।' भैरों को वह मनुष्य के साधु रूप का वरदान मालूम दिया था। एक अन्य पात्र ने उसकी चरित्र-मीमांसा करते हुए कहा है—'सेवा और त्याग की संदेह मूर्ति होने पर भी गरूर छूतक नहीं गया, अपने सत्कार्य का कुछ मूल्य ही नहीं समझता। परोपकार इसके लिए कोई इच्छित कर्म नहीं रहा, उसके चरित्र में मिल गया है।' उसकी चरित्रगत महानता पर अंतिम निर्णय देते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—'भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला, पर हृदय धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था। देह पर मांस न था, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।' उसकी इन विशेषताओं के कारण ही उसके विरोधी भी उसके प्रति श्रद्धा अनुभव करते हैं। यहाँ तक कि उसका प्राणहंता क्लार्क भी उसे 'देवतुल्य' समझने लगा था। जिस व्यक्ति ने अपने चारित्रिक बल से अपने विरोधियों के हृदय पर अधिकार कर लिया हो, निःसन्देह वह जीवन के खेल का अमर खिलाड़ी है।

सोफिया का जन्म ईसाई परिवार में हुआ था जो धार्मिक कट्टरता का अनुयायी है। उसकी माँ और पितामह उससे आशा करते हैं कि वह नित्य गिरजा जाए, प्रार्थना में सम्मिलित हो और ईसाईमत पर कोई शंका न उठाए.

किंतु सोफिया इसमें असमर्थ है। अध्ययन और मनन ने उसे उदार दृष्टिकोण प्रदान किया था और जिज्ञासु बना दिया था। इसीलिए वह हिंदू धर्म की अनेक प्रवृत्तियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखती है और ईसाईमत सम्बंधी अपनी शंकाओं को सबके सामने व्यक्त करने में हिचकिचाती नहीं। उसकी कट्टर माँ उसके विचार-स्वातंत्र्य की उपेक्षा ही नहीं करती अपितु उसकी प्रताड़ना भी करती है। माँ के व्यवहार से क्षुब्ध होकर ही वह रानी जाह्नवी के साथ रहने लगती है जहाँ विनय और वह प्रेम-सूत्र से बँध जाते हैं। उसका प्रेमादर्श बहुत ऊँचा है। विनय के प्रति उसकी प्रेम-भावना में वायवीयता अधिक हैं। वह एक प्रकार से आत्मिक-वरण है जिसमें शारीरिक आकर्षण की स्थूलता नहीं है। उसने विनय से कहा था—'प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना ही से उसका पोषण होता है, भावना ही से वह जीवित रहता है, और भावना ही से लुप्त हो जाता है। वह भौतिक वस्तु नहीं है।' उसने अपने भाई प्रभुसेवक के सम्मुख कहा था—'प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है, जितना कंचन और कांच में। प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है ...... प्रेम के लिए धर्म की भिन्नता कोई बंधन नहीं है। ऐसी बाधाएँ उस मोभावम के लिए हैं, जिसका अन्त विवाह है, उस प्रेम के लिए नहीं, जिस का अंत बलिदान है।' उसे जैसे अपना ~~भवितव्य~~ ज्ञात था। उसके प्रेम का अंत वस्तुतः बलिदान में ही होता है। प्रेम उसके लिए सुख का वरदान न था, त्याग और बलिदान का कंटकम पथ था जिस पर चल कर सोफिया ने अपनी दृढ़ अंतर्निष्ठा का परिचय दिया। विधर्मी के प्रति उसके अनुराग ने उसे माँ से पृथक कर दिया, जाह्नवी की क्रोधाग्नि सहनी पड़ी। बन्दीगृह से विनय को मुक्त कराने के लिए उसे क्लार्क के साथ प्रेमाभिनय करना पड़ा। विनय के लिए उसने यह सब सहन किया। विनय ने स्वयं स्वीकार किया था सोफिया ने उसके लिए त्याग में ही अनुराग की सार्थकता अनुभव की थी। उसने सोफिया से कहा भी था—'मेरे लिए तुमने अब तक त्याग-ही त्याग किए हैं, सम्मान, समृद्धि, सिद्धांत एक की भी परवा नहीं की। वस्तुतः उसने अपने प्रेमी के लिए त्याग और कष्ट का जीवन स्वीकार किया। विनय की मृत्यु के उपरांत उसकी माँ ने क्लार्क से उसके विवाह की योजना द्वारा उसके एक निष्ठ अनुराग की अखण्डता पर आघात करना चाहा। सोफिया के लिए दूसरे पुरुष की कल्पना भी असह्य थी, उसकी

आंतरिकता विनय की परिणीता थी। इस स्थिति से निवृत्ति पाने के निमित्त उसने गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली। मन की व्यथा लहरों में समा गई। उसके प्रेम में बलिदान का ध्येय पूरा हो गया।

विनय को उसकी माँ एक आदर्श देशसेवक बनाना चाहती थी। माँ की आज्ञानुसार उसने ऐश्वर्य-वैभव का जीवन त्याग कर सेवामार्ग अपनाया। इन्हीं दिनों सोफिया के सम्पर्क में आने पर उसे सोफिया से प्रेम हो गया। पर अपने उद्वेगों पर उसे नियंत्रण है। उसका प्रेम भी आदर्श प्रधान है। उसने प्रभुसेवक से कहा था—'मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मेरे प्रेम में वासना का लेश भी नहीं है। मेरे जीवन को सार्थक बनाने के लिये यह अनुराग ही काफी है। आदर्श प्रेमी की भांति ही प्रारम्भ में वह आदर्श समाज-सेवक भी है जो यथेष्ठ साहस और कष्टसहिष्णुता का परिचय देता है। उसकी सेवावृत्ति ही जसवंतनगर में उसे लोकश्रद्धा का पात्र बना देती है। यहीं उसका चरित्र पलटा खाता है। उपन्यासकार की चेष्टा के बावजूद भी पाठक उसके प्रति सहानुभूति रखने में अपने को असमर्थ पाता है। सोफिया के विद्रोहियों के हाथ में पड़ते ही उसका मानसिक सन्तुलन नष्ट हो जाता है और जनता पर भयङ्कर अत्याचार करने में वह राज्य के हाथ का यंत्र बन जाता है। अनेक निरपराधी व्यक्ति संदेहमात्र से क्रूरतम यातनाओं के शिकार हुए। 'नरहत्या और न्यायहत्या' में वह राज्य का दाहिना हाथ बन जाता है। कल जो देश भक्त था, आज राजद्रोही बन गया। राज्यद्रोही से राज्यभक्त बन गया। 'वास्तव में उस पर प्रमाद का रंग छाया हुआ था। सेवा और उपकार के भाव हृदय से सम्पूर्णतः मिट गये थे.........अधिकारी समय-समय पर उन्हें और भी उत्तेजित करते रहते थे। विद्रोहियों के दमन में कोई पुलिस का कर्मचारी, रियासत का कोई नौकर इतना हृदयहीन, विचारहीन, न्यायहीन न बन सकता था........।' और यह सब केवल इसलिए कि सोफिया को विद्रोही उठा ले गए थे। उसका निर्मम जनसंहार उसकी वैयक्तिक प्रवृत्ति का परिणाम था जिसे लक्ष्य करके उसके एक सहयोगी ने ही इन शब्दों में उसकी आलोचना की है—'दीन जनता की, अपनी कामुकता पर, आहुति देना भी सेवा नहीं है। आपने विषय के वशीभूत होकर पिस्तौल का पहला वार किया, और इसलिये इस हत्याकाण्ड का सारा वार आपकी ही गरदन पर है.......आपने यहाँ की जनता के साथ, अपने सहयोगियों के साथ

अपनी जाति के साथ और सबसे अधिक अपनी पूज्य माता के साथ जो विश्वासघात किया है, उसका कलङ्क कभी आपके माथे से न मिटेगा .... वह अपने क्रूर अत्याचारों और नीच निरंकुशता पर लज्जित नहीं होता अपितु उन्हें न्यायसङ्गत बताता है। उसकी इस घोर अमानुषीयता के कारण ही उसकी प्रेमिका सोफिया और माता जाह्नवी उससे घृणा करने लगी थीं। सोफिया ने स्पष्ट शब्दों में उसकी प्रताड़ना की है—'इससे तुम्हारी आंतरिक प्रवृत्ति का पता मिलता है। तुम स्वभावतः स्वार्थसेवी हो......... इसका उद्देश्य केवल उस नीच निरंकुशता को तृप्त करना था, जो तुम्हारे अंतस्थल में सेवा का रूप धारण किये बैठी हुई है।' उसके चरित्र की इस कालिमा को धोने के निमित्त उपन्यासकार ने पाण्डेपुर की जनता को शांत करने के प्रयत्न में उसे आत्महत्या करते दिखाया है। इसे उसने 'वीरमृत्यु' कहकर विनय के चरित्र की कलङ्क-कालिमा धोनी चाही है, किंतु आवेश में की गई आत्महत्या को वीरमृत्यु स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जॉन सेवक उद्योगपति है। स्वार्थ के लिये वह न्याय-अन्याय की चिंता नहीं करता। सिगरेट का कारखाना खड़ा करने के लिये वह सूरदास की भूमि उसकी इच्छा के विरुद्ध हस्तगत कर लेता है और पाण्डेपुर को उजाड़ देता है। ईसाई होने के कारण जिस दयाधर्म की उससे आशा की जाती है, उसका उसमें सर्वथा अभाव है। उद्योगपति बनने की महत्वाकांक्षा उसे नीति अनीति का ध्यान नहीं रखने देती। धर्म उसके व्यवसाय का साधन है। वह नित्य गिरजा इसलिये नहीं जाता कि उसे ईसाई धर्म पर बड़ी आस्था है अपितु इसलिये कि 'न जाने से समाज में अपमान होगा जिसका उसके व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा।' उसने एक पात्र से कहा भी है 'संसार में जीवित रहने के लिये किसी व्यवसाय की जरूरत है, धर्म की नहीं।' उसका विचार है कि 'त्याग और परोपकार केवल एक आदर्श है—कवियों के लिये, भक्तों के मनोरञ्जन के लिये, उपदेशकों की वाणी को अलंकृत करने के लिये। मसीह, बुद्ध और मूसा के जन्म लेने का समय अब नहीं रहा, धन-ऐश्वर्य निंदित होने पर भी मानवीय इच्छाओं का स्वर्ग है और रहेगा।' धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त वह अपनी आत्मा तक की परवाह नहीं करता। वह सोलहों आने उद्योगपति है जिसका उद्देश्य धन-सञ्चय करना और

व्यवसाय बढ़ाना है। इसके लिये जिस व्यावहारिक चातुर्य की आवश्यकता होती है, वह उसमें पर्याप्त मात्रा में हैं। सोफिया की रानी-परिवार से घनिष्ठता को अपना कार्यसिद्धि का साधन बनाकर वह पाण्डेपुर की भूमि प्राप्त कर लेती है। सामाजिक क्षेत्र में भी उसकी व्यवहार-बुद्धि उसकी सफलता का कारण है। क्लार्क और महेंद्रकुमार के झगड़े में उसकी व्यवहार-बुद्धि से उसकी चाल सफल रही थी। क्लार्क ने सोफिया से कहा भी था—'तुम्हारे पापा बड़े चतुर आदमी हैं। ऐसे ही प्राणी संसार में सफल होते हैं। कम से कम मैं तो यह दोरुखी चाल न चल सकता।' उसकी चतुराई अनेक बार मिथ्या भाषण के रूप में भी प्रकट हुई है। अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये उसने बजरंगी और ताहिरअली के झगड़े को खूब बढ़ा-चढ़ा कर राजा महेंद्रकुमार को बताया था। वस्तुतः जानसेवक आधुनिक उद्योगपतियों की प्रवृत्ति का प्रतिनिधि है जो स्वार्थ के निमित्त नीति-अनीति की चिंता नहीं करते।

जॉन सेवक की पत्नी मिसेज सेवक निर्मम, क्रूर और कठोर है। सूरदास ने उसके व्यवहार से क्षुब्ध होकर सोचा था—'बुढ़िया तो पूरी करकसा है, सीधे मुँह बात ही नहीं करती। इतना घमण्ड। जैसे यही विक्टोरिया है।' सोफिया को भी उसके हृदयहीन व्यवहार के कारण संताप सहना पड़ा था। उसकी निर्मम कठोरता से बचने के लिए ही वह रानी जाह्नवी के घर रहने लगी थी। ताहिरअली को घायल अवस्था में देखकर उसका हृदय नहीं पसीजता है। उसकी अमानवीयता के करण ही उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती है। व्यवहार में नहीं, विचार में भी वह अनुदार है। वह ईसाई धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति कठोर अनुदारता का परिचय देती है। सोफिया के स्वतंत्र विचारों के कारण वह उसका अपमान तक करती है। वस्तुतः उसके द्वारा सद्वृत्तियाँ सदैव अपमानित होती है। पुत्री से दुर्व्यवहार करने के उपरांत भी यह आशा रखती है कि वह उसके मनोनुकूल क्लार्क से विवाह करके उसकी सम्मान लोलुपता की तृप्ति करे। इसमें असफल होने पर उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और अन्त में वह पागल हो जाती है।

इसके विपरीत रानी जाह्नवी का चरित्र यथेष्ट उदात्त है। वह अपने पुत्र विनय को एक आदर्श देश सेवक बनाना चाहती है और उससे आशा रखती है कि वह जाति सेवा के लिए प्राणोत्सर्ग भी कर दे। जाति-सेवक पुत्र के कारण रानी के हृदय में गौरव और गर्व था किंतु विनय ने उदयपुर

कीं प्रजा के दमन में जिस निरंकुशता से काम लिया उससे रानी को पुत्र के प्रति घृणा हो गई। जिसको वह देश सेवक बनाना चाहती थी, वही देशद्रोही हो गया। आदर्श-भ्रष्ट पुत्र को उसने तिरस्कृत करते हुए लिखा था—'विनय, आज से कई मास पहले मैं तुम्हारी माता होने पर गर्व करती थी, पर आज तुम्हें पुत्र कहते हुए लज्जा से गड़ी जाती हूं।.........अगर मैं जानती कि तुम इस भाँति मेरा सिर नीचा करोगे, तो तुम आज इस संसार में न होते.........तुम्हें जीवित देखकर मुझे दुःख हो रहा है .....ईश्वर तुम जैसी सन्तान सातवें बैरी को भी न दे ..।' उसके लिए आदर्श पहले है, सन्तान तदोपरांत। इसीलिए कलङ्क कालिमा निम्मजित पुत्र के जीवित रहने की आकाँक्षा उसे नहीं है। उसका अवनत मस्तक तभी गर्व से ऊपर उठता है जब पाण्डेपुर के जन समूह के सम्मुख अपनी वीरता का परिचय देने के लिए विनय आत्महत्या कर लेता है। उसके इस कृत्य से रानी के आदर्श के वीरत्व और दिव्यत्व का समाधान हो जाता है। पुत्र की मृत्यु के बाद सेवक दल का संचालन कर रानी ने अपनी लगन निपुणता और कर्मण्यता का परिचय दिया। उसका आदर्श कर्म-क्षेत्र में अवतरित होकर उसके चरित्र को प्रभावात्मक बना जाता है।

समाज

'रंगभूमि' का समाज-चित्रण बड़ा व्यापक है। इसमें भारतीय समाज की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर तत्कालीन परिस्थितियों के आलोक में दृष्टिपात किया गया है। समस्या-चित्रण में प्रेमचंद ने सामयिक समाज की विशद चित्रपटी का आधार ग्रहण किया है जिससे इसकी प्रभावात्मकता बढ़ गई है। 'रंगभूमि' में समाज और जीवन के विभिन्न पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है, जिनमें परिव्यात आंदोलनों की ध्वनि भी कम नहीं है। राजनीतिक और आर्थिक जीवन-चित्रण में तो आंदोलनों का स्वर इतना प्रखर है कि यह उपन्यास एक विराट आंदोलन का जीवन्त इतिहास मालूम पड़ता है। वस्तुतः यह उपन्यास जीवन के आंदोलन-पक्ष की विशद व्याख्या है। ये आंदोलन बहिर्जगत के अतिरिक्त अन्तर्जगत का संस्पर्श भी करते हैं, इसीलिए 'रंगभूमि' में जीवन की पूर्ण गत्यात्मकता विद्यमान है।

'रङ्गभूमि की रचना के समय अँग्रेजी साम्राज्यवाद भारत में प्रतिष्ठित था और उसके विशेष सहायकों में देशी राज्य प्रमुख थे। इन देशी राज्यों के शासक निर्बल विलासी और उत्तरदायित्वहीन थे। अँग्रेजी शासन की साम्राज्यवादी नीति के समर्थन में ही उनका अस्तित्व टिका था। प्रेमचंद यह भली भाँति समझते थे कि साम्राज्यवादी शासन शोषण और आतंक के आधार पर कायम रहता है। 'रंगभूमि' में शासन-व्यवस्था की इस आतंक-मूलक नीति का विशद चित्रण हुआ है। अँग्रेजी राज्य का प्रतिनिधि क्लार्क साम्राज्यवादी शासन प्रणाली को इन शब्दों में व्यक्त करता है—'हमारा साम्राज्य तभी तक अजेय रह सकता है जब तक प्रजा पर हमारा आतंक छाया रहे·······हमें अपना राज्य प्राणों से भी प्रिय है, और जिस व्यक्ति से हमें क्षति की लेश-मात्र भी शङ्का हो, उसे हम कुचल डालना चाहते हैं, उसका नाश कर देना चाहते हैं, उसके साथ किसी भाँति की रियायत, सहानुभूति, यहाँ तक कि न्याय का व्यवहार भी नहीं कर सकते।' साम्राज्यवाद का आतंक देशी राज्यों की निरकुंशता से और भी प्रश्रय प्राप्त करता है। उदयपुर की निरंकुशता को क्लार्क की उग्र नीति ने इतना भयंकर बना दिया था कि अत्याचार अनाचार और दमन चरम-सीमा पर पहुँच गए थे। प्रेमचंद ने इसका सविस्तार चित्रण करके यह स्पष्ट किया है कि तत्कालीन राजतंत्र शोषण और दमन पर आधारित था।

प्रेमचन्द यह जानते थे कि किसी दल का अंग्रेज क्यों न हो, वह भारत पर शासन करना नहीं छोड़ सकता। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति में सरकार परिवर्तन से विशेष अन्तर नहीं पड़ता है; अंतर यदि पड़ता है तो कुछ ऊपरी बातों में; मूलतः नीति परिवर्तित नहीं होती। क्लार्क के शब्दों में उनका मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है—'अंग्रेज-जाति भारत को अनंत काल तक अपने साम्राज्य का अङ्ग बनाए रखना चाहती है कंजरवेटिव हो या लिबरल, रेड़िकल हो या लेबर, नैशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट, इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं·········आधिपत्य त्याग करने की वस्तु नहीं है······हम सब-के सब······साम्राज्यवादी हैं। अन्तर केवल उस नीति में है, जो भिन्न-भिन्न दल इस जाति पर आधिपत्य जमाए रखने के लिए ग्रहण करते हैं। कोई कठोर शासन का उपासक है, कोई सहानुभूति का, कोई चिकनी-चुपड़ी बातों से काम निकालने का।' यही कारण था कि वैधानिक ढंग से स्वतन्त्रता प्राप्त करने का

प्रेमचंद का विश्वास 'रंगभूमि' के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाता है। वे समझ गए थे कि विधान सभाओं में 'वर्तमान अवस्था में आशावाद आत्मवंचना के सिवा और कुछ नहीं है।' प्रेमचन्द ने गांगुली के द्वारा अपने मत की पुष्टि की है। डाक्टर गांगुली असेम्बली से त्याग पत्र देकर समाज-सेवा के लिए रानी जान्हवी का सहयोगी बन जाता है। 'वह उन लोगों का प्रतिनिधि है, जिन्होंने असहयोग आंदोलन में असेम्बलियों का बहिष्कार किया था।' यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार राष्ट्रमुक्ति के वैधानिक उपायों की अपेक्षा जन-आंदोलनों में अधिक आस्था रखने लगा था।

समाज में विधि और व्यवस्था की जुम्मेदारी शासन के उस अङ्ग पर है जिसे पुलिस कहते हैं। पर उपन्यासकार का मत है कि यह जन-पीड़न का का यंत्र अधिक है, व्यवस्था कम करती है। आगे चलकर उसने भारतीय पुलिस विभाग की कार्यवाहियों का अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गबन' में भंडा फोड़ किया था। 'रंगभूमि' में भी पुलिस की उत्तरदायित्वहीन नीति और अत्याचार-प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। पाण्डेपुर की दुर्दशा का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—'सिपाहियों को मकान खाली कराने का हुक्म क्या मिला, लूट मचाने का हुक्म मिल गया। किसी को अपने बरतन-भाँड़े समेटने की मोहलत भी न देते थे··· उधर सिपाहियों ने घरों के ताले तोड़ने शुरू किए। कहीं किसी पर मार पड़ती थी, कहीं कोई अपनी चीजें लिए भागा जाता था। चिल-पों मची हुई थी। विचित्र दृश्य था, मानों दिन-दहाड़े डाका पड़ रहा हो।' पुलिस की कार्य प्रणाली का यह यथार्थवादी वर्णन प्रेमचंद की पर्यवेक्षण शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। जहाँ भी पुलिस का 'आक्रमण' हो जाता था, वहीं ऐसी दशा हो जाती थी। पुलिस की यह प्रवृत्ति विदेशी राजतंत्र की दमन नीति का परिणाम थी।

इसी प्रकार भारतीय न्याय-विभाग के आधार न्यायालयों में सच्चा न्याय नहीं मिल सकता क्योंकि 'अदालत रुपयेवालों की हैं।' प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' के अनेक स्थलों पर यह दिखाया है कि पूंजीपतियों का अदालतों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि जनता उनके विरुद्ध न्याय नहीं पा सकती। तत्कालीन न्यायालय शोषकवर्ग के स्वार्थों की रक्षा के साधन बने हुए थे। सूरदास ने कहा भी है-'इसी तरह जबरदस्ती करने के लिए जो कानून चाहे बना

लो। यहाँ कोई सरकार का हाथ पकड़नेवाला तो है ही नहीं। उसके सलाहकार भी तो सेठ-महाजन ही हैं।' आगे चलकर उपन्यासकार ने इनकी आलोचना करते हुए लिखा है—'ये सभी नियम पूंजीपतियों के लाभ के लिए बनाए गए हैं और पूंजीपतियों को ही यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि उन नियमों का कहाँ व्यवहार करें। कुत्ते को खाल की रखवाली सौंपी गई है।' 'रंगभूमि' के राजा महेन्द्रकुमार की प्रेरणा से भैरों झूठे गवाह इकट्ठा करके सूरदास पर दावा करता है जिससे निरपराध सूरदास दण्डित होता है। ऐसे न्यायालयों की वास्तविकता जनता से छिपी नहीं है। उपन्यासकार ने उदयपुर राज्य में प्रजा के दमन के लिए स्थापित अदालत की चर्चा करते हुए लिखा है—'इन अपराधियों के भाग्य-निर्णय के लिए एक अलग न्यायालय खोल दिया गया था उसमें मँजे हुए प्रजा-द्रोहियों को छाँट-छाँट कर नियुक्त किया गया था। यह अदालत किसी को छोड़ना न जानती थी। किसी अभियुक्त को प्राणदण्ड देने के लिए एक सिपाही की शहादत काफी थी।' उपन्यासकार के समकालीन समाज में इस प्रकार के न्यायालय विदेशी शासन को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए स्थापित थे जिनमें न्याय का ढोंग रचा जाता था।

आर्थिक जीवन चित्रण में प्रेमचंद ने उद्योगपति और पूंजीपति वर्ग की उन चालों पर प्रकाश डाला है जिनसे वह अनवरत शोषण करता है। इसमें वह वैध और अवैध उपायों का समान रूप से अवलम्बन करता है। 'रंगभूमि' में जान सेवक उद्योगपति वर्ग का प्रतिनिधि है। उसके जीवन की समस्त स्फूर्ति व्यवसाय विकास और पूंजी संचय में ही खर्च होती है। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के निमित्त वह पथ के व्यवधान-निर्धन ग्रामीण-को निर्ममता से कुचलता चलता है। पाण्डेपुर के विनाश की आँधी उसी ने चलाई थी। गाँव के व्यक्तियों को सूरदास के विमुख न कर पाने पर वह अधिकारियों की सहायता से लक्ष्य संधान करता है। राजा महेन्द्रकुमार और जान सेवक ने मिल-जुल कर सूरदास की परती भूमि छीन ली। तत्पश्चात् पाण्डेपुर को उजाड़ डाला। यह सब किस लिए? उपन्यासकार का स्पष्ट उत्तर है—शोषण द्वारा धन-संचय के लिए। जिस भूमि पर गाँव के प्राणी मिल-जुल कर रहते थे, उसी भूमि पर बड़े-बड़े कारखाने व्यक्तिगत मुनाफे के निमित्त खड़े किए जाँयगे। जान सेवक अपनी स्वार्थवृत्ति को परोपकार के आवरण में छिपाने के

लिए इन कारखानों द्वारा बेकारी की समस्या के हल का दावा करता है किन्तु दृष्टिलाभ की दर पर जमी रहती है। जानसेवक और कुँवर भारतसिंह की वार्ता से यह स्पष्ट हो जाता है कि कारखाना निजी लाभ के उद्देश्य से खोला गया था। सामाजिक लाभ के विरुद्ध व्यक्तिगत लाभ के लिए ही पूंजीपतियों ने कम व्यय और अधिक लाभ का सिद्धान्त ग्रहण किया है। जॉन-सेवक के शब्दों में इनकी नीति स्पष्ट हो जाती है—'मेरा सिद्धान्त है, कम से कम खर्च और ज्यादा से ज्यादा नफा। मैंने एक कौड़ी दलाली नहीं दी, विज्ञापनों की मद उड़ा दी। यहाँ तक कि मैंने मैनेजर के लिए भी केवल पाँचसौ ही वेतन देना निश्चित किया है, हालाँकि किसी दूसरे कारखाने में एक हजार सहज ही में मिल जाते......।'

दूसरी ओर समाज का वह अंग है जिसे निर्धनता और अशिक्षा ने असमर्थ कर दिया है। इसके निरन्तर शोषण द्वारा पूंजीपति और उद्योगपति अपनी महत्वाकाँक्षा का प्रसाद खड़ा करते हैं। इस वर्ग को एक साथ ही दो बड़ी शक्तियों के प्रहार सहने पड़ते हैं—अधिकारी-वर्ग और पूंजीपति वर्ग। पाण्डेपुर के निवासियों का दमन पूंजी और अधिकार की सम्मिलित शक्ति द्वारा किया गया था। दमन, शोषण और उत्पीड़न के वात्याचक्र में फँस कर इसने सब कुछ खो दिया है पर जीवन की सद्वृत्तियाँ अभी तक उसके साथ हैं। यह वर्ग अपरिमित शक्ति का केन्द्र है और संघर्षनिष्ठ होने पर इसकी दुर्दमनीयता बढ़ जाती है।

'रंगभूमि' में प्रेमचन्द्र ने मध्यवर्ग—विशेषरूप से निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति का अच्छा चित्रण किया है। यह ताहिरअली और उसके परिवार के जीवन चित्रण में द्रष्टव्य है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि झूठी मर्यादा के लिए मध्यवर्ग बाहरी टीम-टाम और भीतरी अभाव का जीवन व्यतीत करता है। ताहिरअली के परिवार को अपनी दैनिक आवश्यकता-पूर्ति के लिए जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनसे भारतीय मध्यवर्ग की आर्थिक—दुरावस्था का पूरा परिचय मिल जाता है।

उद्देश्य

उपन्यास की मूल कथा में दो सभ्यताओं का संघर्ष है। एक तो लाभ

और प्रतियोगिता पर आधारित औद्योगीकरण की नई शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी पारस्परिक सहयोग पर आधारित जीवन के पुराने ढङ्ग का प्रतिनिधित्व करती है। पूँजीवादी औद्योगीकरण की नई सभ्यता का प्रतिनिधि है जॉन सेवक, और पुरानी सभ्यता का प्रतिनिधि है सूरदास। सूरदास अपने समस्त आत्मबल से औद्योगीकरण का विरोध करता है और पश्चिमी पूँजीवाद के प्रसार के विरुद्ध लड़ता हुआ प्राण देता है। प्रेमचंद प्राचीन ग्राम व्यवस्था के समर्थक हैं और औद्योगीकरण के विरोधी। ग्राम-जीवन के परम्परागत नैतिक आदर्शों के समर्थक होने के नाते वे औद्योगीकरण का विरोध उसकी बुराइयों पर दृष्टि रखकर ही करते हैं। प्रेमचंद ने सूरदास के मुख से औद्योगीकरण की आलोचना इसी दृष्टि से कराई है। वह कहता है—'हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियां हुई, न कभी इतने धड़ल्ले से जुवाँ हुआ, न शराबियों का ऐसा हुल्लड़ रहा। जब तक मजदूर लोग यहाँ काम पर नहीं आ जाते, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं। रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती।' उपन्यासकार ने आगे चलकर पुनः लिखा है—'मिल के परदेसी मजदूर जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बंधियों का लिहाज, दिन-भर तो मिल में काम करते, रात को ताड़ी-शराब पीते। जुआँ नित्य होता था। ऐसे स्थानों पर कुलटाएँ भी आ पहुंचती हैं। यहाँ भी एक छोटा मोटा चकला आबाद हो गया था ....दस-ग्यारह बजे रात तक वहाँ बड़ी बहार रहती थी। कोई चाट खा रहा है, कोई तँबोली की दूकान के सामने खड़ा है, कोई वेश्याओं से विनोद कर रहा है। अश्लील हास-परिहास लज्जास्पद नेत्र-कटाक्ष और कुवासनापूर्ण हाव-भाव का अविरल प्रवाह होता रहता था।' यहाँ स्पष्ट है कि पाण्डेपुर के नैतिक पतन की जिम्मेदारी प्रेमचंद ने औद्योगीकरण पर रखी है। ग्राम-जीवन की सद्वृत्तियों के पराभव से क्षुब्ध प्रेमचंद की दृष्टि औद्योगीकरण के दूषण पर ही टिकी है। पूँजीवाद के विकास में समाज-शोषण का विरोध करके उन्होंने अवश्य प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया, किन्तु उद्योग-प्रसार को लोकविरोधी समझना उनकी उस कृषक-प्रकृति का परिचायक है जो औद्योगिक विकास में प्राचीन मान्यताओं को नष्ट होते देख विद्रोह कर उठी थी। सम्भव है कि गांधी जी के आदर्शों से प्रभावित होकर उन्होंने पूँजी-केन्द्रीकरण का विरोध किया हो।

८

कायाकल्प

'कायाकल्प' (१६२८) में प्रेमचंद की कल्पना ने विचित्र पलटा खाया। इस उपन्यास में उन्होंने पूर्वजन्म आदि आध्यात्मिक विषयों को सन्निविष्ट किया है जिससे कृति का चमत्कार-पक्ष अवश्य पुष्ट हुआ, किंतु मूल विषय की स्वाभाविकता का परिहार हुआ है। मध्यवर्ग की विषम जीवन-यात्रा में स्वर्ग के खंडहरों की प्रतिच्छाया चाहे विभ्रम पैदा कर दे, पर विश्वास नहीं उत्पन्न कर सकती। प्रेमचंद की लेखनी जाने-माने विषयों का जैसा हृदय ग्राही वर्णन करती है, वैसा अपरिचित विषयों का नहीं। इसीलिये अलौकिकता सम्बंधी स्थल चमत्कार विशिष्ट होने पर भी मध्यवर्ग के चित्रण की भाँति जीवन्त शक्ति से अनुप्राणित नहीं हैं। इनकी अपेक्षा उपन्यासकार को सामाजिक-समस्याओं के चित्रण में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। 'कायाकल्प' के मध्यवर्गीय जीवन और जन-संघर्ष के चित्रांकन में प्रेमचंद की उपन्यास कला का समुचित विकास हुआ है! इस उपन्यास में उन्होंने धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता से उत्पन्न परिस्थितियों पर भी दृष्टिपात किया है।

कथा

बनारस के कबीरचौरे के निकट मुँशी बज्रधरसिंह रहते हैं। उनके पुत्र चक्रधर ने विद्या अध्ययन के उपरांत समाज-सेवा में जीवनयापन निश्चय किया। इसीलिये वह नौकरी नहीं करना चाहता, किंतु पिता के आग्रह से वह जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह की लड़की मनोरमा को पढ़ाने लगता है। इसी मध्य उसके विवाह के लिये आगरा से महाशय यशोदा नन्दन ने आगमन किया। बहुत कहने सुनने पर वह अपनी भावी पत्नी अहल्या को देखने के लिये यशोदानंदन के साथ आगरा जाने का निश्चय करता है। इस समाचार से चक्रधर पर अनुरक्त मनोरमा के नेत्र भर आते

हैं। चक्रधर अहल्या को यशोदानंदन की पुत्री समझता था, किंतु रास्ते में यशोदानंदन ने बताया कि अहल्या को उन्होंने एक मेले में पाया था। उन्होंने उसे अपनी पुत्री की भाँति पाल-पोसकर बड़ा किया था। यशोदानंदन की उत्कट इच्छा थी कि चक्रधर ऐसे समाज-सेवक के साथ अहल्या का विवाह हो। रूढ़िवादी माता-पिता का विरोध सहकर भी चक्रधर ने अहल्या का उद्धार करना निश्चित किया। इन्हीं दिनो आगरा में साम्प्रदायिक दंगा हो गया। चक्रधर ने बड़े साहस से इस विषाग्नि को ठण्डा किया। उसके इस सदकर्म से और व्यक्तियों की भाँति अहल्या भी उन पर श्रद्धा करने लगी। चक्रधर से विवाह वह अपना सौभाग्य समझती थी।

मुँशी बज्रधर ने जगदीशपुर की रानी को अपनी लच्छेदार बातो से प्रभावित करके उनके राज्य में नौकरी पाली थी। वह जानते थे कि वृद्धा पत्नी के उपरांत उनके उत्तराधिकारी विशालसिंह होंगे, अतएव उनकी कृपादृष्टि के निमित्त उनके यहाँ भी आने-जाने लगे। जगदीशपुर की रानी देवप्रिया विला-सप्रिया थी। एक दिन एक राजकुमार ने आ कर पूर्वजन्म में उसके पति होने का प्रमाण दिया। देवप्रिया विशालसिंह को राज्य देकर उस राजकुमार के साथ चली गई। मुँशी बज्रधर ने कुछ ही दिनों में अपनी चतुराई और कार्य-दक्षता से विशाल सिंह का विश्वास प्राप्त कर लिया। विशालसिंह के भाग्यो-दय के साथ उनका सौभाग्यसूर्य भी उदित हुआ था। तभी चक्रधर से उन्हें ज्ञात हुआ कि अहल्या यशोदानंदन की पुत्री नहीं, पोषित कन्या है। अज्ञात-कुलशीला लड़की के साथ बज्रकर अपने पुत्र का विवाह करने के लिये प्रस्तुत नहीं थे। पर चक्रधर यशोदानंदन को दिये अपने वचन पर दृढ़ था। पितृ-प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व में पड़कर उसने निश्चय किया कि वह विवाह नहीं करेगा, पर यदि विवाह होगा तो अहल्या के साथ ही।

ठाकुर विशालसिंह के राजतिलकोत्सव के लिये बड़ी धूम से तैयारियाँ हो रही थीं। तिलक समारोह में व्यय के लिये धन न था। इसके लिये किसानों पर हलपीछे दस रुपया चन्दा लगाया गया। रुपया वसूल करने में राज्य के कर्मचारियों ने इलाके में हाहाकार मचा दिया। दरिद्र-निर्धन किसान का घोर उत्पीड़न हो रहा था। चक्रधर ने अत्याचार रोकने के लिये विशाल सिंह से प्रार्थना की, पर इसका कुछ फल न हुआ। बेगार में काम करनेवाले चमारों में इस अत्याचार से असंतोष फैल रहा था। चमारों के चौधरी पर

दीवान का हंटर पड़ते ही सब बेकार विद्रोह कर उठे। चक्रधर ने विशालसिंह को समझाना चाहा, पर विशालसिंह पर प्रभुता का नशा छाया हुआ था। चक्रधर को किसानों का पक्षपाती समझ कर ठाकुर ने उसे बन्दूक के कुँदे से घायल कर दिया। चक्रधर का गिरना था कि क्षुब्ध जन समुदाय उबल पड़ा। उत्सव में निमंत्रित अँग्रेज अधिकारी उसे दबाने के लिये गोली चलाने लगे। पर इससे बेकारों की हिम्मत न टूटी। वे बढ़कर अँग्रेजों को पीस डालते यदि होश आते ही चक्रधर उन्हें रोक न लेता। पर कृतघ्न विदेशी शासन ने चक्रधर को विद्रोही घोषित कर बन्दी कर लिया।

चक्रधर को जेल भेजने में राजा विशालसिंह का भी हाँथ था। मनोरमा ने विशालसिंह की नीचता पर उन्हें फटकारा वह अपने उपास्य पर किये अत्याचार से अत्यन्त क्षुब्ध थी। मनोरमा के क्रोध से अधिक उसके सौंदर्य ने विशालसिंह को परास्त कर दिया। तीन रानियों के रहते भी मनोरमा के लिये उसके हृदय में कामना जाग उठी उन्होंने हरिसेवकसिंह का विशेष आदर सम्मान प्रारम्भ कर दिया। दीवान साहब सांसारिक जीव थे, स्वार्थ के किसी अवसर को न छोड़ सकते थे। उनकी गृहस्वामिनी लौंगी प्रौढ़ विशाल सिंह के साथ मनोरमा के विवाह में सहमत न थी। पर मुँशी बज्रधर की चाल बाजी से मनोरमा का विवाह विशालसिंह से निश्चित हो गया। लौंगी की एक न चली।

चक्रधर को दो वर्ष का कारावास दण्ड प्रदान किया गया था। जेल के अधिकारियों और अपराधियों के झगड़े में उसने कैदियों के घातक प्रहार से दरोगा की रक्षा की। पर संगीन की चोट से स्वयं घायल हो गए। कृतघ्न शासन ने उसे और भी कड़ा दण्ड देने का निश्चय किया। उधर इस समाचार से मनोरमा व्याकुल हो उठी। वह विशालसिंह की वाग्दत्ता थी, किंतु चक्रधर की अनुरक्ता। उसके आग्रह पर विशालसिंह ने अधिकारियों से चक्रधर का अस्पताल में उपचार कराने की आज्ञा प्राप्त की। पर चक्रधर ने इस रियायत से लाभ उठाना अस्वीकृत कर दिया। स्वस्थ होते ही मनोरमा के भाई गुरु सेवकसिंह की अदालत में उन पर मुकदमा चलने लगा। मनोरमा की प्रेरणा से गुरुसेवक ने न्याय-पथ पर चलना स्वीकार किया। उसने चक्रधर को नये अभियोग से मुक्त ही नहीं किया अपितु पहली सजा भी एक वर्ष घटा दी।

चक्रधर को आगरा जेल में भेज दिया गया। वहाँ अहल्या उससे मिलने आई। उसने मन ही मन चक्रधर को पति रूप में ग्रहण कर लिया था।

मनोरमा का विवाह विशाल सिंह के साथ हो गया। राजा साहब की समस्त वृत्तियाँ राज-पाट छोड़कर उस पर केन्द्रित हो गई थीं। सब-कुछ मनोरमा के आदेश से होता था। उसने राज्य-प्रथा के नाम पर होनेवाली धाँधलियों को बन्द करा दिया। प्रभुता और धन को उसने परोपकार का साधन बनाया। वैभव और ऐश्वर्य के जीवन में मनोरमा चक्रधर को विस्मृत न कर सकी। चक्रधर की अनुपस्थिति में उसके परिवार पर मनोरमा की विशेष कृपा थी। उसके आदेश से ही चक्रधर का बन्दीगृह से मुक्त होने पर राज्य की ओर से स्वागत हुआ था।

होली के अवसर पर आगरा में साम्प्रदायिक दंगा हो गया जिसमें यशोदानन्दन मार डाले गए। मुसलमानों ने उनके मकान में आग लगा दी और अहल्या को उठा ले गए। माता पिता के विरोध के बावजूद चक्रधर आगरा गया। जब वह आगरा पहुँचा, तब अहल्या का पता लग गया था। ख्वाजा महमूद नामक एक मुसलमान नेता के पुत्र ने उस पर बलात्कार करना चाहा। अहल्या ने छुरी से उसे मार कर अपनी रक्षा की। साम्प्रदायिक दंगा भी ठंडा पड़ गया था यशोदानन्दन का क्रिया-कार्य करने के उपरान्त चक्रधर और अहल्या का विवाह हो गया। चक्रधर अहल्या के साथ घर चल दिया पर मन में सन्देह था कि रूढ़िवादी माता-पिता अहल्या को वधू स्वीकार करेंगे या नहीं! पर स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए आकर मुंशी वज्रधर ने उसकी शंका दूर कर दी। पुत्र-प्रेम ने वज्रधर की रूढ़िवादिता को पराभूत कर दिया था किन्तु छूत-छात के विचार से मुन्शी जी निवृत्ति न पा सके। वह और उनकी पत्नी अहल्या के हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करते हैं। चक्रधर अहल्या का यह अपमान सह नहीं सका। उसने प्रयाग में रहना निश्चित किया। उसके बाहर जाकर रहने का निश्चय का मुख्य कारण मनोरमा थी। वह प्रायः चक्रधर से मिलती थी। उसके सौंदर्य से अधिक घातक था उसका आत्मसमर्पण जिसके सम्मुख चक्रधर का संयम बालू की मेंड़ की भाँति पैर पड़ते ही खिसकता मालूम पड़ता। इससे बचने के लिए वह प्रयाग में रहने लगा, पर मनोरमा के रुग्ण होने पर उसे जगदीशपुर में जाना पड़ा।

जगदीशपुर पहुँचने पर नया रहस्योद्घाटन हुआ। अहल्या राजा विशालसिंह की पुत्री निकली जो बीस वर्ष पूर्व मेले में खो गई थी। इस रहस्योद्घाटन से मनोरमा और अहल्या को प्रसन्नता थी किन्तु चक्रधर को उत्साह न था। वह धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्रभुता से दूर रहकर समाज-सेवा में जीवन व्यतीत करना चाहता था। यह अब संभव न था। अहल्या कुछ ही दिनों में विलासप्रिय हो गई थीं। वह इस जीवन का चरम सुख भोग रही थीं। पर इस नये वातावरण में चक्रधर सन्तुष्ट नहीं थे। उसका आदर्श और सिद्धांत यहाँ टूट रहे थे। परिस्थितियाँ उससे मन-विरुद्ध कार्य करा लेती थीं। वातावरण चक्रधर को आदर्श-च्युत कर रहा था। वह इस स्थान से जाना चाहता है, पर अहल्या और मनोरमा यह नहीं चाहती। विशेषरूप से अहल्या बाधक है क्योंकि वह अपने पुत्र शंखधर को छोड़ कर नहीं जा सकती। शंखधर राजा विशालसिंह का उत्तराधिकारी है और मनोरमा भी उस पर प्राण देती है। चक्रधर कुछ दिन तो उधेड़बुन में पड़ा रहा, फिर एक रात्रि सबको छोड़ कर चला गया। पाँच वर्ष तक चक्रधर का कुछ पता न चला। उसका पुत्र शंखधर बड़ा हो गया था। वह अपने पिता को देखने की प्रबल आकांक्षा रखता था। किन्तु चक्रधर का पता किसी को ज्ञात न था। शंखधर की पितृ-भक्ति अपरिसीम थी। वह पिता को खोजने अकेला निकल पड़ा। इस प्रयत्न में वर्षों तक वह भ्रमण करता रहा। असाध्य कष्ट झेलकर उसने चक्रधर को खोज निकाला। चक्रधर औषधि आदि बाँटकर रोगियों की सेवा में दिन व्यतीत कर रहा था। शङ्खधर ने पिता से मिलने की सूचना माँ के पास भेजी। अहल्या चक्रधर को अपने पास बुलाना चाहती थी। अतएव उसने बीमारी का बहाना किया। उसे आशा थी कि इस बहाने चक्रधर उसके पास आ जायगा। पर चक्रधर घर वापस नहीं गया। शङ्खधर को अकेले ही लौटना पड़ा। रास्ते में किसी अज्ञात प्रेरणा से वह हर्षपुर के स्टेशन पर उतर पड़ा। वहाँ उसका वास्तविक रूप प्रकट हुआ। वह देवप्रिया का पूर्वजन्म का पति था और कमलावती ही देवप्रिया थी। वैज्ञानिक क्रियाओं से वह पुनः युवती बन गई थी और बीस वर्ष से तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही थी। उसे साथ लेकर शङ्खधर घर चल दिया। जगदीशपुर पहुँचने पर कमलावती को दक्षिण के राजा की राजकुमारी बताया गया। राजा विशालसिंह वधू रूप में कमलावती को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। कमला और शङ्खधर का विवाह हो गया।

शङ्खधर के आ जाने से राज्य में हर्ष की नदी बह रही थी, किन्तु राज्य परिवार किसी अज्ञात अनिष्ट की शङ्का से विचलित था। कमलावती देवप्रिया की प्रतिकृति थी और युवा शङ्खधर की मुखाकृति देवप्रिया के पति से मिलती थी। राजा विशालसिंह ने उन दोनों को युवावस्था में देखा था। उनके पुनर्जन्म में राजा साहब ने अनिष्ट का संकेत देखा और हुआ भी वही। कमला और शङ्खधर के मिलन अवसर पर शङ्खधर की आकस्मिक मृत्यु हो गई। विशालसिंह यह चोट न सह सके। उनकी भी मृत्यु हो गई। पुत्र की मृत्यु पर अहल्या ने दीवार पर सिर पटक दिया। वह मृत्यु-शय्या पर थी कि चक्रधर लौट आया। पति के दर्शन के उपरांत वह भी मर गई। उधर मुँशी बज्रधर घोड़े से गिर कर मर चुके थे। चक्रधर बहुत दिन घर पर न रहे। सेवा-कार्य को अग्रसर करने के निमित्त वह दक्षिण की ओर चला गया। मनोरमा की मनोव्यथा को पक्षियों के कलरव में आश्रय मिला और देवप्रिया कमलावती के नाम से पुनः जगदीशपुर पर राज्य करने लगी।

वस्तु

'कायाकल्प' के कथानक में दो प्रकार की कहानियों की योजना है— सामाजिक और आध्यात्मिक। उपन्यास की मुख्य सामाजिक कथा चक्रधर-मनोरमा की कहानी है। इसके अतिरिक्त प्रासंगिक सामाजिक कथाएँ भी हैं। इनमें हरिसेवक-लौंगी की कथा, विशालसिंह-रोहिणी की कथा, अहल्या—चक्रधर और मुँशी बज्रधर की कथाएँ उल्लेख्य हैं। वस्तु की आध्यात्मिक कथा देवप्रिया-महेन्द्र या कमलावती शङ्खधर की पुनर्जन्म सम्बंधी कहानी है। यह अलौकिकता प्रधान है जिसमें चमत्कार-तत्त्व का सन्निवेश यथेष्ठ है। कथानक का यह अंश विलक्षण कल्पना पर आधारित है और सामाजिक कथा की तुलना में अद्भुत है।

लौकिक और अलौकिक कथाओं को निबद्ध करने के प्रयत्न से उपन्यास का वस्तु विन्यास जटिल हो गया है। सामाजिक कथाएँ भी कहीं समानांतर चलती हैं, कहीं मिल जाती हैं, किंतु आध्यात्मिक कथा समानांतर चलते रहने के उपरांत जिस झटके से सामाजिक कथा में आ मिलती है, उसमें स्पष्ट कृत्रिमता है। 'कायाकल्प' की आध्यात्मिक और सामाजिक कथाओं को परस्पर अनुस्यूत करने के प्रयत्न में उपन्यासकार ने जटिल वस्तु-विधान का

दृष्टांत प्रस्तुत किया है। इसमें वस्तु का स्वाभाविक विकास भी सम्भव नहीं हो पाया है। घटनाओं की पूर्व-निर्धारित योजना में संयोग और आकस्मिकता के प्रचुर प्रयोग द्वारा कथानक की कलात्मकता बहुत कम हो गई है। वस्तु-विकास की इस कृत्रिम प्रणाली को ग्रहण करने के कारण उपन्यासकार के हाथ बँध गये हैं और वह कथा प्रगति में परिस्थितियों का प्रभाव अंकित नहीं कर पाया है।

'कायाकल्प' की कथा का प्रारम्भ विरोध या संघर्ष से होता है। मुँशी बज्रधर और चक्रधर के आदर्शों में यथेष्ट अन्तर है। वस्तुतः उनके आदर्श परस्पर विरोधी हैं। यह विचार-वैषम्य वस्तुगत संघर्ष का प्रारम्भ है। तत्पश्चात् उपन्यासकार ने कथा-विकास के निमित्त प्रेम और कर्त्तव्य का संघर्ष, आर्थिक संघर्ष और सैद्धांतिक-संघर्ष की योजना की है। चक्रधर-मनोरमा की कहानी में प्रेम एवं कर्त्तव्य का संघर्ष व्याप्त है। सामन्तशाही और दलित वर्ग के विरोध में आर्थिक-संघर्ष निहित है। संघर्ष-चित्रण की यह प्रणाली बहुत कुछ नाटकीय है जिससे कथानक की प्रभावात्मकता बढ़ जाती है। यदि 'कायाकल्प' का संघर्ष-विधान उपन्यास से अन्तिम अवसाद के श्लथ न पड़ जाता तो कृति का सौंदर्य अपेक्षाकृत अधिक होता।

प्रेमचंद के उपन्यासों पर अनावश्यक विस्तार का आक्षेप किया गया है। 'कायाकल्प' में वर्णनात्मक विस्तार की अपेक्षा वस्तु के अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मुंशी बज्रधर का सङ्गीत प्रेम, लौंगी द्वारा धूर्त ज्योतिषी की दुर्गति आदि प्रसङ्ग वस्तु-विकास में अनावश्यक हैं। इसके अतिरिक्त अट्ठाइस परिच्छेद के पूर्वार्द्ध—जिसमें गुरुसेवकसिंह की बीमारी पर रामप्रिया की विकलता अङ्कित की गई है—का क्या प्रयोजन है। इसका वस्तु-विकास में कोई स्थान नहीं है और न आगे कहीं चर्चा है। ऐसे अनावश्यक स्थलों से कथानक का संप्रसार अवश्य हुआ है किंतु वस्तु सङ्गठन शिथिल और सदोष अधिक हुआ है।

पात्र

'कायाकल्प' में भूमिपति वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के पात्र हैं। भूमिपति वर्ग के पात्रों में देवप्रिया और विशालसिंह हैं। मध्यवर्गीय पात्रों में चक्रधर, बज्रधर, यशोदानदन, हरिसेवकसिंह आदि हैं। मनोरमा और

अहल्या का राजघराने से सम्बंध उनकी मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों और संस्कारों का उन्मूलन नहीं कर पाता। निम्न वर्ग में किसान और अछूत हैं। उपन्यास में मध्य वर्ग के पात्रों का प्राधान्य है और सब प्रमुख पात्र इस वर्ग से ही सम्बंधित हैं। मुँशी वज्रधर मध्य वर्ग का एक 'टिपिकल' पात्र है जिसकी चरित्र-गत विशेषताओं में इस वर्ग की ऐड़ी से चोटी तक झलकती है, यदि अतिशयोक्ति न समझी जाय, तो मैं यह कहने का साहस करता हूं कि मध्य वर्ग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने में वज्रधर का चरित्र प्रेमचंद साहित्य में अनुपमेय है।

'कायाकल्प' में उपन्यासकार ने आदर्श की अभिव्यक्ति के निमित्त जिन पात्रों की सृष्टि की है उनमें सजीवता का अभाव है। चक्रधर का चरित्र लीजिये। प्रेमचंद ने उसे एक आदर्शवादी-सिद्धांतवादी देशसेवक के रूप में चित्रित किया है। पीड़ित जनता के लिये वह सुख-सुविधा का जीवन त्याग कर अनेक कष्ट सहता है। अन्याय का विरोध करने में वह अग्रगण्य है। यहाँ तक तो ठीक है, किंतु उसका आदर्श-चित्र प्रेमचंद ने इतना बढ़ा-चढ़ा कर खींचा है कि वह यांत्रिक हो उठा है। वह मानवीय संवेदना से रिक्त जड़ मूर्ति बन जाता है। मनोरमा के प्रेमभाव को जानते हुए भी वह पाषाणवत् व्यवहार करता है। हम उसे सयमी कह सकते हैं, आदर्शवान और सिद्धांतवादी भी कह सकते हैं, किंतु मनोवेग के अभाव में सजीव पात्र नहीं कह सकते। उसकी सेवावृत्ति का परवर्ती रूप उपन्यासकार ने न जाने क्या समझकर निश्चित किया है। जो व्यक्ति जन सेवक था, आंदोलनों में जनता के साथ रहता था, वही चक्रधर बाद को देश-प्रदेश में दवा बाटता फिरता है। उसके लिये क्या जड़ी-बूटी बांटते फिरने से अच्छा अन्य सेवा कार्य रह नहीं गया था? इसीलिये उसके चरित्र के पूर्वार्द्ध की तुलना में उत्तरार्द्ध हलका और प्रभावहीन हो गया है।

सामान्य पात्रों में लौंगी का चरित्र आदर्श होकर भी सजीव है, क्योंकि वह प्रेम और वात्सल्य ऐसे मनोवेगों पर आधारित है। वह हरिसेवक की व्याहता नहीं है किन्तु परित्यक्ताओं के लिए भी आदर्श है। कर्तव्य, प्रेम और त्याग से अनुप्राणित उसका चरित्र नारीत्व के उज्ज्वल-पक्ष की मार्मिक झलक दिखाता है। वह हरि सेवक की शक्ति है, आत्मा है और प्रेरणा है। लौंगी के

दृष्टांत प्रस्तुत किया है। इसमें वस्तु का स्वाभाविक विकास भी सम्भव नहीं हो पाया है। घटनाओं की पूर्व-निर्धारित योजना में संयोग और आकस्मिकता के प्रचुर प्रयोग द्वारा कथानक की कलात्मकता बहुत कम हो गई है। वस्तु-विकास की इस कृत्रिम प्रणाली को ग्रहण करने के कारण उपन्यासकार के हाथ बँध गये हैं और वह कथा प्रगति में परिस्थितियों का प्रभाव अंकित नहीं कर पाया है।

'कायाकल्प' की कथा का प्रारम्भ विरोध या संघर्ष से होता है। मुँशी बज्रधर और चक्रधर के आदर्शों में यथेष्ट अन्तर है। वस्तुतः उनके आदर्श परस्पर विरोधी हैं। यह विचार-वैषम्य वस्तुगत संघर्ष का प्रारम्भ है। तत्पश्चात् उपन्यासकार ने कथा-विकास के निमित्त प्रेम और कर्त्तव्य का संघर्ष, आर्थिक संघर्ष और सैद्धांतिक-संघर्ष की योजना की है। चक्रधर-मनोरमा की कहानी में प्रेम एवं कर्त्तव्य का संघर्ष व्याप्त है। सामन्तशाही और दलित वर्ग के विरोध में आर्थिक-संघर्ष निहित है। संघर्ष-चित्रण की यह प्रणाली बहुत कुछ नाटकीय है जिससे कथानक की प्रभावात्मकता बढ़ जाती है। यदि 'कायाकल्प' का संघर्ष-विधान उपन्यास से अन्तिम अवसाद के श्लथ न पड़ जाता तो कृति का सौंदर्य अपेक्षाकृत अधिक होता।

प्रेमचंद के उपन्यासों पर अनावश्यक विस्तार का आक्षेप किया गया है। 'कायाकल्प' में वर्णनात्मक विस्तार की अपेक्षा वस्तु के अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मुंशी बज्रधर का सङ्गीत प्रेम, लौंगी द्वारा धूर्त ज्योतिषी की दुर्गति आदि प्रसङ्ग वस्तु-विकास में अनावश्यक हैं। इसके अतिरिक्त अट्ठाइस परिच्छेद के पूर्वार्द्ध—जिसमें गुरुसेवकसिंह की बीमारी पर रामप्रिया की विकलता अङ्कित की गई है—का क्या प्रयोजन है। इसका वस्तु-विकास में कोई स्थान नहीं है और न आगे कहीं चर्चा है। ऐसे अनावश्यक स्थलों से कथानक का संप्रसार अवश्य हुआ है किंतु वस्तु सङ्गठन शिथिल और सदोष अधिक हुआ है।

पात्र

'कायाकल्प' में भूमिपति वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के पात्र हैं। भूमिपति वर्ग के पात्रों में देवप्रिया और विशालसिंह हैं। मध्यवर्गीय पात्रों में चक्रधर, बज्रधर, यशोदानदन, हरिसेवकसिंह आदि हैं। मनोरमा और

अहल्या का राजघराने से सम्बंध उनकी मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों और संस्कारों का उन्मूलन नहीं कर पाता। निम्न वर्ग में किसान और अछूत हैं। उपन्यास में मध्य वर्ग के पात्रों का प्राधान्य है और सब प्रमुख पात्र इस वर्ग से ही सम्बंधित हैं। मुँशी वज्रधर मध्य वर्ग का एक 'टिपिकल' पात्र है जिसकी चरित्र-गत विशेषताओं में इस वर्ग की ऐड़ी से चोटी तक झलकती है, यदि अतिशयोक्ति न समझी जाय, तो मैं यह कहने का साहस करता हूं कि मध्य वर्ग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने में वज्रधर का चरित्र प्रेमचंद साहित्य में अनुपमेय है।

'कायाकल्प' में उपन्यासकार ने आदर्श की अभिव्यक्ति के निमित्त जिन पात्रों की सृष्टि की है,उनमें सजीवता का अभाव है। चक्रधर का चरित्र लीजिये। प्रेमचंद ने उसे एक आदर्शवादी-सिद्धांतवादी देशसेवक के रूप में चित्रित किया है। पीड़ित जनता के लिये वह सुख-सुविधा का जीवन त्याग कर अनेक कष्ट सहता है। अन्याय का विरोध करने में वह अग्रगण्य है। यहाँ तक तो ठीक है, किंतु उसका आदर्श-चित्र प्रेमचंद ने इतना बढ़ा-चढ़ा कर खींचा है कि वह यांत्रिक हो उठा है। वह मानवीय संवेदना से रिक्त जड़ मूर्ति बन जाता है। मनोरमा के प्रेमभाव को जानते हुए भी वह पाषाणवत् व्यवहार करता है। हम उसे संयमी कह सकते हैं, आदर्शवान और सिद्धांतवादी भी कह सकते हैं, किंतु मनोवेग के अभाव में सजीव पात्र नहीं कह सकते। उसकी सेवावृत्ति का परवर्ती रूप उपन्यासकार ने न जाने क्या समझकर निश्चित किया है। जो व्यक्ति जन सेवक था, आंदोलनों में जनता के साथ रहता था, वही चक्रधर बाद को देश-प्रदेश में दवा बांटता फिरता है। उसके लिये क्या जड़ी-बूटी बांटते फिरने से अच्छा अन्य सेवा कार्य रह नहीं गया था? इसीलिये उसके चरित्र के पूर्वार्द्ध की तुलना में उत्तरार्द्ध हलका और प्रभावहीन हो गया है।

पात्रों में वह प्रमुख पात्र है और सजीवता की दृष्टि से उपन्यास के उल्लेख्य चरित्रों में हैं।

'कायाकल्प' के पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री-पात्रों के चरित्रांकन में उपन्यासकार को अधिक सफलता मिली है। उसने कतिपय स्थलों पर नारी मनोविज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। विशेष रूप में सौतिया डाह से जलनेवाली नारियों के चरित्र-चित्रण में उसे बड़ी सफलता मिली है। इस दृष्टि से विशालसिंह की रोहणी और वसुमती रानियों के चरित्र उल्लेखनीय हैं। उनके सामान्य से सामान्य मनोभावों और चेष्टाओं को उपन्यासकार ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। मनोरमा के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द को अच्छी सफलता मिली है। उसकी अपरिसीम मनोव्यथा और तृषित आकाँक्षा अतुल मार्मिकता से चित्रित की गई है। चक्रधर की माँ निर्मला के संक्षिप्त चरित्र में भी प्रेम और परम्परा का द्वन्द्व द्रष्टव्य है।

'कायाकल्प के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है —

अपने बुद्धिबल से उच्चशिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त चक्रधर ने सेवा-मार्ग पर चलना निश्चित किया था। समाज-सेवा के निमित्त उसने आत्माभिमान और आत्मस्वतन्त्रता को नौकरी के पाश से मुक्त रखना आवश्यक समझा और इसीलिए पिता के आग्रह पर भी उसने नौकरी न की। 'चक्रधर पिता का अदब करते थे, उनको जबाब तो न देते, पर अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए उन्होंने जो मार्ग तय कर लिया था, उससे वे न हटते थे। उन्हें यह हास्यास्पद मालूम होता था कि आदमी केवल पेट पालने के लिए आधी उम्र पढ़ने में लगा दे। अगर पेट पालना ही जीवन का आदर्श है, तो पढ़ने की जरूरत ही क्या है। मजदूर एक अक्षर भी नहीं जानता, फिर भी वह अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट बड़े मजे से पाल लेता है। विद्या को जीविका का साधन बनाते उन्हें लज्जा आती थी ...... दीनों की सेवा और सहायता में जो आनन्द और आत्मगौरव था, वह दफ्तर में बैठकर कलम घिसने में कहाँ।' चक्रधर का यह आदर्श उसके पिता की व्यावहारिक-बुद्धि को ग्राह्य न था, पर वह अपने निर्दिष्ट पथ से रंच मात्र भी न विचलित हुआ। चक्रधर शिक्षित व्यक्तियों की स्वार्थपरता में लिप्तता को जीवन का अपव्यय मानता है। उसने कहा था—'जीवन में मनुष्य का यही काम नहीं है कि विवाह करले' बच्चों का बाप बन जाय और कोल्हू के बैल की तरह

आँखों पर पट्टी बाँधकर गृहस्थी में जुट जाय, उसने अपना विवाह आनन्दभोग के लिए नहीं अपितु एक अनाथ स्त्री के उद्धार का सामाजिक-कर्तव्य समझ कर किया था। इस सम्बन्ध में उसने बड़ी दृढ़ता का परिचय दिया और रूढ़िवादी माता-पिता के विरोध के बावजूद भी कर्तव्य-पथ पर अडिग रहा। माता-पिता और पुत्र-पत्नी के प्रति उसका प्रेम है, उनके प्रति वह अपना दायित्व भी समझता है किन्तु आदर्श, सिद्धान्त और कर्तव्य के लिए इन सबका त्याग भी कर सकता है। उसकी पत्नी अहल्या जब सेवा-कार्य में अवरोध उत्पन्न करती है, तब वह उसे छोड़ कर चला जाता है। इसीलिए उसने जगदीशपुर राज्य की अतुल सम्पत्ति को ठुकरा दिया था।

मनोरमा असफल प्रेमिका के रूप में चित्रित की गई है। चक्रधर उसके जीवन में शिक्षक के रूप में आया। तभी मनोरमा का सरल,कोमल और भावमय हृदय उसकी ओर खिंचने लगा। चक्रधर की अनुपस्थिति में वह बेचैन हो उठती, उसका मन भटकने लगता। पर तभी उसे चोट खानी पड़ी। चक्रधर ने अहल्या से विवाह करके उसकी कोमल भावनाओं को बड़ी निर्ममता से कुचल डाला किन्तु मनोरमा ने व्यथा को हृदय की सीमाओं में बाँध रखा। निराश और असफल होकर भी चक्रधर के प्रति उसके प्रेम में लेशमात्र कमी न हुई। चक्रधर के त्याग, सेवा और साहस ने उसकी श्रद्धा को भी जगा दिया। वह चक्रधर की उपासिका बन गई। चक्रधर जेल गया और मनोरमा का विवाह विशालसिंह के साथ हो गया। विलास और ऐश्वर्य की चमक-दमक में भी प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व चलता रहा। प्रभुता, धन और ऐश्वर्य पाकर भी वह चक्रधर को नहीं भूल सकी। उसने चक्रधर के आदर्शों की अनुगामिनी बनकर प्रभुता और धन को परोपकार का साधन बनाया। रियासत में होने वाले अत्याचार और अनाचार उसी की प्रेरणा से बन्द हुए। चक्रधर की मुक्ति के निमित्त वह बराबर प्रयत्न करती रही। बन्दीगृह से मुक्त होने पर वह चक्रधर की अभ्यर्थना के लिए गई किन्तु चक्रधर को उससे बात करने का अवसर न मिल पाया। मनोरमा ने इसे तिरस्कार समझा। उसे यह सोच कर मर्मान्तिक पीड़ा हुई कि चक्रधर उसे विलासिनी समझ कर तिरस्कृतकर रहे हैं। मनोव्यथा से व्याकुल उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी —तुम मुझे विलासिनी समझ रहे हो, यह तुम्हारा अन्याय है। और किस प्रकार मैं तुम्हरी सेवा करती ? मुझमें बुद्धिबल न था, धन बल न था, विद्या-बल न था, केवल रूप-बल था,

और वह मैंने तुम्हें अर्पण कर दिया। फिर भी तुम मेरा तिरस्कार करते हो। 'सचमुच' चक्रधर के प्रेम पर उसने आत्मबलि दी थी। चक्रधर से भेंट होने पर उसने कहा था–'जब मैंने देखा कि आपकी परोपकार–कामनाएँ धन के बिना निष्फल हुई जाती हैं, जो कि आपके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, तो मैंने उसी बाधा को हटाने के लिए यह बेड़ी अपने पैरों में डाली·········मेरी सुख-लालसा किसी भले घर में शान्त हो सकती थी। उसके लिए मुझे जगदीशपुर की रानी बनने की जरूरत न थी। मैंने केवल आप की इच्छा के सामने सिर झुकाया है·········।' उसका इतना बड़ा आत्मबलिदान देखकर सिद्धान्तवादी चक्रधर के अन्तस्तल की जड़ता भी हिल उठी थी। उसे बहुत पहले की एक बात याद आई जो उसने विनोद-भाव से कही थी। 'ऐश्वर्य पाकर तुम मुझे भूल जाओगी, मनोरमा ने उत्तर दिया था-'मैं मर कर भी आपको नहीं भूल सकती।' उन शब्दों की दृढ़ता में गूँजता वह संकल्प कितना सच्चा निकला! मनोरमा के इस बलिदान के सम्मुख चक्रधर की सारी सिद्धान्तवादिता फीकी पड़ गई। और इसके बदले उसने क्या पाया? प्रेम की ध्वनि देने वाले दो-चार भटकते शब्द! उसका चिरतृषित हृदय इसी में तृप्ति की प्रवञ्चना पाता रहा।

चक्रधर के पिता वज्रधर ने अल्पकाल तक ही तहसीलदारी की थी किन्तु अपने को तहसीलदार कहने और इस पद की चर्चा करने में बड़े गर्व का अनुभव करते हैं। उनकी बड़ी इच्छा थी कि उनका पुत्र भी ऐसी ही कोई नौकरी कर लें क्योंकि वह नौकरी में शान समझते हैं। पुत्र द्वारा अभिलाषा पूर्ण होते न देख उन्होंने अपनी व्यावहारिक बुद्धि की सहायता से रानी जगदीशपुर के यहाँ नौकरी प्राप्त कर ली। अपनी व्यवहार कुशलता के कारण ही वह राजा विशालसिंह के विश्वासपात्र बन गए। आगे चलकर पुत्र द्वारा जब वह एक बड़ी रियासत से सम्बन्धित हुए तो उन पर भाग्यलक्ष्मी फट पड़ी पर यह प्रभुत्व उन्हें स्वार्थी और आत्मलोभी न बना सका। उनकी उदारता पूर्ववत् बनी रही। खाने और खिलाने में वज्रधर अवश्य उदार हैं किन्तु उनका सामाजिक दृष्टिकोण अनुदारतापूर्ण है। अहल्या के कुल-शील का पता न होने के कारण वह चक्रधर को उससे विवाह करने की सम्मति देते हैं। पुत्र-प्रेम वश अहल्या को बहू स्वीकार कर लेने पर भी वह उसके हाथ का भोजन नहीं करते। सामाजिक विचारों की रूढ़िवादिता और परम्परागत संस्कारों के

कारण ही वज्रधर अनुदारतापूर्ण व्यवहार करते हैं, अन्यथा वह उदार और मौजी जीव थे। उन्होंने सर्वदा निर्द्वन्द्व जीवन यापन किया था। अभाव में भी उन्होंने चिन्ताओं को निकट न आने दिया और न कभी चिन्तित हुए। वज्रधर ने अपना जीवन-दर्शन इन शब्दों में व्यक्त किया है —'इतना समझ लीजिए कि ईश्वर ने संसार की सृष्टि की है और वही इसे चलाता है जो कुछ उसकी इच्छा होगी, वही होगा। फिर उसकी चिन्ता का भार क्यों लें ... ... मैं अपनी जिन्दगी में कभी नहीं रोया। ईश्वर ने जिस दशा में रखा, उसी में प्रसन्न रहा। फाके किए हैं और आज ईश्वर की दया से पेट भर भोजन भी करता हूं; पर रहा एक ही रस। न साथ कुछ लाया हूँ, न ले जाऊँगा। व्यर्थ क्यों रोऊँ ?' किन्तु अन्त समय तक उनकी यह मनोवृत्ति स्थिर न रह सकी। वृद्धावस्था में सुना कि पौत्र अकाल-मृत्यु का ग्रास बन गया। इससे ईश्वरीय विधान पर से उनकी आस्था उठ गई। यह चोट सहकर वह अधिक दिन जीवित न रहे।

प्रारम्भ में अहल्या एक सरल, सुन्दर और संतोषमयी है जिसे धन से प्रेम नहीं है, अपितु उच्च आदर्शों की अनुगामिनी है। इसीलिए चक्रधर के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न होती है। चक्रधर के जेल-जीवन के समय वह स्वयं कठोर नियम-संयम का जीवन व्यतीत करती है। उसने हृदय से चक्रधर को अपना पति मान लिया था, अतएव उसके कष्टकाल में वह किस प्रकार सुखी जीवन व्यतीत करती ? आगे चलकर उसने बड़े साहस और वीरत्व से अपने सम्मान की रक्षा की थी। विवाह होने पर उसने अपनी सेवा से सास-ससुर को प्रसन्न करने का पूरा प्रयत्न किया। जब चक्रधर ने प्रयाग में अलग गृहस्थी जमाई तब अहल्या ने एक सहयोगशील पत्नी के कर्तव्यों का भली-भांति निर्वाह किया। कुछ समय उपरांत उसका भाग्योदय हुआ और वह जगदीशपुर के राजा विशालसिंह की पुत्री प्रमाणित हुई। ऐश्वर्य-वैभव के नये जीवन में वह विलासप्रिय हो गई। जीवन के सुख-भोग में वह पति के आदर्शों से विमुख हो गई जिसके फलस्वरूप उसे पति को खोना पड़ा। विलास ने वियोग दिया। वियोग में वज्रपात हुआ। उसका एकमात्र पुत्र अकाल-मृत्यु का भागी बन गया। प्रहार पर प्रहार ! जर्जर शरीर से प्राणों का सम्बंध टूटने के पूर्व उसे पति के दर्शन हो गए, तत्पश्चात् जीवन का संताप निराशा और विषाद की गहरी छाया में ठंढा हो गया।

समाज

'कायाकल्प' के समाज में यद्यपि तीनों वर्ग के जीवन-चित्र आए हैं, पर इसमें 'रंगभूमि' और 'गोदान' के समाज का सा व्यापकत्व नहीं है। इसी लिए इसमें राजनीति, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर सम्यक् दृष्टिपात नहीं हो पाया है। उपन्यास के समाज-चित्रण में पतनोंन्मुख सामन्ती व्यवस्था, नारी समस्या और बहुविवाह प्रथा एवं साम्प्रदायिक प्रश्नों पर ही विशेष ध्यान दिया गया है।

प्रेमचंद ने पतनोन्मुख सामन्ती-समाज का यथार्थ चित्र खींचा है। निरंकुश और उत्तरदायित्व हीन जागीरदारों की बलि होने वाले किसानों की यंत्रणा बढ़ती जाती थी क्योंकि उनके शोषण पर ही सामन्तवाद टिका था। जगदीशपुर की रानी देवप्रिया अपने भोग-विलास को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रजा पर अत्याचार करती है। उसके इलाके में किसानों का निर्दय शोषण होता था और जब शासन विशालसिंह के अधिकार में आया, तब अत्याचार की मात्रा और भी बढ़ गई। उसके राज्यतिलकोत्सव के अवसर पर शोषण का दैत्य अपने पैने नाखूनों से दलित प्रजा का रक्त बहा रहा था। उपन्यासकार ने इसका चित्रण करते हुए लिखा है—'चारों तरफ लूट-खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोंक-पीट तो साधारण बात थी, किसी के बैल खोल लिये जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितनों ही के खेत कटवा लिये गए, बेगार में दिन-रात काम लिया जाता था। भोजन के बदले हंटर मिलते थे। इससे बेगारों का असन्तोष बढ़ गया। इसे व्यक्त करने के फलस्वरूप उन्हें राजसत्ता के दमन का सामना करना पड़ा। पूर्ववर्ती उपन्यास में भी उपन्यासकार ने जनता के दमन-उत्पीड़न का चित्रण किया था किन्तु 'कायाकल्प' में उसने अंकित किया है कि जनता दमय से भयभीत नहीं होती, उसका उठकर सामना करती है। उसकी इसी संघर्षनिष्ठा में उसकी मुक्ति का मंत्र है। इसी विश्वास के आधार पर उपन्यासकार ने सामन्ती व्यवस्था के लड़खड़ाते पैरों को देखकर लिखा था—'समाज की यह व्यवस्था अब थोड़े दिनों की मेहमान है और वह समय आ रहा है, जब या तो राजा प्रजा का सेवक होगा, या राजा होगा नहीं।' प्रेमचंद ने यह भी दिखाया है कि पतनोन्मुख सामंत व्यवस्था को जीवित रखने के लिए विदेशी शासन उसका सहायक है क्योंकि इन देशी राज्यों के द्वारा उसका स्वार्थसाधन होता है।

नारी-समस्या के चित्रण में उपन्यासकार ने बहुविवाह प्रथा और उसके परिणामों पर दृष्टिपात किया है। सामन्ती-व्यवस्था में बहुविवाह प्रथा का बड़ा प्रचलन है। विशालसिंह के तीन रानियाँ जीवित थीं, फिर भी उसने चौथी शादी की। इन स्त्रियों के पारस्परिक कलह से उसका जीवन अशांतिमय हो गया था। पारस्परिक ईर्ष्या, डाह और कटुता के फलस्वरूप ही रोहिणी को आत्महत्या करनी पड़ी थी। रोहिणी ने मृत्यु के पूर्व बड़े मार्मिक शब्दों में स्त्री की असहाय अवस्था को प्रकट किया था—'स्त्री कभी पुरुषों का खिलौना है, कभी उनके पाँव की जूती। इन्हीं दो अवस्थाओं में उनकी उमर बीत जाती है···हम स्त्रियों को ईश्वर ने इसी लिए बनाया ही है। हमें यह सब चुपचाप सहना चाहिए, गिला या मना करने का दण्ड बहुत कठोर होता है, और विरोध करना तो जीवन का सर्वनाश करना है।' स्त्री की ऐसी दयनीय स्थिति का कारण उसका आर्थिक परावलम्बन तो है ही, पर विशालसिंह ऐसे व्यक्तियों का दायित्व भी कम नहीं है जो पुत्रोत्पत्ति के बहाने वृद्धावस्था तक विवाह किये जाते हैं। यह विवाह प्रायः अनमेल होते हैं, जैसा कि विशालसिंह और मनोरमा का था। फलतः मनोरमा जैसी युवतियों को अपना सम्पूर्ण जीवन आत्मदाह और मनोव्यथा में व्यतीत करना पड़ता है। वर्तमान समाज-व्यवस्था में ऐसी स्त्रियों का भविष्य अन्धकारमय है।

उपन्यासकार ने ऐसी स्त्रियों की समस्या भी प्रस्तुत की है जिनके कुल शील का पता नहीं है और जो किसी के आश्रय में पलती है। कुलीन कहलाने वाले परिवार ऐसी स्त्रियों को स्वीकार करने के निमित्त प्रस्तुत नहीं होते। उनके विवाह की समस्या जटिल हो जाती है। अहल्या के चरित्र द्वारा उपन्यासकार ने इस समस्या पर दृष्टिपात किया है। इसके अतिरिक्त विधर्मियों के चंगुल में पड़ जाने वाली स्त्रियों की समस्या और रूढ़िवादी समाज की प्रतिक्रिया को भी इसी चरित्र के द्वारा स्पष्ट किया गया है। प्रेमचंद हिंदू समाज की इन दुर्भाग्यग्रस्त स्त्रियों की स्थिति से भलीभांति परिचित ज्ञात होते थे। समाज का रूढ़िवादी दृष्टिकोण समस्या को और भी जटिल बना देता है। इस समस्या के समाधान के लिये उन्होंने चक्रधर ऐसे दृढ़ और आदर्शवादी युवकों की आवश्यकता पर जोर दिया है जो समाज का विरोध सहकर भी इन अबलाओं का उद्धार करते हैं।

'कायाकल्प' में प्रेमचंद ने धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता से उत्पन्न

परिस्थितियों का चित्रण किया है। प्रेमचंद के समकालीन समाज में साम्प्रदायिकता ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया था। सामान्य से सामान्य बातों को सम्प्रदायवादी द्वेष और घृणा के रंग में रंगकर देखने के अभ्यस्त हो गए थे। फलस्वरूप अनेक निरपराध प्राणियों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। मुल्ले-मौलवी और पंडित-पुजारी जनता को भड़का कर अलग हो जाते थे। उनकी इस दुर्वृत्ति से हानि होती थी गरीब हिंदू-मुसलमानों की। प्रेमचंद ने साम्प्रदायिक-समस्या के चित्रण के साथ पारस्परिक सद्भाव द्वारा समाधान की कामना की है। इस विषय पर उनके विचार द्रष्टव्य हैं—'जब तक हम सच्चे धर्म का अर्थ न समझेंगे, हमारी यही दशा रहेगी। मुश्किल यह है कि जिन महान् पुरुषों से अच्छी धर्मनिष्ठा की आशा की जाती है, वे अपने अशिक्षित भाइयों से भी बढ़कर उद्दण्ड हो जाते हैं। मैं तो नीति ही को धर्म समझता हूं और सभी सम्प्रदायों की नीति एक-सी है .………हमें राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिये………बुरे हिंदू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिंदू। देखना यह चाहिये कि वह कैसा आदमी है, न कि यह कि वह किस धर्म का आदमी है। संसार का भावी धर्म सत्य, न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा।' यहाँ उपन्यासकार का मानवतावादी दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो जाता है। साम्प्रदायिक-समस्याओं से उत्पन्न जटिल परिस्थितियों में इस दृष्टिकोण से आमूल परिवर्तन हो सकता हैं जिससे पारस्परिक द्वेष-घृणा का अन्त सम्भव है। इस उपन्यास में पारस्परिक झगड़े तय करने के लिये पञ्चायत बनाने का सुझाव भी दिया गया है।

उद्देश्य

'कायाकल्प' में सामाजिक समस्याओं के साथ आध्यात्मिक प्रश्नों पर भी दृष्टिपात किया गया है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि उपन्यास का मुख्य विषय क्या है - आध्यात्मिक या सामाजिक? हमारा उत्तर है—सामाजिक। उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ सामाजिक हैं। इसका जीवन-चित्रण भी सामाजिक दृष्टि से निबद्ध है। आध्यात्मिकता बहुत कुछ व्यक्ति की समस्या है, सामाजिकता समाज की समस्या ही नहीं अपितु उसकी जीवन्त

शक्ति का प्रमाण है। प्रेमचद निश्चित रूप से सामाजिक उपन्यासकार थे। लोकमत समस्याओं की समाजशास्त्रीय अभिव्यक्ति उनका महत्वपूर्ण उद्देश्य है और यही उनके उपन्यास साहित्य की रीढ़ है। लौकिकता के विरुद्ध अलौकिकता का चित्रण संयोग अधिक है, निष्ठानिष्ठ मत कम। इसके अतिरिक्त 'कायाकल्प' का समाज-चित्रण जितना सजीव एवं प्रभावात्मक है उतना पुनर्जन्मांश नहीं।

१

ग़बन

'गबन' (१६३०) में प्रेमचंद की उपन्यास-कला का सुन्दर विकास हुआ है। उनके अन्य बड़े उपन्यासों की भांति इसमें अनावश्यक विस्तार-वृत्ति नहीं है और न इसमें सामाजिक समस्याओं का ही प्राधान्य है। यह प्रेमचंद की पहली औपन्यासिक कृति है जिसमें सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा व्यक्ति की समस्या प्रमुख है। रमानाथ का मिथ्या प्रदर्शन और जालपा का आभूषण प्रेम उपन्यास की कथा के संविधान का विशेष आधार है। व्यक्ति के संस्कार निर्माण में वातावरण का अमिट प्रभाव दिखाकर उपन्यासकार ने चिरसत्य की प्रतिष्ठा की है। कथा-निर्वाह और चरित्र-चित्रण में भी उसे अच्छी सफलता प्राप्त हुई है! जिस प्रकार अपने अन्य उपन्यासों में प्रेमचंद ने विदेशी शासन व्यवस्था के किसी न किसी अंग की आलोचना की है, उसी प्रकार 'गबन' में उन्होंने भारतीय पुलिस विभाग की कार्यवाहियों को अनावृत करके उनका नग्न रूप दिखाया है।

कथा

प्रयाग के निकटवर्ती एक ग्राम में मुख्तार महाशय दीनदयाल की पुत्री जालपा को बाल्यकाल से ही आभूषणों के प्रति विशेष अनुराग है। उसका विवाह दयानाथ के पुत्र रमानाथ के साथ हुआ जो आर्थिक कठिनाइयों के कारण उच्च शिक्षा न प्राप्त कर सका था। इधर दो वर्षों से वह बेकार था किंतु उसकी फैशनपरस्ती ज्यों की त्यों बनी हुई थी। दयानाथ ने पुत्र के विवाह में गहने उधार बनवाकर चढ़ाये थे। सराफ के तगादों से तंग आकर पिता और पुत्र ने जालपा के आभूषणों को चुराकर ऋण चुकाया। इससे जालपा के आभूषण-प्रेमी हृदय को बड़ा आघात लगा। रमानाथ जालपा को घर की विपन्न आर्थिक दशा से अनभिज्ञ रखे था और अपने मिथ्या-प्रदर्शन

से पारिवारिक सम्पन्नता का भ्रम उत्पन्न करा चुका था। अतएव नये आभूषण न मिलने पर वह अपने सास ससुर को ईर्ष्या व कृपण समझने लगी। आभूषणों से वञ्चित जालपा का व्यवहार पति के प्रति भी रूखा होने लगा। इसी मध्य रमानाथ के मित्र रमेश बाबू के प्रयत्न से रमा को म्युनिसिपैलिटी में नौकरी मिल गई। रमानाथ ने पत्नी को प्रसन्न करने के लिये सराफ से उधार आभूषण लिये जिससे जालपा के मन का क्षोभ कम हो गया।

रमानाथ की ऊपरी आय अच्छी थी। वह सब जालपा और रमानाथ के आमोद प्रमोद में व्यय होने लगी। उनकी नगर के प्रमुख वकील इन्द्रभूषण और उसकी पत्नी रतन से घनिष्टता हो चली थी। रतन को जालपा के कङ्गन अत्यधिक पसन्द आए और उसने रमानाथ से अपने लिये ऐसे ही कङ्गन बनवा देने को कहा। रतन ने इसके लिये उसे छः सौ रुपये दिये। रुपये लेकर रमानाथ उस सराफ के पास गया जिससे उसने जालपा के लिये आभूषण उधार लिये थे। सराफ ने रुपये ले लिये किंतु पहले का पूरा हिसाब साफ किये बिना कङ्गन बनाने से इंकार कर दिया। रमानाथ चक्कर में पड़ गया। यह परिस्थिति वह जालपा से भी छिपाए रहा। दिन व्यतीत होने लगे और कङ्गन के लिये रतन के तगादे बढ़ने लगे। कङ्गन शीघ्र मिलने की सम्भावना न देख उसने अपने रुपये वापस मांगे। उसका संशय दूर करने के लिये रमानाथ ने दफ्तर के रुपये घर ला रखे थे जिन्हें जालपा ने रतन को दे दिये। रमानाथ विषम स्थिति में पड़ गया। यदि वह दूसरे दिन रुपया दफ्तर में नहीं जमा करता है, तो वह गबन का दोषी समझकर जेल भेज दिया जाएगा। उसकी इस दशा से जालपा पूर्णतया अनभिज्ञ थी। बचने का कोई उपाय न देख कर वह प्रयाग से भागकर कलकत्ते पहुँचा, जहाँ देवीदीन खटिक के घर उसे आश्रय मिला। वहाँ वह पुलिस की दृष्टि से बचकर रहने लगा। रमानाथ ने पलायन के पूर्व एक पत्र द्वारा जालपा को अपनी स्थिति से अवगत कराना चाहा था, किंतु लज्जा और सङ्कोचवश वह पत्र जालपा को न दे सका था। उसके भाग जाने पर पत्र जालपा के हाथ पड़ गया। जालपा ने परिस्थिति संभालने में बड़ी विवेकशीलता का परिचय दिया। आभूषण बेचकर उसने तत्काल सरकारी धन दफ्तर में जमा कर दिया। उसे यह नहीं ज्ञात था कि रमानाथ प्रयाग से भाग गया है। वह समझती थी कि रमा यहीं-कहीं होगा और कुछ समय बाद लौट आएगा। पर दिन व्यतीत होने

लगे और रमानाथ लौट कर नहीं आया। इस अप्रत्याशित प्रत्याघात से जालपा की जीवनचर्या पूर्णतया परिवर्तित हो गई। उसने बचे हुए आभूषण बेच कर सराफों का कर्जा चुकाया और विलास की वस्तुओं को निर्ममता से गंगा में प्रवाहित कर दिया। उसके दुःख में रतन की सहानुभूति ने सान्त्वना दी। इसी मध्य रतन के पति का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ गया। उसके उपचार के लिए वह कलकत्ता गई। वहाँ उसने रमानाथ की खोज की किंतु भेंट हुई। रमानाथ ने अवश्य रतन को एक वाचनालय में देखा किंतु काल्पनिक अपराध के भय से बोल न सका। उधर रतन के पति का स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया और वह चल बसा। रतन घर लौट आई।

जालपा ने पति को खोज निकालने का एक उपाय निकाला। रमानाथ शतरंज का अच्छा खिलाड़ी था। उसके हल किए शतरंज के नक़शों में से उसने एक नकशा पत्र में प्रकाशित कराया और हल करने वाले को पचास रु० का पुरस्कार घोषित किया। रमानाथ ने उसे हल कर लिया। उसके हस्ताक्षर सहित रुपयों की रसीद जालपा को मिली। इससे उसे ज्ञात हो गया कि रमानाथ कलकत्ते में है। उसके निवासस्थान का पता लगाने के लिए जालपा कलकत्ता चल पड़ी। उधर रमा को संदिग्धावस्था में पुलिस ने बन्दी कर लिया था। उसे जालपा द्वारा दफ्तर के रुपये जमा किए जाने की सूचना न थी, अतएव उसने पुलिस के सम्मुख अपना काल्पनिक अपराध स्वीकार कर लिया। पुलिस ने प्रयाग म्युनिसिपैलिटी से पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि रमा पर ग़बन का अपराध नहीं है। किंतु पुलिस ने उसकी निरपराधिता उसे ज्ञात न होने दी क्योंकि कुछ क्रांतकारियों को फँसाने के लिए रमानाथ से झूठी गवाही दिलाना उसका अभीष्ट था। रमानाथ को 'मुखबिर' बनाने का निश्चय किया गया और दुर्बल रमा ने पुलिस के साम-दाम दण्ड-भेद के सम्मुख घुटने टेक दिये।

कलकत्ता पहुंचने पर जालपा ने रमानाथ के आश्रयदाता देवीदीन खटिक का घर खोज निकाला। वहां उसे ज्ञात हुआ कि उसका पति पुलिस के नियंत्रण में सरकारी गवाह बन गया है। मिथ्या साक्षी देकर अनेक निरपराध व्यक्तियों के प्राणघातक बनने से रमानाथ को बचाने का निश्चय करके उसने गुप्तरूप से उसके पास पत्र भेजा क्योंकि पुलिस रमानाथ से किसी भी व्यक्ति

को मिलने न देती थी। पत्र से रमानाथ को ज्ञान हुआ कि वह ग़बन का अपराधी नहीं है। वह पुलिस से छिपकर जालपा से मिला। उसकी प्रेरणा से वह मिथ्या साक्षी न बनने का निश्चय करता है, किन्तु पुलिस की धमकियों से उसका आसन डोल गया। उसकी झूठी गवाही के कारण क्रान्तिकारी युवक फाँसी से लेकर लम्बी अवधि तक के लिए दण्डित हुए। जालपा को पति की इस कार्य-भीरुता से घृणा हो उठी। रमा उससे मिलने आया तो उसने फटकार दिया। अपने पति के पाप का प्रायश्चित करने के निमित्त वह फाँसी के दण्डित दिनेश के परिवार का पोषण करने लगी। उसने त्याग, श्रम और कष्ट का पथ अपनाया। रमानाथ से जालपा की यह दशा न देखी गई। उसने जज के सम्मुख सच्चा बयान दे दिया। निर्दोष सिद्ध होने पर अभियुक्त मुक्त कर दिए गए। रमानाथ पर दरोग बयानी (मिथ्या साक्षी) का अभियोग चलाया गया किन्तु निर्दोष प्रमाणित होने पर वह भी छोड़ दिया गया।

रमानाथ के चरित्र-परिवर्तन और जालपा की अभीष्ट-सिद्धि में जोहरा नामक एक वेश्या ने भी सहायता की थी। रमानाथ को बहलाने-फुसलाने के लिए पुलिस ने जोहरा को नियुक्त किया था किन्तु जालपा के त्याग बलिदानमय तेजस्वी चरित्र ने उसके कुसंस्कारों को भस्म कर दिया था और उसने विलासमय जीवन त्याग कर सद्पथ पर चलने का निश्चय किया। कलकत्ता से रमानाथ और जालपा के साथ जोहरा भी प्रयाग आई थी। देवीदीन खटिक भी उनके साथ हो लिया था। सबने मिलकर गंगा के किनारे सरल-सन्तोषमय जीवन प्रारम्भ किया। इन लोगों के साथ रतन भी रहने लगी थी किन्तु साल भर की बीमारी के उपरान्त वह चल बसी। कुछ दिनों बाद जोहरा भी भादों की प्रखरस्रोता गंगा के प्रवाह में फँस कर डूब गई। जालपा और रमानाथ के लिए उसकी स्मृति अवशेष रह गई।

वस्तु

'गबन' की कथावस्तु एक मुख्य कथा के ढाँचे में निर्मित है। मुख्य कथा रामनाथ-जालपा की कहानी है। यह कथा स्पष्टतया दो भागों में विभाजित की जा सकती है जिनका सम्बंध प्रयाग और कलकत्ता से है। रामनाथ दोनों केन्द्रों की कथा का सम्बंध-सूत्र है। उसी के कार्य व्यापार से वस्तु-विकास

सम्बद्ध है। मुख्य कथा के विकास और पूर्णत्व के निमित्त कुछ प्रासंगिक कथाएँ भी नियोजित हैं जिनमें रतन, जोहरा और देवीदीन की कहानियाँ उल्लेख्य हैं। ये प्रसंग-कथाएँ वस्तु-विकास की दृष्टि से आवश्यक होने के साथ ही निजी महत्व भी रखती हैं। रतन की कथा युवती-विधवा की आदर्श कथा है, जोहरा वेश्या जीवन के उत्थान की कहानी है और देवीदीन उदार मनुष्यत्व का परिचायक है। इन गौण कथाओं में चरित्र का आकर्षण भी कम नहीं है किंतु उपन्यास के कथानक-संविधान की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है। ये कथाएँ रामनाथ के द्वारा बड़ी कुशलता से मुख्य कथा से अनुस्यूत की गई है।

वस्तु-विकास और संगठन की दृष्टि से 'गबन' का प्रेमचंद के उपन्यासों में विशिष्ट स्थान है। 'इस उपन्यास में प्रेमचंद का वस्तु-कौशल निश्चय ही विकास को प्राप्त हुआ है। उन्होंने वस्तु-संगठन की कला पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। पहले की तरह अब वह ऐसी घटनाओं का प्रत्यक्ष समावेश नहीं करते जो पाठक को आश्चर्य में डाल दे या जो उसकी भावनाओं में तूफान ला दे।' इस उपन्यास का कथा-विकास समतल है। इसके घटना-क्रम में सुनिश्चित योजना है। रमानाथ को केन्द्र मानकर घटनाएँ उसी के चारों ओर नियोजित की गई हैं। घटना प्रगति समतल होने के कारण वस्तु-विकास में झटके नहीं पड़ते और स्वाभाविकता बनी रहती है। स्वाभाविक कथा-विकास के साथ ही 'गबन' में अनावश्यक विस्तार और अनावश्यक घटनाओं का बहिष्कार है। इसीलिए उपन्यास का कथानक सुष्ठु और सुंदर है।

पात्र

'ग़बन' के प्रमुख पात्र मध्यवर्गीय हैं। रमानाथ, जालपा, रतन, दयानाथ आदि मुख्य पात्र मध्यवर्ग के हैं। निम्नवर्ग के पात्रों में देवीदीन और उसकी पत्नी जग्गो उल्लेख्य हैं, किंतु इनकी आर्थिक दशा खराब नहीं है। अधिकारी वर्ग में पुलिस विभाग के व्यक्तियों के चरित्रांकन में उपन्यासकार को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुलिस वालों के 'मानसिक गठन' का प्रेमचंद ने अति उत्तम चित्रण किया है। इसी प्रकार मध्यवर्ग के 'बाबू' चरित्रों में मुख्य रमानाथ के चरित्र-चित्रण में प्रेमचंद की मध्यवर्गीय अंतं-

दृष्टि ने उस चरित्र के सूक्ष्म तंतुओं को बड़ी कुशलता से ग्रहण किया है। उसके चरित्रांकन में उपन्यासकार ने मनोवैज्ञानिक-आधार का सफल निर्वाह किया है। अपराधग्रस्त व्यक्ति के मनोभावों के कुशल चित्रण की दृष्टि से रमानाथ का चरित्र उल्लेख्य है। काल्पनिक अपराध से संत्रस्त रमानाथ की मानसिक उथल-पुथल के चित्रण में प्रेमचंद को बड़ी सफलता प्राप्त हुई है।

'ग़बन' की पात्रसृष्टि कलात्मक है। इसमें आदर्शवादी पात्रों के निर्जीव चरित्रों के विपरीत यथार्थवादी पात्रों के सजीव चरित्रों की योजना की गई है। इसके पात्र हमारे जीवन से अधिकाधिक सम्बंधित हैं और उनके चरित्र-निर्माण में वातावरण एवं परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव अंकित किया गया है। पात्रसृष्टि की यह कलाविशिष्टता 'गबन' की उत्कृष्टता का प्रमाण है। पात्रों पर परिस्थितियों का प्रभाव अनिवार्य सा होता है। उसकी चरित्र-व्याख्या के निमित्त उसकी परिस्थितियों का अध्ययन नितांत आवश्यक है। रमानाथ का चरित्र लीजिए। हम उसे दुर्बल, कायर और भीरु जानकर भी उससे घृणा नहीं करते। नैतिक पतन में भी वह हमारी सहानुभूति से बञ्चित नहीं होता क्योंकि हमें उसकी परिस्थितियों और वातावरण का ज्ञान है। इसी प्रकार साहसी और निर्भीक जालपा द्वारा उपन्यास के अंत में रमानाथ की कायरता का समर्थन पाठकों को आश्चर्य में डाल सकता है, किंतु परिवर्तित परिस्थितियों के आलोक में यह नितांत स्वाभाविक ज्ञात होगा। इसी प्रकार अन्य पात्रों की प्रवृत्तियों का अध्ययन अपेक्षित है। वातावरण और परिस्थि-तियों का चरित्र-विकास में महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित करके 'ग़बन' में प्रेमचंद ने सजीव और स्वाभाविक पात्रसृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

'ग़बन' में अनावश्यक पात्र नहीं हैं। प्रत्येक पात्र का वस्तु में स्थान नियत है। केवल जोहरा का प्रश्न विचारणीय है। जोहरा कथा के अंतिम भाग में आती है। प्रेमचंद की आदर्शनिष्ठा ने उपन्यास के अंत में उसे जो महत्व प्रदान किया है उससे चरित्र चित्रण का संतुलन नष्ट हो गया है। यदि उसे अनावश्यक पात्र न भी माना जाय, तब भी उसकी योजना में त्रुटि है। उपन्यास के अंत में उसकी डूबकर मृत्यु से अधिक आत्महत्या उसके स्थायी समाधान की अक्षमता का प्रमाण है। यह त्रुटि 'ग़बन' के पूर्ववर्ती उपन्यासों की

परम्परा में हैं। उपन्यास की पात्रसृष्टि में यही उल्लेख्य त्रुटि है, अन्यथा उस की कलात्मकता असंदिग्ध है।

'ग़बन' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है—

जालपा उपन्यास की नायिका है। उसकी आभूषण लालसा उसके वातावरण की देन है। बाल्यावस्था से ही वह आभूषणों की चर्चा और नारी के आभूषण प्रेम के उदाहरणों से परिचित होती रही। उसे खिलौने न देकर कृत्रिम आभूषणों से प्रसन्न किया जाता था, अतएव आश्चर्य नहीं कि यौवन में प्रवेश करने पर उसके लिए आभूषणों का आकर्षण सर्वाधिक था। उपन्यासकार ने उसके चरित्र पर वातावरण का प्रभाव-वर्णन करते हुए लिखा है 'जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना संसार की और किसी वस्तु से न था; और उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती, गहनों ही की चर्चा करती......... बालिका जब जरा और बड़ी हुई तो गुड़ियों के ब्याह करने लगी। लड़के की ओर से चढ़ावे जाते; दुलहिन को गहने पहनाती.........जरा और बड़ी हुई, तो बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर, गहने की बातें सुनने लगी। महिलाओं के उस छोटे से संसार में इसके सिवा और कोई चर्चा ही नहीं थी। किसने कौन-कौन गहने बनवाये, कितने दाम लगे, ठोस हैं या पोले, जड़ाऊ हैं या सादे, किस लड़की के विवाह में कितने गहने आये—इन्हीं महत्वपूर्ण विषयों पर नित्य आलोचना-प्रत्यालोचना, टीका-टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक, इतना ग्राहक हो ही न सकता था ....इस आभूषण मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण प्रेम स्वाभाविक ही था।' इसी वातावरण के प्रभाव से उसके संस्कार बने थे। आभूषण उसके व्यक्तित्व का अंश बन चुके थे। विवाह के चढ़ावे में चंद्रहार न आने पर उसे मर्मान्तिक वेदना हुई, माँ का चंद्रहार न मिलने पर उसके प्रति व्यवहार कटु हो गया और पति के प्रति तब तक उसका प्रेम परिपक्व न हुआ जब तक उसने जालपा की आभूषण-लालसा तृप्त न कर दी। उसकी पतिभक्ति भी आभूषणों के आने-जाने पर निर्भर थी। यह मालूम होते हुये भी कि रमानाथ उसके लिए उधार आभूषण लाता है, उसने कभी सच्चे मन से उसे रोका नहीं। पर जब ग़बन के सम्बन्ध में रमानाथ उसे छोड़ कर भाग गया, तब जालपा

के चरित्र में उन सब गुणों का उदय हुआ जो उसे व्यक्तित्व की विशिष्टता प्रदान करते हैं। समय के पूर्व ही उसने पति द्वारा उगाई रकम सरकारी दफ्तर में जमा कर दी और जिन आभूषणों के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई थी, उन्हें निर्धनता से पृथक कर दिया। एक साथ ही उसमें मनस्विता, आत्म विश्वास और स्वाभिमान का उदय होता है। इसी समय शतरंज के नक्शे द्वारा पति का पता लगा कर उसने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। कलकत्ता पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि रमानाथ झूठी गवाही देने के लिए 'सरकारी गवाह' बन गया है। उसकी दुर्बलता और कपटता से जालपा क्षुब्ध रह गई। पति के नैतिक पतन पर उसे असीम दुःख था। वह रमाकान्त के उद्धार के निमित्त पूरा प्रयत्न करती है। पति की दुर्बलता और स्वार्थलिप्सा देख कर उसने कठोर से कठोर शब्दों में उसकी भर्त्सना की थी—'तुम मनुष्य नहीं हो? कभी नहीं। तुम मनुष्य के रूप में राक्षस हो, राक्षस! तुम इतने नीच हो, कि उसको प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। तुम इतने नीच हो, कि आज कमीने-से-कमीना आदमी भी तुम्हारे ऊपर थूक रहा है। तुम्हें किसी ने पहले ही क्यों न मार डाला? इन आदमियों की जान तो जाती ही, पर तुम्हारा इतना पतन हुआ कैसे!......झूठी गवाही, झूठे मुकदमें बनाना और पाप का व्यापार करना ही तुम्हारे भाग्य में लिखा गया। जाओ, शौक से जिन्दगी के सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूं कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं। मैंने समझ लिया कि तुम मर गए। तुम समझ लो कि मैं मर गयी।' उसकी इस कड़ी फटकार के पीछे उसका हृदय रोता था। पति के अमानुषीय अविचार ने उसे व्यथित कर दिया था। पर मन के दुःख, क्षोभ, घृणा और तिरस्कार के अंदर उसकी प्रेमनिष्ठा जीवित थी। जालपा के हृदयस्थ प्रेम का द्वन्द्व उपन्यासकार के इन शब्दों में भलीभांति व्यक्त हुआ है—'रमा की इस घृणित कायरता और महान स्वार्थपरता ने जालपा के हृदय को मानों चीर डाला था। फिर भी उस प्रणय-बन्धन का निशान अभीं बना हुआ था। रमा की वह प्रेम-विह्वल मूर्ति, जिसे देखकर एक दिन वह गद्‌गद् हो जाती थी, कभी-कभी उसके हृदय में छाये हुए अँधेरे में क्षीण, मलीन, निरानन्द ज्योत्सना की भांति प्रवेश करती और एक क्षण के लिए वह स्मृतियाँ विलाप कर उठतीं।' अपनी मनोव्यथा का दुःस्सह भार झेलते हुए भी जालपा ने पति के पाप क

परम्परा में है। उपन्यास की पात्रसृष्टि में यही उल्लेख्य त्रुटि है, अन्यथा उस की कलात्मकता असंदिग्ध है।

'ग़बन' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है—

जालपा उपन्यास की नायिका है। उसकी आभूषण लालसा उसके वातावरण की देन है। बाल्यावस्था से ही वह आभूषणों की चर्चा और नारी के आभूषण प्रेम के उदाहरणों से परिचित होती रही। उसे खिलौने न देकर कृत्रिम आभूषणों से प्रसन्न किया जाता था, अतएव आश्चर्य नहीं कि यौवन में प्रवेश करने पर उसके लिए आभूषणों का आकर्षण सर्वाधिक था। उपन्यासकार ने उसके चरित्र पर वातावरण का प्रभाव-वर्णन करते हुए लिखा है 'जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना संसार की और किसी वस्तु से न था; और उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती, गहनों ही की चर्चा करती......... बालिका जब जरा और बड़ी हुई तो गुड़ियों के ब्याह करने लगी। लड़के की ओर से चढ़ावे जाते; दुलहिन को गहने पहनाती........जरा और बड़ी हुई, तो बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर, गहने की बातें सुनने लगी। महिलाओं के उस छोटे से संसार में इसके सिवा और कोई चर्चा ही नहीं थी। किसने कौन-कौन गहने बनवाये, कितने दाम लगे, ठोस हैं या पोले, जड़ाऊ हैं या सादे, किस लड़की के विवाह में कितने गहने आये—इन्हीं महत्वपूर्ण विषयों पर नित्य आलोचना-प्रत्यालोचना, टीका-टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक, इतना ग्राहक हो ही न सकता था ....इस आभूषण मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण प्रेम स्वाभाविक ही था।' इसी वातावरण के प्रभाव से उसके संस्कार बने थे। आभूषण उसके व्यक्तित्व का अंश बन चुके थे। विवाह के चढ़ावे में चंद्रहार न आने पर उसे मर्मान्तिक वेदना हुई, माँ का चंद्रहार न मिलने पर उसके प्रति व्यवहार कटु हो गया और पति के प्रति तब तक उसका प्रेम परिपक्व न हुआ जब तक उसने जालपा की आभूषण-लालसा तृप्त न कर दी। उसकी पतिभक्ति भी आभूषणों के आने-जाने पर निर्भर थी। यह मालूम होते हुये भी कि रमानाथ उसके लिए उधार आभूषण लाता है, उसने कभी सच्चे मन से उसे रोका नहीं। पर जब ग़बन के सम्बन्ध में रमानाथ उसे छोड़ कर भाग गया, तब जालपा

के चरित्र में उन सब गुणों का उदय हुआ जो उसे व्यक्तित्व की विशिष्टता प्रदान करते हैं। समय के पूर्व ही उसने पति द्वारा उगाई रकम सरकारी दफ्तर में जमा कर दी और जिन आभूषणों के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई थी, उन्हें निर्धनता से पृथक कर दिया। एक साथ ही उसमें मनस्विता, आत्म विश्वास और स्वाभिमान का उदय होता है। इसी समय शतरंज के नक्शे द्वारा पति का पता लगा कर उसने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। कलकत्ता पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि रमानाथ झूठी गवाही देने के लिए 'सरकारी गवाह' बन गया है। उसकी दुर्बलता और कपटता से जालपा क्षुब्ध रह गई। पति के नैतिक पतन पर उसे असीम दुःख था। वह रमाकान्त के उद्धार के निमित्त पूरा प्रयत्न करती है। पति की दुर्बलता और स्वार्थलिप्सा देख कर उसने कठोर से कठोर शब्दों में उसकी भर्त्सना की थी—'तुम मनुष्य नहीं हो? कभी नहीं। तुम मनुष्य के रूप में राक्षस हो, राक्षस! तुम इतने नीच हो, कि उसको प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं हैं। तुम इतने नीच हो, कि आज कमीने-से-कमीना आदमी भी तुम्हारे ऊपर थूक रहा है। तुम्हें किसी ने पहले ही क्यों न मार डाला? इन आदमियों की जान तो जाती ही, पर तुम्हारा इतना पतन हुआ कैसे!......झूठी गवाही, झूठे मुकदमें बनाना और पाप का व्यापार करना ही तुम्हारे भाग्य में लिखा गया। जाओ, शौक से जिन्दगी के सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूं कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं। मैंने समझ लिया कि तुम मर गए। तुम समझ लो कि मैं मर गयी।' उसकी इस कड़ी फटकार के पीछे उसका हृदय रोता था। पति के अमानुषीय अविचार ने उसे व्यथित कर दिया था। पर मन के दुःख, क्षोभ, घृणा और तिरस्कार के अंदर उसकी प्रेमनिष्ठा जीवित थी। जालपा के हृदयस्थ प्रेम का द्वन्द्व उपन्यासकार के इन शब्दों में भलीभांति व्यक्त हुआ है—'रमा की इस घृणित कायरता और महान स्वार्थपरता ने जालपा के हृदय को नानों चीर डाला था। फिर भी उस प्रणय-बन्धन का निशान अभीं बना हुआ था। रमा की वह प्रेम-विह्वल मूर्ति, जिसे देखकर एक दिन वह गद्‌गद् हो जाती थी, कभी-कभी उसके हृदय में छाये हुए अँधेरे में क्षीण, मलीन, निरानन्द ज्योत्सना की भांति प्रवेश करती और एक क्षण के लिए वह स्मृतियाँ विलाप कर उठतीं।' अपनी मनोव्यथा का दुःस्सह भार झेलते हुए भी जालपा ने पति के पाप का

प्रायश्चित करने के निमित्त सहिष्णुता, त्याग और सेवा का पथ अपनाया। पति के पतन में वह अपना दायित्व भी अनुभव करती थी और इसीलिए फाँसी के दण्डित दिनेश के अनाथ परिवार के पोषण द्वारा वह रमानाथ के पाप का प्रायश्चित कर रही थी। उसकी तपस्या फलीभूत हुई। रमानाथ के तम पर उसके सद् ने विजय पाई। पति के उद्धार में जालपा के चरित्र की की सब से बड़ी विजय दृष्टिगत होती है।

जालपा के पति रमानाथ का परिचय देते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—'दो साल से बिलकुल बेकार था। शतरंज खेलना, सैर-सपाटे करना और माँ और छोटे भाइयों पर रोब जमाना। दोस्तों की बदौलत शौक पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर माँग लिया और शाम को हवा खाने निकल गये। किसी का पंप-शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बाँध ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में। वाह्य प्रदर्शन की यह वृत्ति आगे चलकर मिथ्या प्रदर्शन का रूप धारण कर लेती है और इसी के निमित्त अपने अभावग्रस्त परिवार को सम्पन्न सिद्ध करने के प्रयत्न में वह अपनी पत्नी से झूठ बोलता है। घर की वास्तविक स्थिति छिपाने के लिए ही वह पत्नी के आभूषण चुराता है और तत्पश्चात् दफ्तर के रुपये गबन करता है। एक के उपरान्त दूसरे अपराध का भागी होते हुए उसकी नैतिकता दुर्बल होती जाती है। प्रवासकाल में अपने आश्रयदाता देवीदीन के साथ विश्वासघात करता है। कायस्थ होकर अपने को ब्राह्मण बताता है और उस सरल प्राणी की श्रद्धा अर्जन के निमित्त धार्मिक बनने का पाखण्ड रचता है। उसकी चरित्रगत दुर्बलता का नग्नरूप तब दृष्टिगत होता है जब पुलिस के चंगुल में फँस कर वह निरपराध व्यक्तियों के विरुद्ध, झूठी गवाही देता है। पद और धन का लोभ उसे द्रुतगति से पतन के गर्त में ढकेल रहा था। वह कञ्चन, कामिनी और कादम्ब के पाश में जकड़ जाता है। वस्तुतः उसमें परिस्थितियों से ऊपर उठने की क्षमता नहीं है। यदि उसकी पत्नी जालपा उसके उद्धार का बारम्बार प्रयत्न न करती तो अवश्य ही वह निरपराध प्राणियों की हत्या का दोषी बनता।

देवीदीन सरल, उदार और परोपकारी प्राणी है। रमानाथ को टिकट खरीदने की विपत्ति में पाकर अपने पास से रुपये देता है। यही नहीं, उसे

अपने घर आश्रय भी देता है। रमानाथ के अपराध का ज्ञान होने पर भी आतिथ्यधर्मी देवीदीन उसे आश्रयवंचित नहीं करता। इसमें चाहें लोकदृष्टि में वह चतुर न भी सिद्ध हो किन्तु उसका उदार मनुष्यत्व निस्संशय है। रमानाथ को पुलिस के जाल से बचाने के लिए अपना धन व्यय करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। उसके लिए पुलिस की कोपदृष्टि से भी भयभीत नहीं होता और जालपा को अपने घर में बहू की भांति रखता है। उसकी मनुष्यता पग-पग पर अपने दृढ़ चिन्ह छोड़ती जाती है। उसकी उदार उपकारवृति कुछ इने-गिने मनुष्यों तक ही सीमित नहीं हैं, वह देश के हित का भी ध्यान रखता है। कम मूल्य के विदेशी कपड़ों की अपेक्षा वह अधिक मूल्य के देशी कपड़े पहनना पसन्द करता है क्योंकि इससे देश का धन देश में ही रहता है। उसका देशप्रेम उत्कट है। उसने अपने बेटों के साथ स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया था जिसमें उसके पुत्र शहीद हो गए थे। उनकी गौरव-गाथा कहते समय उसने रमानाथ से कहा था—'जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न-जल खाते हैं; उसके लिए इतना भी न करें, तो जीने को धिक्कार है।' उसने देशभक्ति के नाम पर विलासभक्त व्यक्तियों की दुरंगी नीति का बड़ी निर्ममता से भण्डाफोड़ किया है। किसान को विदेशी शासन के हाथ की कठपुतली बनते देख कर उसे बड़ी विरक्ति होती है। पर रमा के प्रति उसका ममत्व स्थायी है रमानाथ के दोषमुक्त होने पर वह उसके साथ प्रयाग के समीप भूमि लेकर खेती-बारी करने लगा था।

रतन वृद्ध पति की युवती पत्नी है जिसमें पत्नीत्व का भारतीय आदर्श पूर्ण प्रतिफलित हुआ है। उसने जालपा से कहा था—'मुझे तो कभी यह ख्याल भी नहीं आया बहन, कि मैं युवती हूँ और वे बूढ़े हैं। मेरे हृदय में जितना प्रेम, जितना अनुराग है वह सब मैंने उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग यौवन या रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है।' वृद्धपति की मृत्यु शय्या के निकट बैठ कर उसने जालपा को लिखा था—'इस अँधेरे, निर्जन, काँटों से भरे हुए जीवन-मार्ग में केवल एक टिमटिमाता हुआ दीपक मिला था। मैं उसे अंचल में छिपाये, विधि को धन्यवाद देती हुई, गाती चली जाती थी; पर वह दीपक भी मुझसे छीना जा रहा है।' पति की मृत्यु के उपरान्त सम्बन्धियों के स्वार्थी व्यवहार से क्षुब्ध

प्रायश्चित करने के निमित्त सहिष्णुता, त्याग और सेवा का पथ अपनाया। पति के पतन में वह अपना दायित्व भी अनुभव करती थी और इसीलिए फाँसी के दण्डित दिनेश के अनाथ परिवार के पोषण द्वारा वह रमानाथ के पाप का प्रायश्चित कर रही थी। उसकी तपस्या फलीभूत हुई। रमानाथ के तम पर उसके सद् ने विजय पाई। पति के उद्धार में जालपा के चरित्र की की सब से बड़ी विजय दृष्टिगत होती है।

जालपा के पति रमानाथ का परिचय देते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—'दो साल से बिलकुल बेकार था। शतरंज खेलना, सैर-सपाटे करना और माँ और छोटे भाइयों पर रोब जमाना। दोस्तों की बदौलत शौक पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर माँग लिया और शाम को हवा खाने निकल गये। किसी का पंप-शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बाँध ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में। बाह्य प्रदर्शन की यह वृत्ति आगे चलकर मिथ्या प्रदर्शन का रूप धारण कर लेती है और इसी के निमित्त अपने अभावग्रस्त परिवार को सम्पन्न सिद्ध करने के प्रयत्न में वह अपनी पत्नी से झूठ बोलता है। घर की वास्तविक स्थिति छिपाने के लिए ही वह पत्नी के आभूषण चुराता है और तत्पश्चात् दफ्तर के रुपये गबन करता है। एक के उपरान्त दूसरे अपराध का भागी होते हुए उसकी नैतिकता दुर्बल होती जाती है। प्रवासकाल में अपने आश्रयदाता देवीदीन के साथ विश्वासघात करता है। कायस्थ होकर अपने को ब्राह्मण बताता है और उस सरल प्राणी की श्रद्धा अर्जन के निमित्त धार्मिक बनने का पाखण्ड रचता है। उसकी चरित्रगत दुर्बलता का नग्नरूप तब दृष्टिगत होता है जब पुलिस के चंगुल में फँस कर वह निरपराध व्यक्तियों के विरुद्ध, झूठी गवाही देता है। पद और धन का लोभ उसे द्रुतगति से पतन के गर्त में ढकेल रहा था। वह कञ्चन, कामिनी और कादम्ब के पाश में जकड़ जाता है। वस्तुतः उसमें परिस्थितियों से ऊपर उठने की क्षमता नहीं है। यदि उसकी पत्नी जालपा उसके उद्धार का बारम्बार प्रयत्न न करती तो अवश्य ही वह निरपराध प्राणियों की हत्या का दोषी बनता।

देवीदीन सरल, उदार और परोपकारी प्राणी है। रमानाथ को टिकट खरीदने की विपत्ति में पाकर अपने पास से रुपये देता है। यही नहीं, उसे

अपने घर आश्रय भी देता है। रमानाथ के अपराध का ज्ञान होने पर भी आतिथ्यधर्मी देवीदीन उसे आश्रयवंचित नहीं करता। इसमें चाहे लोकदृष्टि में वह चतुर न भी सिद्ध हो किन्तु उसका उदार मनुष्यत्व निसशंय है। रमानाथ को पुलिस के जाल से बचाने के लिए अपना धन व्यय करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। उसके लिए पुलिस की कोपदृष्टि से भी भयभीत नहीं होता और जालपा को अपने घर में बहू की भांति रखता है। उसकी मनुष्यता पग-पग पर अपने दृढ़ चिन्ह छोड़ती जाती है। उसकी उदार उपकारवृत्ति कुछ इने-गिने मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, वह देश के हित का भी ध्यान रखता है। कम मूल्य के विदेशी कपड़ों की अपेक्षा वह अधिक मूल्य के देशी कपड़े पहनना पसन्द करता है क्योंकि इससे देश का धन देश में ही रहता है। उसका देशप्रेम उत्कट है। उसने अपने बेटों के साथ स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया था जिसमें उसके पुत्र शहीद हो गए थे। उनकी गौरव-गाथा कहते समय उसने रमानाथ से कहा था—'जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न-जल खाते हैं; उसके लिए इतना भी न करें, तो जीने को धिक्कार है।' उसने देशभक्ति के नाम पर विलासभक्त व्यक्तियों की दुरंगी नीति का बड़ी निर्ममता से भण्डाफोड़ किया है। किसान को विदेशी शासन के हाथ की कठपुतली बनते देख कर उसे बड़ी विरक्ति होती है। पर रमा के प्रति उसका ममत्व स्थायी है रमानाथ के दोषमुक्त होने पर वह उसके साथ प्रयाग के समीप भूमि लेकर खेती-बारी करने लगा था।

रतन वृद्ध पति की युवती पत्नी है जिसमें पत्नीत्व का भारतीय आदर्श पूर्ण प्रतिफलित हुआ है। उसने जालपा से कहा था—'मुझे तो कभी यह ख्याल भी नहीं आया बहन, कि मैं युवती हूँ और वे बूढ़े हैं। मेरे हृदय में जितना प्रेम, जितना अनुराग है वह सब मैंने उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग यौवन या रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है।' वृद्धपति की मृत्यु शय्या के निकट बैठ कर उसने जालपा को लिखा था—'इस अँधेरे, निर्जन, काँटों से भरे हुए जीवन-मार्ग में केवल एक टिमटिमाता हुआ दीपक मिला था। मैं उसे अंचल में छिपाये, विधि को धन्यवाद देती हुई, गाती चली जाती थी; पर वह दीपक भी मुझसे छीना जा रहा है।' पति की मृत्यु के उपरान्त सम्बन्धियों के स्वार्थी व्यवहार से क्षुब्ध

होकर वह जालपा के साथ रहने लगी। पर उसके लिए जीवन आकर्षण-विहीन था। पतिता जोहरा के प्रति उदारता और सहानुभूति का निर्वाह करते हुए वह अपने भाग्य-विपर्यय की सीमा लाँघ गई।

जोहरा रमानाथ का मन बहलाने के लिए पुलिस द्वारा नियुक्त की गई थी। 'उसने देखा, जिस प्राणी को जंजीरों से जकड़ने के लिए वह भेजी गई है, वह खुद दर्द से तड़प रहा है; उसे मरहम की जरूरत है, जंजीरों की नहीं। वह सहारे का हाथ चाहता है, धक्के का झोंका नहीं।' साथ ही उस पर जालपा के त्याग, सत्यनिष्ठा और पतिपरायणता का अमिट प्रभाव पड़ा। वेश्या-जीवन से विरत हो उसने आत्मशुद्धि का पथ ग्रहण किया। पतिता नारी के चरित्र-परिमार्जन में उसके जीवन का विगत-विधान विलुप्त सा हो गया। रतन की रुग्णावस्था में उसने उसकी सेवा-परिचर्या में कोई कसर न की। उसकी मृत्यु के उपरान्त जोहरा अधिक दिन जीवित न रही। परोपकार के प्रयत्न में उसके जीवन का अवसान हो गया। जोहरा का चरित्र, पंक में पंकज है जिसके प्रारम्भ और अन्त में बड़ा पार्थक्य है।

समाज

'गबन' मध्यवर्गीय समाज का चित्रण करता है। इसमें प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों की भाँति सामाजिक-समस्या की प्रधानता नहीं है। इस उपन्यास में समाज की अपेक्षा व्यक्ति की समस्या प्रमुख है। मध्यवर्ग की अभावग्रस्त आर्थिक स्थिति की पृष्ठभूमि पर रमानाथ का मिथ्या प्रदर्शन और जालपा का आभूषण प्रेम सुस्पष्ट रेखाओं में अंकित किया गया है। पर व्यक्ति की समस्या अंकित करते समय उपन्यासकार उसके समाज-व्यापी प्रभाव पर भी ध्यान रखता है। जालपा के आभूषण-प्रेम से उत्पन्न परिस्थितियों के चित्रण के साथ ही वह आभूषणों के समाजव्यापी रोग को लक्ष्य करके लिखता है—'बुरा मरज है, बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए, बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध, न मिले, न सही। घी की गंध तक उनकी नाक में न पहुँचे, न सही। मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों, कोई परवाह नहीं। पर देवी जी गहने जरूर पहनेंगी और स्वामी जी गहने जरूर बनवायेंगे। दस-दस, बीस-बीस रुपये पानेवाले क्लर्कों को देखता हूँ, जो सड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भाँति

जीवन काटते हैं, जिन्हें सवेरे का जलपान तक मयस्सर नहीं होता; उन पर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश होता जा रहा है। मैं तो कहता हूँ, यह गुलामी पराधीनता से कहीं बढ़कर है। इसके कारण हमारा कितना आत्मिक, नैतिक, दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है, इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।' विशेषरूप से एक दरिद्र देश के निवासियों का गहनों के पीछे पागल रहना आत्मघात है। रमानाथ-जालपा के निम्नमध्यवर्गीय परिवार को गहनों के कारण अनेक विपत्तियाँ उठानी पड़ीं। देवीदीन ने भी आभूषणों के लिए सरकारी रुपयों की चोरी की थी जिसके फलस्वरूप उसे तीन वर्ष का कारावास दण्ड मिला था। इससे उपन्यासकार का मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है कि आभूषणों का रोग व्यक्तिगत होते हुए भी समाजव्यापी है। इसी प्रकार मिथ्या-प्रदर्शन रमानाथ की व्यक्तिगत समस्या होते हुए भी मध्यवर्ग की सामान्य प्रवृत्ति भी है। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि 'गबन' की समस्या मुख्यतः व्यक्ति की समस्या है, किन्तु उपन्यसकार उसका लोकव्यापी विस्तार विस्मृत नहीं करता।

'गबन' में नारी की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर भी दृष्टिपात किया गया है। रतन के चरित्र द्वारा उपन्यासकार ने इस समस्या का चित्रण किया है। उसके पति की मृत्यु के बाद उसका भतीजा सम्पत्ति पर अधिकार कर रतन को ठेंगा दिखाता है। रतन की दयनीय स्थिति समस्त भारतीय नारी की परवशता की ओर संकेत करती है। सम्मिलित परिवार-प्रथा में पति के जीवन काल तक स्त्री की स्थिति प्रायः सुरक्षित रहती है। पति की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्थिति डाँवाडोल हो जाती है। उसे दूसरों की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि 'सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता।' इस अन्यायी नियम की चोट खाकर रतन सोचती है—'मगर ऐसा कानून बनाया किसने? क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है?' तिरस्कृत-अपमानित रतन का हृदय इस प्रथा के प्रति विद्रोह कर उठता है! यह विवादास्पद हो सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों में सम्मिलित कुटुम्ब के प्रति उपन्यासकार का दृष्टिकोण रतन द्वारा व्यक्त हुआ है या नहीं, पर यह निर्विवाद है कि वह नारी को किसी भी परिवार में आदर और सम्मान के पद पर देखना चाहता है। रतन के साथ

साथ उसका हृदय भी उस नियम का तिरस्कार करता है जो पति की मृत्यु के उपरान्त विधवा नारी को एकदम असहायावस्था में डाल देता है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने भारतीय पुलिस-विभाग की कार्य-प्रणाली का बड़ी निर्भयता से पर्दाफ़ाश किया था। उन्होंने विस्तार के साथ चित्रित किया है कि विदेशी स्वार्थों की रक्षा के लिए किस प्रकार भारतीय पुलिस झूठे मुक़दमें खड़े करती है, झूठे गवाह एकत्र करती है और किस प्रकार आतंक द्वारा मिथ्या न्याय का पाखण्ड रचती है। निरीह व्यक्तियों को आतंकित करके अपने संकेतों पर नचाने में यह अत्यधिक कुशल है। रमानाथ के साथ पुलिस का व्यवहार अंकित करके प्रेमचंद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस पर व्यक्ति के नैतिक पतन का दायित्व भी कम नहीं है। 'गबन' में पुलिस-विभाग की कार्यवाहियों के चित्रण के अन्तर्गत उसकी तीव्र आलोचना प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने विदेशी शासन-यंत्र की कुरूपता को अनावृत किया।

इसी प्रकार 'गबन' में उपन्यासकार ने उन नेताओं की आलोचना की है, जो देश के हित से अधिक व्यक्तिगत हित साधन में लगे रहते हैं। इनका देश प्रेम मौखिक-मात्र है। दिखाने के लिए तो यह देश की अधोगति का रोना रोते हैं, पर इन की विलास-लीला अबाध गति से चला करती है। इन्हें देश के सुख-दुख से सच्चा सम्बन्ध नहीं है। इसी को लक्ष्य करके उपन्यासकार ने देवीदीन के शब्दों में अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है—'इन बड़े-बड़े आदमियों के लिए कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है, छोकरियों की भाँति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बड़े-बड़े देश भगतों को बिना बिलायती शराब के चैन नहीं आती। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देशी चीज न मिलेगी। देखने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिये, घर का और सब सामान विलायती है। सब-के-सब भोग-विलास में अन्धे हो रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना तुहारा काम है ...... अभी तुम्हारा राज नहीं है तब तो भोग-विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जायगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी

जाओगे।' प्रेमचंद समसामयिक नेता-वर्ग की वास्तविकता को भली भाँति समझने लगे थे। उनका यह निष्कर्ष भी आधारहीन न था कि भोग-विलास पर प्राण देने वाले नेता गरीबों का राज्य स्थापित करेंगे। सामयिक नेता-वर्ग की वास्तविकता को जानते हुए भी उपन्यासकार का दृढ़ विश्वास था कि 'आगे चलकर बहुमत किसानों और मजदूरों ही का हो जायगा' और देश की 'कुञ्जी बहुमत के हाथों में रहेगी।'

शोषण का प्रतिकार प्रेमचंद की आत्मा का स्वर है। यह स्वर उनकी प्रायः समस्त कृतियों में गूंजता रहता है। 'गबन' में उन्होंने धर्म के आवरण में छिपे शोषण के नख-दन्तों को प्रकट किया है। उनका यह निष्कर्ष है कि जो जितना ही निर्दय है, वह उतना ही दया-धर्म के व्यावहारिक पूजा-पाठ और दान-व्रतादि का पालन करता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'गबन' के सेठ करोड़ीमल का दृष्टांत प्रस्तुत किया है। उसकी निर्दयता देवीदीन के शब्दों में मूर्तिमान हो जाती है। देवीदीन ने उसके विषय में कहा था—'उसे पापी कहना चाहिए, महापापी ! दया तो उसके पास होकर भी नहीं निकली। उसकी जूट की मिल है। मजूरों के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल में होती है, और कहीं नहीं होती। आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से ! चरबी मिलो घी वेचकर इसने लाखों कमा लिए। कोई नौकर एक मिनट भी देर करे तो तुरन्त तलब काट लेता है। अगर साल में दो-चार हजार दान न दे तो पाप का धन पचे कैसे ?' करोड़ीमल का दान विशुद्ध दान नहीं है, यह पाप की सम्पत्ति पर सदाशयता का आवरण है। वस्तुतः जिसकी प्रवृत्ति शोषण है, वह सच्चे अर्थ में दया-धर्म का पालन नहीं कर सकता। उसका दान प्रदर्शन है, जिसकी ओट में वह शोषण का चक्र चलाया करता है।

उद्देश्य

'गबन' में प्रेमचंद ने मध्यवर्गीय समाज की पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की समस्यायें प्रस्तुत की हैं। व्यक्ति की समस्या—रमानाथ का मिथ्या-प्रदर्शन और जालपा का आभूषण प्रेम—उपन्यास का अभिप्रेत है, पर समाज को निरंतर प्रभावित करनेवाली कुछ सामाजिक समस्याओं पर भी उपन्यासकार ने दृष्टिपात किया है। 'गबन' में समस्याएँ कथा द्वारा

प्रस्तुत की गई है, वे कहानी से पृथक् नहीं हैं; इसी लिए उपन्यास की कलात्मकता अक्षुण्ण है। कहा गया है कि 'गबन' समस्या का कलात्मक चित्रण करता है, समाधान नहीं प्रस्तुत करता। पर इस उपन्यास में भी प्रेमचंद की समाधान देने की प्रवृत्ति सांकेतिक रूप में वर्तमान है। उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद में जिस सरल संतोषमय जीवन का चित्रण किया गया है, वह सांकेतिक रूप से अभावग्रस्त जीवन में मिथ्या-प्रदर्शन आदि व्यक्तिगत दुर्बलताओं से उत्पन्न जटिल समस्याओं का प्रेमचंदीय समाधान भी प्रस्तुत करता है।

१०

कर्म-भूमि

'कर्मभूमि' (१६३२) में प्रेमचंद ने बड़े व्यापकत्व के साथ उन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया है जो पग-पग पर भारतीय समाज और जीवन को प्रभावित कर रहीं थीं। प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण को लोकव्यापी आंदोलनों के संस्पर्श से यथेष्ठ बल मिला है। यह आंदोलन तत्कालीन परिस्थितियों में नगर व ग्राम की नव-जागृति के चित्रांकन के साथ ही विदेशी शासन की दमन-निर्भर व्यवस्था का परिचय कराते हैं। उपन्यासकार ने आंदोलनों का राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक आधार बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ही नहीं, कला की दृष्टि से भी 'कर्मभूमि' प्रेमचंद की विशिष्ट रचना है। इसमें चरित्र-चित्रण और कथावस्तु में बड़ी सफलता से सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है।

वस्तु

समरकांत काशी के सबसे बड़े साहूकार हैं। उनके पुत्र का नाम अमरकांत और पुत्री का नैना। अमरकांत का विवाह लखनऊ के एक धनी परिवार में हुआ था। उसकी पत्नी सुखदा भोग-विलास की जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु समझती है। अमर के सेवा-त्यागनिष्ठ विचारों से सुखदा की सहानुभूति नहीं थी। अतएव पति-पत्नी में कोई सामञ्जस्य न था। पत्नी के अतिरिक्त अपने वासनामय पिता से भी अमरकांत का स्नेह-सम्बन्ध न था। लाला समरकांत धन को सर्वोपरि समझते हैं और पुत्र की सदाशयता का तिरस्कार करते हैं।। अतएव पिता-पुत्र में पटती न थी।

मैट्रिक की परीक्षा पास करके अमरकांत व्यवसायियों के यहाँ पत्र-व्यवहार

का काम करने लगा। पिता की स्वार्थबुद्धि और धर्मलिप्सा के कारण वह उनसे किसी प्रकार की सहायता नहीं लेना चाहता था। लाला समरकांत और सुखदा को अमर का दूसरों के यहाँ नौकरी करना सह्य न था। उनकी इच्छा थी कि अमरकांत घर के व्यवसाय को सँभाले किंतु उसे सूद—ब्याज के महाजनी व्यवसाय से घृणा थी। सुखदा के आग्रह पर उसने पत्र-व्यवहार का काम छोड़ दिया, किंतु अपने व्यय के लिए कृपण पिता से रु० लेने को प्रस्तुत न हुआ। इसी मध्य इसकी सास रेणुका देवी काशीवास के निमित्त आई। उन्हें यह जानकर दुःख हुआ कि उनकी पुत्री और दमाद में अब भी नहीं पटती। पर सुखदा के सन्तान होने के समाचार से उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उनके स्नेह प्रयत्नों से अमर सुखदा के प्रति उदासीन न रहा और उसकी विलासप्रियता से उतना भयभीत भी न होता था।

अमरकांत और उसका मित्र सलीम डा० शान्तिकुमार के साथ गावों की आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त करने गये। गाँवों की दुरावस्था देखकर वे लौट रहे थे कि रास्ते में उन्होंने तीन गोरों को एक युवती पर बलात्कार करते देखा। दो गोरों को सलीम ने अपनी हाकी स्टिक से घायल कर दिया। तीसरे ने शान्तिकुमार पर गोली चला दी। गोली उनकी जांघ में लगी और वह घायल हो गए। इसी मध्य गाँववालों ने तीसरे गोरे पर आक्रमण कर उसे भी धराशायी कर दिया। जिस स्त्री पर बलात्कार किया गया था वह लज्जा-वश वहाँ से चली गई। एक बैलगाड़ी पर शान्तिकुमार और घायल गोरों को लादकर छात्र मण्डली वापस लौटी। गोरों को पुलिस के हवाले कर दिया गया। डा० शान्तिकुमार एक महीने अस्पताल में रहकर अच्छे हो गए।

इस घटना ने अमर के अन्तर्मन को मथ डाला। देश की पराधीनता के कारण ही देशवासियों के साथ विदेशी इस प्रकार के अमानुषीय व्यवहार करने का साहस करते थे। उसने एक सभा में इतना आवेशमय भाषण दिया कि पुलिस ने लाला समरकांत को चेतावनी दे डाली। समरकांत ने अपने दिल का गुबार सुखदा पर निकाला। सुखदा को देश की पराधीनता प्रिय न थी किन्तु वह अपने पति पर आँच न आने देना चाहती थी। उसने अमर से सभाओं में सम्मिलित होने की वर्जना की। अमर गर्भवती पत्नी को चिंताग्रस्त नहीं करना चाहता था। अतएव उसने सभाओं में सम्मिलित

होना छोड़ दिया। सुखदा को तुष्ट रखने के निमित्त वह कभी-कभी दुकान पर भी बैठने लगा।

उसकी दुकान पर एक दिन दो गोरे और एक मेम सोने की जंजीर बेचने आए। वे जब लौट रहे थे तब एक भिखारिणी ने छुरी के प्रहार से दो गोरों को धाराशायी कर दिया। भिखारिणी पकड़ ली गई। उसने अपराध स्वीकार कर लिया। वह मुन्नी नाम की वही युवती थी जिस पर गोरों ने बलात्कार किया था। गोरों की हत्या द्वारा उसने प्रतिशोध लिया था। इस बयान से जन-मनोवृत्ति उसके पक्ष में हो गई। रेणुका ने मुन्नी के मुकदमे की पैरवी का भार लिया। इसमें शान्तिकुमार, अमर, सुखदा आदि का सहयोग भी प्राप्त था। मुन्नी को मानसिक दशा की अस्थिरता में हत्या करने के कारण मुक्त कर दिया गया। उसका पति उसे लेने आया, किंतु मुन्नी उसको अपना कलङ्कित मुख न दिखाना चाहती थी। वह नगर छोड़ कर चली गई।

इसी मध्य सुखदा ने पुत्र-प्रसव किया, किंतु अमर का ध्यान दूसरी ओर था। उसे सुखदा से सच्चा प्रेम न प्राप्त हुआ था। फलतः वह सकीना नामक मुसलमान लड़की की ओर आकृष्ट हुआ। सुखदा की स्वतन्त्रता और प्रगल्भता के विपरीत सकीना का समर्पण भाव उसकी पुरुष भावना को तुष्ट करता था। सुखदा से विरक्त होने पर वह सकीना के पास पहुंच जाता था। सकीना की दादी पठानिन को अमर पर सन्देह हो गया और उसने अमर को बुरी तरह फटकारा। अमर पर जैसे वज्रपात हो गया। सलीम और समरकांत के समझाने पर भी उसने घर लौटने से इन्कार कर दिया। वह कहीं अन्यत्र जाकर अपना नवीन जीवन प्रारम्भ करना चाहता था। वह हरिद्वार के निकट चमारों के एक गाँव में जा पहुँचा। उसके उद्योग से गाँव का जीवन समुन्नत हुआ और दुर्व्यसनों से ग्रामीणों को निवृत्ति मिली।

अमरकांत के प्रस्थान के उपरांत सुखदा को उसके नाम से चिढ़ हो गई, पर उसे सकीना से लेशमात्र भी द्वेष न था। सकीना की निष्कपटता का उस पर प्रभाव पड़ा। सकीना का विचार था कि अमर पर रूप-रंग की अपेक्षा सेवा और प्रेम का प्रभाव अधिक पड़ता है। सेवा द्वारा ही सुखदा उसे पा सकती है। पर सुखदा अमर के प्रस्थान को विश्वासघात समझती है। वह विश्वासघातक की खुशामद नहीं करना चाहती, किंतु उसने नैना से यह

स्वीकार किया कि उसने न कभी प्रेम किया, न प्रेम पाया। वह हास-परिहास रूप-रंग और यौवन के प्रदर्शन को ही अपने कर्तव्य का अन्त समझ बैठी थी। उसे अपनी त्रुटियाँ ज्ञात हुई।

ठाकुरद्वारे में अन्त्यजों के प्रवेश की समस्या नगर में उठ खड़ी हुई थी। समरकांत और मन्दिर के कट्टर पंडा—पुजारी अछूतों के मन्दिर—प्रवेश के विरुद्ध थे। ठाकुरद्वारे के ब्रह्मचारी जी ने एक दिन अछूतों को पीट डाला शांतिकुमार ने इस अत्याचार का विरोध किया और अन्त्यजों के मन्दिर-प्रवेश की मांग की। उन्होंने अछूतों का नेतृत्व किया। पंडा पुजारियों ने अन्त्यजों पर लाठियाँ चलानी प्रारम्भ की। शांतिकुमार घायल हो गए। इसी सम्बंध में पुलिस को गोली चलानी पड़ी। सुखदा को धर्म-रक्षा के लिये रक्तपात पर विश्वास न था। उसने अछूतों का नेतृत्व किया और गोलियों के सम्मुख डट गई। अधिकारियों का आसन डोल गया। मन्दिर के द्वार सबके लिये खुल गए। इस विजय का श्रेय सुखदा को था। उसके जीवन में परिवर्तन हुआ। भोग विलास पर प्राण देने वाली नारी सेवा और दया की मूर्ति बन गई। उसे जैसे आत्मा मिल गई हो। वह नगर-नेत्री बन गई। नगर की सार्वजनिक संस्थाएँ उसके सहयोग से सक्रिय हो उठीं।

डाक्टर शांतिप्रसाद को चोटों के कारण छः महीने तक शय्या सेवन करना पड़ा। धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो गए। सुखदा और शांतिकुमार दिन-प्रतिदिन सुधार कार्य अग्रसर करने लगे। निर्धन व्यक्तियों के लिये मकानों की समस्या हल करने का कार्यक्रम बना। पर म्यूनिसिपैलिटी भूमि देने के लिये प्रस्तुत न थी। शांतिकुमार कुछ दिनों तक प्रचार द्वारा कार्य अग्रसर करना चाहते थे। सुखदा को यह पसंद न था। उसने नगर में हड़ताल करवा दी। उसके नाम वारण्ट निकल गया। उसे तनिक भी खेद नहीं; रंचमात्र भी भय नहीं। आंदोलन की सफलता का उसे पूरा विश्वास था। उसने जमा-नत न दी अपितु जेल जाना पसंद किया। अब सेवा क्षेत्र में वह अपने पति की अनुगामिनी थी। उसने सच्चे अर्थ में जीवन-धन को पाया था। उसका प्रथम बार पति से अंतिम सामञ्जस्य हुआ।

सलीम ने सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर ली थी और उसकी नियुक्ति उस इलाके में हुई जहाँ अमरकांत था। वह जब अपने हल्के में

पहुँचा, तब अमरकांत से भेंट हुई। वार्तालाप में सकीना का उल्लेख हुआ। इन दिनों सलीम सकीना की ओर आकृष्ट हो रहा था। अतएव उसने अमर से पूँछा कि यदि वह सकीना से विवाह करने में सफल हो सके, तब अमर को बुरा तो न लगेगा। अमर सुखदा के विलासी रूप से उदासीन होकर सकीना की ओर झुका था। पर अब सुखदा के त्याग और सेवामय जीवन के प्रति उसका अनुराग बढ़ता जाता था। सलीम की बात का बुरा लगना तो दूर रहा अपितु वह कहता है कि यदि सलीम सकीना को विवाह के लिये राजी कर सके तो भाग्यशाली है।

इस इलाके के जमींदार एक महन्त थे। उनके यहाँ धर्म के नाम पर शोषण और अपव्यय होता था। किसानों की दशा बहुत गिरी हुई थी। मंदी के कारण वे अपना लगान पूरा न अदा कर सके। लगान-वसूली के सम्बंध में हाहाकार मच गया। किसान आंदोलन के फलस्वरूप लगान-वसूली दुश्कर हो गई। अधिकारियों ने किसानों के नेता अमरकांत को बन्दी करने का निश्चय किया। यह कार्य सलीम को सौंपा गया। सलीम को अपनी इच्छा के विरुद्ध अमर को बन्दी करना पड़ा। पर दोनों की मित्रता में कर्त्तव्यपालन ने मालिन्य नहीं पैदा किया।

उधर पुलिस के अत्याचार बढ़ने लगे। सारे इलाके पर घेरा डाल दिया गया था। अमर गिरफ्तारी का समाचार पाकर लाला समरकांत वहाँ पहुँच गये थे। उनके समझाने पर सलीम ने स्वयं आसामियों की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए दौरा करके रिपोर्ट तैयार करना स्वीकार किया। उसने जाँच प्रारम्भ की तो पता चला कि कृषकों की दशा अत्याधिक गिरी हुई है। परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान होते ही सलीम ने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। वह स्वार्थ के लिए अफसरों की प्रत्येक आज्ञा का पालन नहीं कर सकता था। उसने सच्ची रिपोर्ट तैयार करके भेज दी। उसे एक सप्ताह के अन्दर नौकरी से पृथक् कर दिया गया। सरकार की दृष्टि में वह विद्रोही हो गया था। परिस्थितियों ने उसे आंदोलन का नेता बना दिया। जानवरों की कुर्की के प्रश्न पर सलीम की सरकारी अफसर से कहा-सुनी हो गई। अफसर ने उस पर हण्टर चला दिया। सलीम ने घूँसे से उत्तर दिया। अफसर अचेत हो गया और सलीम को पुलिस ने बंदी कर लिया।

नगर में भूमि-सम्बन्धी आन्दोलन चरम सीमा पर पहुँच गया।

निर्धन प्राणियों की गृह-योजना के निमित्त भूमि देने को म्युनिसिपैलिटी अब भी प्रस्तुत नहीं थी। विरोधी भाषण देने और हड़ताल कराने के प्रयत्न में शांतिकुमार आदि कई व्यक्ति बंदी हुये। नेताओं के बंदी होने पर उमड़ते जन-समूह का नेतृत्व नैना ने सँभाला। वह जुलूस के साथ म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। नैना और उसके पति मनीराम में मनोमालिन्य था। उसने नैना को जुलूस का साथ छोड़ने को कहा। नैना के इन्कार करने पर वह गोली मारकर भाग गया। नैना का शव लिये जुलूस बोर्ड की ओर बढ़ चला। म्युनिसिपल बोर्ड पर इस बलिदान का प्रभाव पड़ा और उसने भूमि देना निश्चित किया। सुखदा ने जिस आंदोलन को उठाया था, नैना ने प्राण देकर उसे सफल बनाया।

लगान-आन्दोलन के सम्बन्ध में सकीना भी बंदी बनकर जेल पहुँची। इधर वह जेल में आई, उधर सुखदा आदि को छोड़ देने की आज्ञा आ गई थी। नैना की हत्या के समाचार से सबको दुःख हुआ। सलीम और अमरकांत की जेल में सबसे भेंट हुई। अमरकान्त ने सुखदा से पूर्व आचरण के लिए क्षमा माँगी। सुखदा को भी कम गर्व और आनंद न था। उसने पुरुष के प्रेम में अपने नारित्व को पाया था। इसी समय गवर्नर की आज्ञा सुनाई गई जिसके अनुसार समस्त बन्दी मुक्त कर दिये गए और एक कमेटी बनाने का निश्चय किया गया। अमर ने यह समझौता स्वीकार कर लिया। उसे इसके द्वारा किसानों के प्रति न्याय होने की आशा थी। सब व्यक्ति जेल से बाहर निकले। अमरकांत की अपने पिता से भेंट हुई। पुत्र और पिता का मनोमालिन्य दूर हो गया था। सलीम के पिता भी इस अवसर पर आए। उन्होंने सलीम तथा सकीना की जोड़ी पसंद की। सब व्यक्तियों ने हरिद्वार के निकटस्थ उस गाँव में जाने का निश्चय किया जो आंदोलन-केन्द्र रह चुका था।

वस्तु

'कर्मभूमि' पाँच भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में कथा का प्रारंभ होती है। घटनाएँ विकास प्राप्त कर फैलने लगती हैं। दूसरे भाग में उनका विकास होता है और तीसरे भाग के, अंत तक वस्तु चरम-सीमा पर पहुँच जाती है। चौथे भाग में कथागत संघर्ष शमन की ओर बढ़ता है। पाँचवें

भाग में घटना-प्रवाह समतल होकर अंत प्राप्त करता है। यहाँ पर उल्लेख पिष्टपेषण ही होगा कि उपन्यास का वस्तु-विकास और अंत स्वाभाविक एवं कलात्मक है।

उपन्यास की मुख्य कथा अमर-सुखदा की कहानी है। मुख्य कथा के पूर्णत्व के निमित्त कुछ गौण कथाएँ उससे सम्बद्ध की गई हैं। उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से गौण कथाओं को मुख्य कथा से अनुस्यूत कर उनकी पृथक् सत्ता का अंत कर दिया है और कथा-विकास के स्वाभाविक क्रम के अन्तर्गत उनकी समुचित योजना हो गई। केवल मुन्नी की प्रसङ्ग-कथा आधिकारिक-कथा से सुदृढ़ सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाई। यद्यपि अमर के द्वारा आरम्भ से अंत तक उसका सम्बंध बना रहता है तथापि मुख्य कथा में उसका पूर्ण विलय नहीं हो पाया है और उसकी पृथक् प्रतीति बनी रहती है।

'कर्मभूमि' की सङ्गठन-कुशलता उल्लेख्य है। 'गोदान' में जिस प्रकार नगर और ग्राम की कथाएँ पृथक्-पृथक् ज्ञात होती है, वैसी 'कर्मभूमि' में नहीं। नगर और ग्राम की कथाओं को एक सूत्र में बाँधने के लिए उपन्यासकार ने प्रमुख और गौण चरित्रों से सहायता ली है। अमरकान्त सलीम, समरकान्त और मुन्नी के द्वारा दोनों कथाओं को अनुस्यूत किया गया है। कथा-विधान की शृङ्खलाएँ एक दूसरे से यथेष्ठ दृढ़तापूर्वक सम्बद्ध है। इसीलिये कथानक में शिथिलता नहीं है और उसका सङ्गठन सफल है।

पात्र

'कर्मभूमि' में उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के अनेक पात्र आये हैं। वर्ग-विभाजन के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, चरित्रों को तीन भाग में बाँटा जा सकता है—शोषक, शोषित और सुधारक। शोषक वर्ग के पात्रों में समरकांत और धनीराम मुख्य हैं। महंत आशारामगिरि की गणना भी शोषक पात्रों में की जानी चाहिए। शोषित वर्ग में नगर के निर्धन प्राणी और गाँव के किसान हैं। सुधारक वर्ग में शांतिकुमार, सुखदा और अमर उल्लेख्य हैं। आत्मानंद की उग्र नीति के कारण वह सुधारक से अधिक विद्रोही कहा जायगा। वैसे तो सुखदा और अमरकांत में विद्रोहात्मक भाव वर्तमान है किंतु मूलतः वे सुधारवादी पात्र हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'कर्मभूमि' प्रेमचंद के श्रेष्ठ उपन्यासों में परिगणेय है। इसके कई पात्रों का चरित्रांकन कलात्मक हुआ है। यद्यपि अमरकांत का ढाँचा आदर्शवादी है तथापि वह उपन्यासकार के अन्य आदर्शवादी पात्रों की अपेक्षा अधिक सजीव है। उसके चरित्र का निर्माण उसकी परिस्थितियों का परिणाम है। उसका धन-द्वेष तो निश्चय ही उसके पितृ-द्वेष के कारण है। उसकी मानवीय दुर्बलताएँ भी उसे स्वाभाविक और सजीव बनाए रखती हैं। उसके जीवन-संघर्ष के साथ ही यदि उसके मानसिक द्वन्द्व को पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती तो उसका चरित्र निश्चय ही प्रभावविशिष्ट बन पड़ता। समरकांत के चरित्र धन और पुत्र प्रेम का द्वन्द्व दृष्टव्य है यद्यपि इसे भी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त है। सजीवता और स्वाभाविकता की दृष्टि से सलीम का चरित्र उल्लेख्य है। गौण पात्रों में भी पठानिन, सलोनी आदि के चरित्र अच्छे बन पड़े हैं। कालेखाँ को अवश्य प्रेमचंद की आदर्शवादिता ने ले डाला। अन्यथा उसका प्रारम्भ बड़ा सजीव हुआ था।

'कर्मभूमि' में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का चरित्रांकन अधिक प्रभावात्मक है। स्त्री-पात्रों की संख्या भी कम नहीं है और उनमें सबलता एवं सजीवता भी अधिक है। कर्मक्षेत्र में भी नारी पात्र पुरुष-पात्रों से बाजी मार ले जाते हैं। सुखदा के चरित्र में अमर की अपेक्षा तेजस्विता है। उसकी सगर्व और सशक्त मनोवृत्तियों का चित्रण अच्छा हुआ है। उपन्यासकार ने उसकी चरित्रगत प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सफलतापूर्वक किया है। सुखदा के अतिरिक्त पठानिन, सलोनी, नैना, रेणुका आदि स्त्री पात्रों का चरित्रांकन सजीव हुआ है।

'कर्मभूमि' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है:—

अमरकांत के चरित्र का निर्माण अभाव और दुर्व्यहार की परिस्थितियों में हुआ था। अभाव आर्थिक न था, स्नेह का था। बचपन में माँ मर गई; पिता ने स्नेह के बदले तिरस्कार दिया और विमाता ने अपने दुर्व्यहार से रही-सही कमी पूरी कर दी। पिता और पुत्र का पारस्परिक मालिन्य सैद्धाँतिक विरोध के रूप में प्रकट हुआ। अमर के धन-द्वेष के मूल में उसका पितृ-द्वेष था। कभी-कभी बुराई से अच्छाई भी निकल आती है। अमर के सम्बंध में यही हुआ। उसका पितृ द्वेष धन-द्वेष तक ही सीमित न रहा, अपितु

धन और प्रभुता से उत्पन्न समस्त अन्याय और अनीति का प्रतिकार कर उसके मन की कटुता को एक सामाजिक आधार मिल गया जिससे उसके जीवन को एक निश्चित दिशा मिली। सामाजिक विषमता और अविचार से पीड़ित समस्त प्राणियों के उद्धार के निमित्त उसने सेवा का पथ अपनाया। परोपकार के लिये जीवन का उपयोग उसका लक्ष्य बन गया। आत्मवेदना की अनुभूति ने लोकवेदना की गहराई को अनुभव करने का अवसर प्रदान किया। उसकी स्वाभिमानी प्रकृति देश की पराधीनता के दुरसहः भार को नहीं सह पाती। विदेशियों के अनाचार देखकर वह सोचता है—'इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई ? यह गोरे सिपाही इङ्गलैंड की निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका साहस कैसे हुआ ? इसीलिए कि भारत पराधीन है। यह लोग जानते हैं कि यहाँ के लोगों पर उनका आतङ्क छाया हुआ है। वह जो अनर्थ चाहे करें। कोई चूं नहीं कर सकता। यह आतङ्क दूर करना होगा। इस पराधीनता की जञ्जीर को तोड़ना होगा।' देशवासियों के साथ शासक-मण्डल की अनीति देखकर उसका रक्त खौलने लगता था। पराधीनता से देश को मुक्त कराने के निमित्त वह राष्ट्रीय उत्थान में संलग्न समस्याओं के कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग देने लगा। गाँव में अन्याय के राज्य के विरुद्ध वह जन-आंदोलन का नेता था। उसकी सुनिश्चित धारणा थी कि अन्याय और अनीति के सम्मुख नत होने से अच्छा है कि इनका विरोध करते हुए मर मिटा जाय। अपने आदर्शों के प्रति उसकी गहरी निष्ठा है और जब उसकी विलासप्रिय पत्नी उसे जीवनादर्श से सहमत नहीं होती, तब वह कुछ समय के निमित्त उद्भ्रांत-सा हो जाता है। पत्नी से उसका साहचर्य आंतरिक नहीं था, इसीलिए वह सकीना की ओर आकृष्ट होता है। उसने सकीना से कहा था—'मेरी हसीन बीबी मुझे संगमरमर की मूरत सी लगती है, जिसमें दिल नहीं, दर्द नहीं।' किंतु जब सुखदा भोग-विलासमय जीवन त्याग कर लोकसेवा के पथ पर अग्रसर होती है तो उसका भटकता हृदय स्वतः सुखदा की ओर खिंच आता है। इस आत्मिक सामञ्जस्य से वह अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करता है।

सुखदा के चरित्र का संस्कार सर्वथा भिन्न परिस्थितियों में हुआ है। वह अपनी सम्पन्न माँ की एकमात्र संतान थी। अतएव पुत्री होने पर भी पुत्र की भाँति पाली गई थी। प्रारम्भ से ही उसमें 'त्याग की जगह भोग, शील-

की जगह तेज, कोमल की जगह तीव्र का संस्कार किया गया था।' अतएव उसमें नम्रता के स्थान पर अभिमान का विकास हुआ। उसका आत्माभिमान इतना बढ़ा-चढ़ा था कि वह पति की सेवा भी गुलामी समझती थी। उसने अपनी माँ से कहा था—'जब वह मेरी बात नहीं पूछते, तो मुझे क्या गरज पड़ी है। वह बोलते हैं, तो मैं भी बोलती हूं। मुझसे किसी की गुलामी नहीं होगी।' इसी प्रकार उसकी मान-अपमान की भावना बहुत तीव्र है। अमरकांत जब उसे छोड़ कर चला जाता है, तब उसकी सम्मान-भावना को बड़ा आघात पहुँचता है। उसने सकीना से कहा था—'उन्होंने मेरा जो अपमान किया, उसे मैं अब भी क्षमा नहीं कर सकती·········अब तो जब तक उनकी तरफ से हाथ न बढ़ाया जायगा, मैं अपना हाथ नहीं बढ़ा सकती, चाहे सारी जिन्दगी इसी दशा में पड़ी रहूँ। औरत निर्बल है और इसीलिये उसे मान-अपमान का दुख भी ज्यादा होता है।' उसने अनादर और अपमान को सह लेना नहीं सीखा है। उसने स्वयं अपने विषय में शांति कुमार से कहा था—'जी नहीं, मैं इतनी सहनशील नहीं हूँ।' मनीराम द्वारा अपमानित होने पर उसने कहा था—'अच्छी बात है, जाती हूं ; मगर याद रखियेगा, इस अपमान का नतीजा आपके हक में अच्छा न होगा।' उसमें असहनशीलता के साथ उत्तेजन भी है और प्रत्युत्तर देने में वह कठोरता का का व्यवहार भी कर डालती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसमें दया और उदारता नहीं है। उसमें यह गुण पर्याप्त मात्रा में है किंतु चरित्रगत विशेषता के साथ दृढ़ता ने उसकी सशक्त मनोवृत्तियों को इतना उभार दिया है कि कोमल भाव दब गए हैं। दृढ़ तो वह इतनी है कि नितांत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने निश्चय पर अडिग रहती है। नगर में हड़ताल कराने के लिये वांछित सहयोग न मिलने पर भी वह अपने निश्चय से न फिरी। उसने असहयोगी व्यक्तियों के सम्मुख कहा था—'मैं खुद घर-घर घूमूंगी, द्वार-द्वार जाऊँगी, एक-एक के पैर पड़ूंगी और हड़ताल कराके छोड़ूंगी। उसने हड़ताल कराके ही छोड़ी। उसकी इस दृढ़ निश्चयात्मिकता ने उसे नगर-नेत्री बना दिया था। लोकसेवा के पथ पर अग्रसर होकर उसने बड़ी निर्भीकता और साहस के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन किया और उस विलासवृत्ति को भी तिलाञ्जलि दे दी जिसके कारण वह पति से एकात्म नहीं हो पाई थी। वस्तुतः सांसारिकता के प्रति उसकी मोह-भावना ने उसकी आत्मा के

उच्च स्थरों को सर्वथा निर्मूल नहीं किया था। सेवा-क्षेत्र म प्रवेश करते ही विलासिता का आवरण हट गया और उत्सर्ग-भावना प्रकाशित हो उठी। तभी उसने अपने विमुख पति के हृदय पर विजय प्राप्त की और दोनों में आन्तरिक साहचर्य स्थापित हुआ।

समरकान्त नगर के सब से बड़े साहूकार हैं। उनके पिता केवल एक झोपड़ी छोड़कर मरे थे, किन्तु उन्होंने अपने बाहुबलों से लाखों की सम्पत्ति जमा कर ली। वह उद्योगी पुरुष हैं और प्रातः से रात तक व्यावसायिक कार्यों में लगे रहते हैं। वह पक्के व्यवसायी हैं। व्यवसाय में वैद्य और अवैद्य उपायों का समानरूप से व्यवहार करते हैं। व्यावसायिक विषयों में वह पक्के यथार्थ-वादी हैं और अनुभावों के आधार पर उनका निष्कर्ष है कि ईमानदारी व्यवसाय के लिये नहीं बनी है। अनुभव के आधार पर ही वह धन की आवश्यकता सब से बड़ी आवश्यकता मानते हैं। उनकी दृष्टि में धन कमाना बड़े पुरुषार्थी का काम है। इसीलिये वह धन को सर्वोपरि समझते हैं। उनकी धनसम्पत्ति की लालसा इस सीमा तक बढ़ जाती है कि एक मात्र पुत्र की अपेक्षा वह सम्पत्ति को अधिक मूल्यवान समझने लगते हैं। इसी कारण पुत्र की उनसे पटती न थी। यह सच है कि धन की एकाग्र उपासना में समरकांत ने पुत्र प्रेम विस्मृत कर दिया था किंतु जब पुत्र धन को ठुकरा कर चला गया तब उन्हें बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने धन की उपासना इसीलिये की थी कि उन के पुत्र को सुख-पूर्वक जीवन-यापन का अवसर मिले। पिता के लिये इससे बढ़ कर मनोव्यथा और क्या हो सकती है कि जिस पुत्र के लिये उसने सब-कुछ किया वही उसे छोड़कर चला गया। उन्होंने अपनी अंतर्पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त किया था—'लेकिन माँ-बाप की कामना तो यही होती है, कि उनकी संतान को कोई कष्ट न हो। जिस तरह उनको मरना पड़ा, उसी तरह उनकी संतान को न मरना पड़े। जिस तरह धक्के खाने पड़े, कर्म अकर्म सब करने पड़े, वे कठनाईयाँ उनकी संतान को न झेलनी पड़ें। दुनियां उन्हे लोभी, स्वार्थी कहती है, उनको परवाह नही होती, लेकिन जब अपनी ही संतान अपना अनादर करे तब सोचो अभागे बाप के दिल पर क्या बीतती है। उसे मालूम होता है, सारा जीवन निष्फल हो गया।' आगे चलकर पुत्र-प्रेम ने ही उनकी कायापलट कर दी। पुत्र से बिछुड़ कर ही उन्होंने पुत्र-प्रेम को समझा। पुत्र-प्रेम के कारण होलो भी और कृपण समरकांत लोक-सेवा में अपना सर्वस्व

लुटाने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। यहाँ तक कि जेलयात्रा भी करते हैं। उन की सदाशयता पुत्र की श्रद्धा अर्जित करने में समर्थ होती है और अंत में स्नेह का बंधन दृढ़ हो जाती है।

शान्तिकुमार सुधारक हैं और व्यावहारिक आदर्शवाद का समर्थक। उन्होने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के निमित्त 'सेवाश्रम' खोल रक्खा था जिसका उद्देश्य है कि छोटे-भोले-भाले निष्कपट बालकों का कैसे स्वाभाविक विकास हो, कैसे वह साहसी, सन्तोषी, सेवाशील नागरिक बन सकें। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली और शिक्षा संस्थाओं की व्यावसायिक नीति की वह आलोचना करते हैं और उनका मत है कि 'यह किराये की तालीम हमारे कैरेक्टर को तबाह किये डालती है।' 'सेवाश्रम' के संचालन के निमित्त अपनी आय का अधिकांश व्यय करते हैं। आश्रम का ट्रस्ट बन जाने पर उन्होंने नौकरी छोड़ दी, क्योंकि वह अधिकाधिक समय समाज-सेवा में लगाना चाहते हैं। वह आदर्श के लिये त्याग करते हैं किन्तु उसके व्यावहारिक-पक्ष की उपेक्षा नहीं करते। उन्होने अमर से कहा था—'मेरे आदर्शवाद में व्यावहारिकता का भी स्थान है..... ...मैंने जो तत्व निकाला है, यह है कि हमारा जीवन समझौते पर टिका हुआ है........ तुम्हें मालूम होगा कि जीवन में यथार्थ का महत्व आदर्श से जौ भर कम नहीं। वस्तुतः उनका यह मत है कि जीवन में व्यावहारिक आदर्शवाद का प्रयोग अधिक फलप्रद होता है। यह फल व्यक्तिगत हित की दृष्टि से नहीं, सामाजिक हित की दृष्टि से ग्राम है। समाज-सेवा के लिये ही उन्हों ने समझौते का भागी अपनाया था किंतु जब-जब सक्रियता की आवश्यकता पड़ी, तब वह कर्म क्षेत्र में कूद पड़े। अन्त्यजों के मंदिर-प्रवेश आंदोलन और नगर के भूमि आंदोलन में उन्होंने मुख्य भाग लिया और जेल यात्रा की। वस्तुतः उनके जीवन का लक्ष्य लोकसेवा है और इसके लिये वह त्याग और कष्ट का जीवन सहर्ष स्वीकार करते हैं।

सलीम मस्त और मौजी प्राणी हैं। खाना, पीना और आनंद करना उसका लक्ष्य है। उसकी अभिलाषा थी कि कोई अच्छा सरकारी पद पा जाय और चैन से रहे। अमर की आदर्शवादिता को लक्ष्य करके उसने कहा था—'ज्यादा से ज्यादा यही होगा कि तुम कुछ कर जाओगे। यहाँ पड़े

सोते रहेंगे, पर अंजाम दोनों का एक है। तुम रामनाम सत्त हो जाओगे। मैं इन्नल्लाह राजेहन।' सांसारिक चिन्ताओं के बोझ से दूर, निर्द्वन्द और निर्मुक्त यह युवक मानवता को तिलांजलि देकर अपनी आकाँक्षा पूर्ण नहीं करता। अपनी अभिलाषा के अनुसार उच्च सरकारी पद पाकर जब उसे जनता का दमन करना पड़ा, तब उसकी आत्मा को कम कष्ट नहीं हुआ। कृषकों की वास्तविक दशा का परिचय प्राप्त होते ही उसने अपनी अभिलषित सिविल सर्विस को लात मार दी और उसमें आ मिला। उसने आन्दोलन का नेतृत्व किया और बंदी बनकर जेल गया।

सकीना का अमर के प्रति प्रेम विवशता का महत्व के सान्निध्य का विधान है। जब क्षुद्र को महत् ग्रहण करना चाहता है, तब क्षुद्र अभिभूत हो जाता है और उसकी स्वानुभूति श्रद्धा का रूप धारण कर लेती है। सकीना की स्थिति भी बहुत-कुछ ऐसी ही है। वह निर्धन युवती सर्वसम्पन्न युवक के रागदान से अभिभूत हो जाती है और प्रेम से अधिक श्रद्धा का अनुभव करती है। पुनः-पुनः अमर के सान्निध्य और साक्षात्कार से संभव है कि उसकी इच्छावृत्ति भी जाग्रत हो उठी हो, किंतु वह प्रेम के जिस आदर्श की व्याख्या करती है, वह वायवीय अधिक है। इसीलिए अमर के प्रस्थान के उपरान्त वह अमर के प्रेम में इतनी चिंतित नहीं है जितनी परिस्थितियों को संभालने में। अमर के प्रति उसका प्रेम आवेश में उत्पन्न हुआ और निराधार होते ही दूसरे आधार की आवश्यकता अनुभव करने लगा। यह आधार सलीम के रूप में मिला जिसमें भावुकता की अपेक्षा निश्चितता अधिक है।

समाज

'कर्मभूमि' की कथा का अधिकांश नगर से सम्बन्ध रखता है। अतएव नागरिक समाज की समस्याओं पर यथेष्ठ दृष्टिपात किया गया है। ग्राम-जीवन का चित्रण अपेक्षाकृत कम है, तथापि उसकी समस्याएँ स्पष्ट रूप में अंकित हैं। नगर और ग्राम की समस्याओं का समग्र प्रभाव जिस प्रकार लोकजीवन को प्रभावित करता है, उस पर उपन्यासकार ने व्यापकत्व के साथ विचार किया है। उसने नगर और ग्राम जीवन की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का भली-भाँति चित्रण किया है। इस दृष्टि

से यह उपन्यास प्रेमचंद के समसामयिक युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

'कर्मभूमि' का राजनैतिक जीवन आंदोलनों की सीमा में परिबद्ध है। देश की राजनीति ने आन्दोलनों के जिन रूपों को ग्रहण किया था, ये उपन्यास में यथार्थ अंकित हुये हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में अहिंसात्मक आंदोलन के अतिरिक्त आंदोलन के एक उग्र रूप ने भी जन्म लिया था जिसमें वाँछनीय विचारधारा का प्राबल्य था। उपन्यास के पात्रों में अमरकांत प्रथम और सलीम व आत्मानंद द्वितीय प्रकार के आंदोलन के समर्थक हैं। अमरकांत अपने आंदोलन को 'धर्म–युद्ध' कहता है और त्याग, बलिदान और सत्य के आधार पर ही विजय का अभिलाषी है। उसकी समर-नीति और महात्मा गाँधी की नीति में बड़ा साम्य है। वस्तुतः 'कर्मभूमि' का राजनीतिक जीवन गाँधींवाद से यथेष्ट प्रभावित है। अमरकांत के विपरीत सलीम उग्रनीति का पक्षपाती है। उसका विचार है—'हम जितना ही दबते जाते हैं, उतना वह लोग शेर हो जाते हैं। मरने वाला बेशक दिलों में रहम कर सकता है, लेकिन मारने वाला ख़ौफ पैदा कर सकता है, जो रहम से कहीं ज्यादा असर डालने वाली चीज है।' भारतीय राजनीतिक जीवन के इन परस्पर विपरीत मतों के मानने वाले परस्पर विरोधी नहीं थे। वे सलीम और अमरकांत की भाँति एक व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन के अंग थे।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने हमारे समाज की आर्थिक विषमता का सच्चा चित्र खींचा है। उन्होंने एक ओर नगर के पूँजीपति और गाँव के जमींदार-वर्ग के ऐश्वर्य का स्वर्ग अंकित किया है, और दूसरी ओर नगर के अछूत और गाँव के किसान के जीवन के खंडहरों को दिखाया है। एक ओर महाजन समरकान्त और महन्त आशाराम गिरि हैं, दूसरी ओर सलोनी और गूदड़ जैसे चिरशोषित प्राणी हैं। समतावर्जित अर्थ-व्यवस्था के कारण समाज में भी साम्य भाव नहीं है। ऊँच-नीच और धनी-निर्धन का भेद है। अनवरत श्रम करने वाले प्राणियों को भोजन भी नसीब नहीं होता, किंतु हाथ पर हाथ रखकर लोगों के अंधविश्वास से धन कमाने वाले आनन्द भोग करते हैं। महन्त आशाराम गिरि ऐसे ही प्राणी हैं। द्रव्य-वस्त्रहीन प्राणियों के आर्तनाद के बीच उनकी विलास-लीला चला करती है।

'कर्मभूमि' का नागरिक और ग्रामीण समाज समानरूप से आर्थिक दुरावस्था का शिकार है। एक स्थल पर नगर के निर्धन-वर्ग की दुरावस्था का का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—'शहर की उन अँधेरी तंग गलियों में, जहाँ वायु और प्रकाश का कभी गुज़र भी न होता था, जहाँ की जमीन ही नहीं, दीवारें भी सीली रहती थीं, जहाँ दुर्गंध के मारे नाक फटती थी, भारत की कमाऊ संतान रोग और दरिद्रता के पैरों-तले दबी हुई अपने क्षीण जीवन को मृत्यु के हाथों से छीनने में प्राण दे रही थी।' गांव की आर्थिक स्थिति नगर की हालत से किसी भी दशा में अच्छी नहीं कही जा सकती। इस उपन्यास में ग्राम-चित्रण अधिक नहीं है, पर जितना है उतना वहाँ की दुरावस्था और विपत्तिगत जीवन का बोध कराने में पर्याप्त है। डॉ० शांतिकुमार के साथ अमर और सलीम ने जिस ग्राम का दौरा किया था, वह हमारे ग्राम-जीवन की विपन्नता का प्रतीक है। उसकी आर्थिक दशा देखकर अमर ने कहा था—'मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशा जनक है।' तालाब के किनारे मल्लाह रहते हैं। उनके पास लोहे के दो एक बरतनों के अतिरिक्त कुछ न था। किसी घर में अनाज के मटके न थे। किसी छः महीने से रोग-शय्या पर पड़ा है। दवा के लिए पैसा नहीं है। इस दशा में भी उस पर डिग्री हो गई और उसका घर नीलाम हो गया। इधर छुट्टी मिली कि महाजन और अमले उसके जर्जर शरीर से रक्त निचोड़ने पहुंच गए। इसके अतिरिक्त भूमिपतियों के नित्य नूतन अत्याचारों ने ग्राम निवासियों की विपन्नता को और भी बढ़ा दिया है। उपन्यासकार ने लिखा है —'इस इलाक़े के जमींदार एक महन्त जी थे। कारकुन और मुख्तार उन्हीं के चेले-चापड़ थे। इसलिए लगान बराबर वसूल होता जाता था। ठाकुरद्वारे में कोई न कोई उत्सव होता ही रहता था। कभी ठाकुर जी का जन्म है, कभी व्याह है, कभी यज्ञोपवीत है, कभी झूला है, कभी जल-विहार है। असामियों को इन अवसरों पर बेगार देनी पड़ती थी।.........बेचारे एक तो गरीब, ऋण के बोझ से लदे हुए, दूसरे मूर्ख न कायदा जानें, न क़ानून। महन्तजी जितना चाहें इजाफा करें, जब चाहें बेदखल करें, किसी में बोलने का साहस न था। अकसर खेतों का लगान इतना बढ़ जाता था कि सारी उपज लगान के बराबर भी न पहुँचती थी; किंतु लोग भाग्य को रोकर, भूखे-नंगे रहकर, कुत्तों की मौत मरकर खेत जोतते-

जाते थे।' यहाँ उपन्यासकार का यह मन्तव्य भी नितांत स्पष्ट हो जाता है कि गाँव की दुर्दशा का मुख्य कारण जमींदारों का शोषण है।

उपन्यास की सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत तीन प्रश्नों पर व्यापकता से विचार किया गया है। ये हैं पारिवारिक जीवन की समस्या, पतित स्त्रियों की समस्या और छूआ-छूत का प्रश्न। पारिवारिक जीवन की समस्या का निरूपण लाला समरकांत के परिवार से सम्बंधित है। उनके परिवार में पारस्परिक स्नेह का अभाव है। पिता की पुत्र से नहीं पटती; पत्नी पति से आंतरिक साहचर्य स्थापित नहीं कर पाती। फलस्वरूप उनके जीवन में सुख-शांति की अपेक्षा कटुता परिव्याप्त है। इस समस्या का समाधान पारस्परिक स्नेह के मार्ग का व्यवधान हटा कर किया गया है। समरकांत के परिवार में धन-सम्पत्ति व्यवधान है। आत्मिक सामञ्जस्य के निमित्त इसका त्याग आवश्यक है क्योंकि बिना आत्मिक सामञ्जस्य के सच्चा स्नेह उत्पन्न नहीं होता। समरकांत का धनत्याग और सुखदा का विलास त्याग हीं पिता-पुत्र और पति-पत्नी में सच्चा स्नेह उत्पन्न करती है। दूसरी समस्या मुन्नी जैसी पतित स्त्रियों की है जो स्वयं निरपराध और दोषहीन होने पर भी समाज की दृष्टि में गिर जाती है। मुन्नी पर गोरों ने जबरदस्ती बलात्कार किया। वह अपने को भ्रष्ट कलंकित और समाज के अयोग्य समझने लगी। उसकी संस्कारसिद्ध भावना अमिट रही कि वह पतित नारी है जिसकी छाया भी पति और पुत्र पर नहीं पड़नी चाहिए। ऐसी स्त्रियों की समस्या वास्तव में हिंदू समाज की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। मुन्नी को पति और पुत्र से हाथ धोना पड़ा और सेवामार्ग में चलकर क्या उसे आत्मिक शांति मिल पाई? नहीं। वस्तुतः उसकी समस्या का समाधान सेवावृत्ति नहीं है। उपन्यास के अंत में सबके आनंद और उल्लास में मुन्नी की आत्ममर्दित भावना का प्रभाव बना रहता है। सब व्यक्ति जैसे आनंद की सरिता में अवगाहन कर रहे हों और वह किनारे पर अकेली खड़ी एक बूँद के लिए भी तरस रही हो। तीसरी समस्या है छुवा-छूत सम्बंधी। अछूतों का प्रश्न आधुनिक भारतीय समाज की मुख्य समस्या है। कर्त्तव्यों का भार उन पर लाद कर समाज ने उन्हें अधिकार-च्युत कर रखा है। उनके कधों पर समाज का भार है पर उन्हें कोई अधिकार नहीं। मानवता की दृष्टि से भी अंत्यजों का उद्धार आवश्यक है। अछूतों के मंदिर

प्रवेश अधिकार का समर्थन करके उपन्यासकार ने इस समस्या के हल की ओर संकेत किया है। वस्तुतः सब वर्गों को समानाधिकार देकर इस समस्या का स्थायी समाधान हो सकता है।

'कर्मभूमि' की धार्मिक प्रवृत्तियों के मूल में पाखण्ड है। धर्म-तत्त्व विस्मृत हो गया है और उसका व्यावहारिक रूप पाखण्डियों को प्रश्रय देता है। दया न्याय और नीति की अपेक्षा स्नान-ध्यान, पूजा-व्रत और कथा पुराण को ही धर्म मान लिया गया है। अनेक दुष्कृत्यों के उपरांत भी आचार-विचार पालन करने वाला धार्मिक बना ही रहता है। वस्तुतः समाज कपट-धर्म के पाश में जकड़ा है। समरकांत और महन्त आशारामगिरि का धर्म ऐसा ही है। ऐसे कपटधार्मिकों ने निर्धन और असमर्थ व्यक्तियों को अछूत बनाकर उनसे ईश्वर की उपासना का अधिकार छीन लिया है। मन्दिर के द्वार उनके लिये बंद हैं। दरिद्र प्राणियों का धर्म के नाम पर शोषण भी होता है। महन्त आशारामगिरि के इलाके में रहनेवाले निर्धन आसामियों को ठाकुरद्वारे के नित्य नये उत्सवों में बेगार देनी पड़ती थी।

शिक्षा संस्थाओं की अर्थ-नीति का भी उपन्यासकार ने यथार्थ चित्रण किया है। 'कर्मभूमि' में वह लिखता है—'हमारे स्कूलों और कालेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन फीस का दाखिल होना अनिवार्य है। या तो फीस दीजिये, या नाम कटाइये ; या जब तक फीस न दाखिल हो, रोज कुछ जुर्माना दीजिये। कहीं-कहीं ऐसा भी नियम है कि उसी दिन फीस दुगनी कर दी जाती है, और किसी दूसरी तारीख को दुगनी फीस न दो, तो नाम कट जाता है⋯⋯ ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके सिवा और क्या हो सकता था कि गरीबों के लड़के स्कूल छोड़ कर भाग जाएँ। वही हृदयहीन कट्टरी शासन, जो अन्य विभागों में है, हमारे शिक्षालयों में भी है। वह किसी के साथ रियायत नहीं करता, चाहे जहाँ से लाओ, कर्ज लो, गहने गिरो रखो लोटा थाली बेचो, चोरी करो मगर फीस जरूर दो, नहीं दूनी फीस देनी पड़ेगी, या नाम कट जाएगा। जमीन और जायदाद के कर वसूल करने में भी कुछ रियायत की जाती है। हमारे शिक्षालयों में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहाँ स्थाई रूप से मार्शल ला का व्यवहार होता है।

कचहरियों में पैसे का राज है, यहाँ उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय। देर में आइये तो जुर्माना, न आइये तो जुर्माना, सबक न याद हो तो जुर्माना, किताबें न खरीद सकिये तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाय तो जुर्माना, शिक्षालय क्या है जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों में पुल बाँधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिये गरीबों का गला काटनेवाले, पैसे के लिये अपनी आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है? प्रेमचंद आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की आलोचना इसलिये करते हैं कि यह अर्थ-लाभ की दृष्टि से बनी है और मनुष्य को अर्थलोलुप बनाती है। इसके विपरीत उन्होंने डा० शांतिकुमार के 'सेवाश्रम' का आदर्श प्रस्तुत किया है जहाँ फीस बिलकुल नहीं ली जाती। वहाँ विद्यार्थियों को साहसी, सन्तोषी और सेवाशील नागरिक बनाने की शिक्षा दी जाती थी और उनके स्वाभाविक विकास पर दृष्टि रखी जाती थी।

जनहित की दृष्टि से बनी म्यूनिसिपैलिटी ऐसी संस्थाएँ भी समर्थ और सम्पन्न व्यक्तियों के स्वार्थों को अग्रसर करने का साधन बन गई हैं। उपन्यासकार ने इनकी लोकविरोधी नीति की आलोचना करते हुए लिखा है—'बोर्ड अमीरों का मुँह देखता है। ग़रीबों के मुहल्ले खोद-खोद कर फेंक दिये जाते हैं, इसलिए कि अमीरों के मुहल्ले बनें। गरीबों को दस-पाँच रुपये मुआवजा देकर उसी जमीन के हजारों वसूल किए जाते हैं।' म्यूनिसिपल बोर्ड ऐसी संस्थाओं को स्वार्थी व्यक्तियों ने अपने अधिकार में कर रखा है। वे नगर की अधिकांश जनता को अन्धकार और दुर्गन्ध के वातावरण में सड़ने देते हैं और स्वयं अधिकाधिक लाभ उठाते हैं। ऐसी सस्थाओं की लोकविरोधी कार्यवाहियों का उपन्यासकार ने विस्तृत वर्णन किया है। 'कर्मभूमि' के समाज पर गांधी युग की प्रवृत्तियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। जिन सुधारों के प्रति गांधीजी की निष्ठा थी, वे अल्पाधिक अनुपात में इस उपन्यास में आए हैं। इनमें से अन्त्यजों के मंदिर प्रवेश, मादक वस्तुओं का बहिष्कार, शिक्षा-प्रसार आदि सुधारों का चित्रण प्रमुख है। चमारों के गाँव में अमरकांत का सेवा-कार्य गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम से यथेष्ट प्रभावित है। अमरकांत का चरखे को आत्मशुद्धि का साधन समझना भी गांधीयुग की प्रमुख प्रवृत्ति है। उस युग की आंदोलन नीति की भांति ही

'कर्मभूमि' की आंदोलन नीति भी अहिंसात्मक है। अनीति पर नीति से विजय पाने का भाव उपन्यास के अनेक स्थलों पर व्यक्त हुआ है। अतएव यह स्पष्ट है कि उपन्यास के समाज पर गांधीयुग की विशिष्ट प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा है।

उपन्यास का विषय १९३०-३२ के आंदोलन से सम्बंध रखता है। अमरकांत और सुखदा आंदोलन का नेतृत्व करते हैं। इसी सम्बंध में उपन्यासकार ने १९२९ की आर्थिक मंदी से उत्पन्न परिस्थितियों के चित्रण का श्लाघनीय प्रयत्न किया हैं और लगान बंदी आंदोलन के चित्र खींच कर सरकारी दमन-नीति की क्रूरता और नृशंसता का नग्न नृत्य दिखाया है। किसान आंदोलन में उग्र दल का प्रतिनिधि आत्मानंद है और समझौते की राह चलनेवालों का प्रतिनिधि अमरकांत। वह जमींदार और किसानों के मध्य समझौता कराना चाहता है। किन्तु परिस्थितियाँ उसका साथ नहीं देतीं थीं और उसे आंदोलन प्रारम्भ करना पड़ता है। उसकी जेल यात्रा भी आंदोलनकालीन नेताओं की भाँति ही चित्रित की गई है। 'कर्मभूमि' में आंदोलन से उत्पन्न प्रभाव और परिस्थितियों को बड़ी सूक्ष्मता और कलात्मकता के साथ चित्रित किया गया है। उपन्यास का अन्त विरोधी शक्तियों में समझौता दिखाकर हुआ।

११

गोदान

'गोदान' (१९३६) प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें भारतीय समाज के बहुत बड़े भाग को कथावस्तु का विषय बनाया गया है। नगर और ग्रामीण जीवन की मुख्य समस्याओं पर भी व्यापकत्व के साथ दृष्टिपात किया गया है। उपन्यास का ध्येय ग्रामीण समाज का चित्रण करना है, नगर की कथा सामाजिक-कैनवेस की सम्पूर्णता के निमित्त सम्बद्ध है। वह पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आंदोलित नागरिक संस्कृति की संक्रांति दशा से भी पाठक का परिचय कराती है। ग्रामीण-जीवन के चित्रण में उपन्यासकार ने यथार्थवादी शैली का अच्छा प्रयोग किया है जिससे कथा की प्रभावात्मकता बढ़ी है। उसने ग्रामीण-समाज के आर्थिक आधार का चित्रण करने में उन सब शक्तियों के कार्य-व्यापार पर दृष्टिपात किया है जो उस व्यवस्था की अभिवाज्य अङ्ग बन गई हैं। जमींदार, महाजन, और किसान इस व्यवस्था के मुख्य अङ्ग हैं। 'गोदान' का ग्रामीण-समाज इन्हीं के कार्य-व्यापार से प्रभावित है। उपन्यासकार ने जमींदार और महाजन द्वारा किसान के अनवरत शोषण का यथार्थ चित्रण किया है।

कथा

अवध में दो गाँव हैं सेमरी और बेलारी। होरी बेलारी में रहता है और जमींदार रायसाहब अमरपालसिंह सेमरी में। रायसाहब के बड़े पुत्र का नाम रुद्रपाल है और पुत्री का नाम मीनाक्षी। होरी किसान है। उसके परिवार में उसकी पत्नी धनिया के अतिरिक्त एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। पुत्र का नाम गोबर है, पुत्रियों का सोना और रूपा। होरी के भाई हीरा और शोभा भी उसी गाँव में रहते हैं। पहले वे होरी के साथ सम्मिलित कुटुम्ब के सदस्य थे। अब पृथक् रहते हैं। हीरा और उसकी पत्नी पुनियाँ

होरी के प्रति वैमनस्य-भाव रखते हैं। पर होरी उनके प्रति अनुदार नहीं है। होरी के मन में गाय लेने की बड़ी अभिलाषा थी। रुपये देकर गाय क्रय करने की सामर्थ्य उसमें न थी, अतएव उसने चतुराई से भोला अहीर से गाय प्राप्त करने की व्यवस्था की। उसका पुत्र भोला के यहाँ से गाय ले आया। गाय देखते ही होरी श्रद्धा-विह्वल हो उठी। उसकी चिरकाल संचित अभिलाषा पूर्ण हो गई। गाय देखने सारा गाँव आया, किंतु उसके भाई हीरा और शोभा नहीं आए। यही नहीं, हीरा ने यह आक्षेप किया कि होरी ने अलगौझे के समय जो धन दबा लिया था, गाय उसी से ली गई है। इस मिथ्या आक्षेप से होरी व्यथित हो उठा। उधर हीरा के हृदयस्थ द्वेष ज्वाला प्रचण्ड हो उठी। उसने गाय को विष दे दिया। गाय मर गई और हीरा भाग गया। सारे गाँव को उसका दुष्कृत्य ज्ञात हो गया। इस अवसर पर तहकीकात के नाम पर लूट-खसोट करने दरोगाजी आ पहुँचे। हीरा के घर को तलाशी से बचाने के लिये होरी दरोगाजीकी पूजा के लिये प्रस्तुत था, किंतु धनिया ने यह न होने दिया।

जिस दिन गोबर गाय लेने के लिये भोला के घर गया था, उस दिन से भोला की विधवा पुत्री झुनियाँ के प्रति उसका आकर्षण वेग से बढ़ने लगा। उनका पारस्परिक आकर्षण प्रेम में परिवर्तित हो गया और गुप्त सम्बंध द्रुतगति से चलने लगा। झुनिया को गर्भ रहने पर दोनों की आँख खुली। भेद खुलने के भय से भाग चलने का निश्चय किया गया। गोबर को अपने माता-पिता का भय था, विशेषरूप से अपनी माँ के प्रचण्ड स्वभाव से। झुनियाँ को घर भेज कर वह धन-उपार्जन के लिए नगर चला गया। समस्त वृत्तान्त ज्ञात होने पर होरी और धनियाँ ने झुनिया को बहू के रूप में स्वीकार कर लिया।

रायसाहब अमरपालसिंह के यहाँ जेठ के दशहरे पर धनुष-यज्ञ की योजना थी। इस अवसर पर उनके परिचित व्यक्ति और मित्र आये। इनमें बिजली,-सम्पादक ओंकारनाथ, श्यामबिहारीतंखा, विश्वविद्यालय के अध्यापक मेहता, शक्कर मिल के मैनेजिंग डाइरेक्टर खन्ना, उनकी पत्नी गोविंदी, लेडी धाक्टर मालती और मिर्जा खुर्शेद थे। मिस मालती विदेश से डाक्टरी पढ़ कर आई हैं। आधुनिक नारी की समस्त विशेषतायें उसके चरित्र में प्रति-फलित हुई हैं। उसने आचारनिष्ठ पंडित ओंकारनाथ को भुलावा देकर

मदिरा पिला दी जिससे वह आंय बांय बकने लगा। उनका खूब मजाक रहा। इसीं मध्य मेहता ने एक अफगान का वेश धारण करके सबको डरा दिया। भेद खुलने पर मालती मेहता की ओर आकृष्ट हुई। उसे मेहता में ऐसी विशेषतायें दृष्टिगत हुई जो उसके परिचित पुरुषों में न थीं। खन्ना साहब भी मालती के उपासक थे। उसे मेहता के प्रति आकर्षित देख वह मेहता से जल उठे।

गोबर झुनिया को प्रसंग में होरी को अनेक कष्ट उठाने पड़े। उसने झुनिया को अपनी पुत्रबधू स्वीकार करके सारे गांव को विरोधी बना लिया। इसी कारण भोला भी उसका शत्रु हो गया और उससे अपनी गाय के रुपये माँगने लगा। गाँव के मुखियों ने पंचायत करके होरी का सामाजिक बहिष्कार कर दिया। बिरादरी ने हुक्का पानी बंदकर दिया। पंचायत ने होरी को पांच सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज डाँड़ लगा दिया। होरी के लिये बिरादरी विच्छिन जीवन कल्पनातीत था। उसने पंचायत का दण्ड स्वीकार किया। घर झिंगुरीसिंह के हाँथ रेहन रख कर और अनाज खलिहान से उठवा कर समाज-अवज्ञा का दण्ड भरा। तब उसका हुक्का खुला। पंचों को समर्पित करने के उपरांत थोड़ा सा अनाज बच रहा। होरी की चिंतायें बढ़ती जाती थीं। हीरा के पलायन के उपरांत उसे पुनियाँ की खेती भी देखनी पड़ती थी। वह अपने भाई की पत्नी को कष्ठ उठाते नही देख सकता था। पुनिया ने भी यथासाध्य होरी को अनाज आदि से सहायता दी। पेट की समस्या हल भी न हुई थी कि दूसरी विपत्ति टूट पड़ी। भोला अपनी गाय के दाम माँगने आया और रुपये न मिलने पर होरी के बैल खोल ले गया। अतएव इस बार होरी की बोआई न हो सकी।

गोबर को नगर में रहते प्रायः एक साल हो गया। कुछ दिन बाद उसने मिर्जा खुर्शेद के यहाँ नौकरी की, फिर खोंचे लगाने लगा। इस से उसे अच्छा लाभ रहा। इन रुपयों से उसने ले देन काम प्रारम्भ कर दिया। कुछ रुपये एकत्र हो जाने पर वह झुनियाँ को ले आने के लिये गाँव चल दिया। गाँव पहुचने पर उसे अपने घर की दरिद्रता और दुरावस्था का पता चला। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि भोला उसके बैल खोल ले गया। वह भोला से मिलने गया। उसके प्रति भोला का क्रोध समय के साथ कम हो गया था।

गोबर के भाग्योदय के वृतान्त से वह सन्तुष्ट हो गया कि उसकी लड़की अच्छे घर है। उन्हों होरी के बैल लौटा दिए, और गाय के रुपये भी न लिए। पर किसी सम्बन्ध में गोबर और धनियाँ में मनमुटाव हो गया। गोबर झुनियाँ को लेकर नगर चल दिया। धनियाँ रोती रह गई।

रायसाहब को कई कार्यों के लिए रुपये की आवश्यकता थी; वे अपने मित्र खन्ना के पास गए। खन्ना बैंक का मैनेजर भी है। उसने अपना कमीशन निश्चित करके रायसाहब को रुपये उधार दिलाने का वचन दिया। खन्ना अपनी सेवाशील पत्नी की उपेक्षा करके मालती पर अनुरक्त थे; पर मालती मेहता पर अनुरक्त हो रही थी। अतएव खन्ना उसके रूखे व्यवहार से रुष्ट थे। वह रायसाहब से मालती के रूखे व्यवहार का रोना रो ही रहे थे कि मेहता महिला व्यायामशाला का चंदा लेने आए। खन्ना मेहता से चिढ़ा हुआ था क्योंकि मालती का झुकाव मेहता की ओर दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता था। उसने न तो चंदा ही दिया और न गोविंदी द्वारा व्यायामशाला का शिलान्यास पसंद किया। पर मालती उससे चंदे के रुपये ले गई और यह भी स्पष्ट कर गई कि उसे खन्ना से प्रेम नहीं है।

होरी को अपनी बड़ी लड़की सोना के विवाह की चिंता थी; पर उसके पास रुपया न था। कुश-कन्या देने में वह अपनी हेटी समझता है। इन दिनों गाँव के मुखियों के लड़के घर आए हुए थे। वे प्रायः सोना को ताकते फिरते। होरी अब और न रुक सका। यदि कुछ ऊँच-नीच हो जाय तो वह संसार को क्या मुँह दिखायगा। वह दुलारी साहुआइन के पास सहायता के निमित्त गया। दुलारी ने होरी को खड़ी ऊँख के भरोसे रुपये उधार दे देने का वचन दिया। पर मँगरू साहने अपना उधार वसूल करने के लिए होरी पर डिग्री कराके ऊख नीलाम करा ली। दुलारी ने यह देखा तो रुपये उधार देने से इन्कार कर दिया। उधर सोना के विवाह की तिथि निश्चित हो चुकी थी। होरी घबराया कि अब क्या होगा? वह इसी चिंता में था कि उसकी भेंट नोहरी से हुई। नोहरी को कुछ दिन हुए भोला ब्याह लाया था। वह होरी से समधी का नाता मानती है। उसकी सहायता से सोना का विवाह सम्पन्न हुआ।

गोबर जब नगर वापस आया तो उसे ज्ञात हुआ कि जिस स्थान पर

वह खोंचा लगाता था, वहाँ दूसरा खोंचेवाला बैठता है और ग्राहक गोबर को भूल गए हैं। फलतः उसने मिल में नौकरी कर ली। झुनियाँ के साथ गोबर की अतृप्त लालसाएँ विषय-भोग के सागर में डूब जाना चाहती थीं। कुछ ही दिनों बाद झुनियाँ इस जीवन से ऊब गई किंतु गोबर का आग्रह बढ़ता ही जाता था। उसे दूसरा बच्चा होने वाला था। गोबर रात गए नशे में चूर आता और झुनियाँ से कलह करता। झुनियाँ की गर्भावस्था की नशेबाज गोबर को रञ्चमात्र भी चिंता न थी। झुनियाँ के प्रसवकाल में चुहिया नामक एक स्त्री ने सहायता की। उधर गोबर और झुनियाँ के मध्य मनोमालिन्य बढ़ता जाता था, पर इसी मध्य एक ऐसी घटना हो गई जिससे पति-पत्नी का पारस्परिक मालिन्य दूर हो गया। जिस मिल में गोबर काम करता था, उसमें हड़ताल हो गई। नये और पुराने श्रमिकों में झगड़ा हो गया जिसमें गोबर के गहरी चोटें आईं। झुनिया ने जब उसका चेष्टाहीन लोथ देखा तो उसका नारीत्व जाग उठा। उसने गोबर के सेवा-उपचार में रात-दिन एक कर दिया। गोबर झुनिया के प्रति अपने पूर्व-व्यवहार के कारण मन में लज्जित था। स्वस्थ होने पर उसने अपने जीवन का क्रम बदल दिया।

रायसाहब ने जिन कार्यों के लिए रुपया उधार लिया था, उन सब में सफल हुए। उनके प्रभाव और प्रतिष्ठा में आशातीत वृद्धि हुई। यहाँ तक कि उनके परास्त शत्रु सूर्यप्रताप सिंह ने उनके पुत्र रुद्रपाल से अपनी कन्या के विवाह का संदेश भेजा, पर रुद्रपाल ने उनकी आशा पर तुषारपात कर दिया। वह मालती की बहन सरोज को अपनी जीवन-संगिनी बना चुका था। पुत्र-विद्रोह से रायसाहब की जीवन-सञ्चित अभिलाषाएँ नष्ट हो गईं। रुद्रपाल सरोज के साथ इङ्गलैंड चला गया। उनमें अब पिता-पुत्र का सम्बंध नहीं था, वे प्रतिद्वन्दी हो गए थे। रायसाहब समझते थे कि उनके पुत्र ने दग़ा की है और उनकी वेदना का यह सबसे बड़ा कारण था। पर उनके दुःख का घाव अभी पूरा न भरा था। उनकी पुत्री मीनाक्षी और दमाद के सम्बन्ध-विच्छेद ने यह कमी पूरी कर दी। रायसाहब के सुख का स्वर्ग उनके जीवन-काल में ही ध्वस्त हो रहा था। इस ओर से निराश होकर उनका मन भक्ति और उपासना की ओर झुका किन्तु इनमें भी उन्हें शांति न मिली। वह मोह छोड़ना चाहते थे पर मोह उन्हें न छोड़ता था। इस खींचतान में उन्हें ग्लानि और अशांति ही मिलती थी।

इधर मालती में कायापलट हो गया था। मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्यागवृत्ति और सेवा-भाव सजग हो गया था। रोगियों के साथ उसके व्यवहार में मृदुता आ गई थी। निर्धन रोगियों को वह बिना फीस के देखने लगी। उसके चरित्र-परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव मेहता पर पड़ा। वह परीक्षार्थी हो गए। मालती के निकट में रहने के कारण उनका आकर्षण बढ़ता ही जाता था। मालती का समीप्य उन्हें इतना खींच रहा था कि वह अपनी पृथक् सत्ता नहीं रखना चाहते। पर मालती ने मेहता के प्रेम में ही अपने पूर्णत्व का अनुभव किया था। उसका विश्वास है कि मानवता की सेवा के लिए मेहता जैसे विचारवान और प्रतिभासम्पन्न मनुष्य की आवश्यकता है। अतएव वह मेहता को गृहस्थी के जाल में बंद करके पंगु नहीं करना चाहती। मेहता ने लोकसेवा के निमित्त मालती का आवाहन स्वीकार कर लिया।

होरी की दशा दिन-प्रति दिन गिरती जा रही थी। उसे जीवन-संग्राम में सतत् पराजय मिली थी, किंतु उसने साहस न छोड़ा था। पर निरन्तर आघात सहते सहते वह उस दशा को पहुँच गया था जब मनुष्य में आत्म-विश्वास भी नहीं रहता है। उसके जीवन की कोई भी अभिलाषा पूर्ण न हुई थी और अच्छे दिन मृग-तृष्णा की भाँति दूर होते जाते थे। उस पर तीन साल का लगान बाकी था। जमींदार के कारिंदा नोखेराम ने बेदखली का दावा कर दिया। उसकी अवशिष्ट सम्पत्ति तीन बीघे भूमि थी, वह भी आज हाथ से निकली जा रही थी। इस परिस्थिति से बचने का उपाय केवल एक था—बूढ़े रामसेवक के साथ रूपा का विवाह। उसकी विवशता ने उसे बूढ़े के हाथ लड़की बेचने के लिये बाध्य किया। भाग्य और परिस्थितियों से लड़ते लड़ते होरी की जर्जर काया, यह आघात न सह सकी। इस चोट ने उसकी कमर तोड़ दी। गिरते-गिरते उसने एक बार पुनः जोर मारा। राम सेवक के रुपये अदा करने और गोबर के पुत्र मंगल के लिए गाय लेने की आशा से उसने आठ आने रोज की मजदूरी प्रारम्भ की। दिन भर लू और धूप में कंकड़ की खुदाई करता और रात को सुतली कातता। अत्यधिक श्रम से दुर्बल उसका शरीर लू के प्रहारों को न झेल सका और वह गिर पड़ा। जबान बन्द हो गई और नेत्रों से पानी गिरने लगा। उसका अन्त समय

आया देख उसकी पत्नी धनियाँ ने बछिया आने से उसका गोदान कराया और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

वस्तु

'गोदान' की प्रमुख कथा होरी-धनियाँ की कहानी है। इस कथा की प्रभावपूर्णता के निमित्त कई गौण कथाएँ इससे अनुस्यूत की गई हैं। नगर-जीवन की कथा छोड़कर भी उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसग आये हैं जो होरी धनियाँ की कथा से सम्बधित हैं और उसे प्रभाव–उत्कर्ष प्रदान करते हैं। गोबर-झुनियाँ, भोला-नोहरी और मातादीन-सिलिया की कथाएँ की मुख्य कथा के साथ इसी अभिप्राय से सम्बद्ध हैं। मातादीन-सिलिया की कहानी होरी और धनियाँ के चरित्र पर प्रकाश अवश्य डालती है, पर वस्तु–विकास में इसका विशेष स्थान नहीं है। यह कथा यदि वस्तु से पूर्णतया निकाल दी जाय, तब भी वस्तु-श्रृङ्खला शिथिल नहीं पड़ती।

नगर की कथा भी पर्याप्त विस्तार के साथ अंकित है, पर वह गौण कथा है। मुख्य कथा होरी और ग्राम जीवन की ही है। नगर के किसी एक पात्र की कथा समस्त नागरिक समाज को प्रभावित नहीं करती, जबकि होरी की कथा ग्रामीण-समाज की कथा से सुदृढ़ सम्बन्ध रखती है। सारा ग्राम जीवन जैसे सिमट कर होरी के चरित्र में समा गया है। नगर की कहानी में ऐसा कुछ भी नहीं है। उसमें होरी की कथा की भाँति एकान्वित नहीं है। उसका समग्र प्रभाव भी विश्रृङ्खल-सा है। यदि उसमें मालती-मेहता की कहानी न होती, तो उसमें कुछ आकर्षण न रहता।

जिस प्रकार 'रंगभूमि' की कथा में कई समानान्तर चलने वाली कहानियों की योजना है, उसी प्रकार 'गोदान' में समानान्तर चलने वाली कथाएं हैं नगर और ग्राम की कथा। 'गोदान' के वस्तु-निर्माण की परीक्षा इसी दृष्टि से उचित है। उपन्यासकार ने दोनों कहानियों की सम्बन्ध-सुदृढ़ता का प्रयत्न भी नहीं किया है। वस्तुतः समानान्तर चलने वाली कथा-वस्तु में कथाकार वस्तु-संगठन के प्रति सचेष्ट नहीं रहता, क्योंकि उसकी वस्तु का ढांचा ही दूसरे प्रकार का होता है। 'कला की दृष्टि से' प्रत्येक वस्तु की जांच करने वाले आलोचकों को 'गोदान' के वस्तु-संगठन में शैथिल्य अवश्य

अनुभव होगा, किन्तु जीवन के बहुमुखी चित्रण की अपेक्षा करने वाले समीक्षक समानान्तर चलनेवाली कथा-शैली की विशिष्टता को नगण्य स्थान देने के पक्ष में नहीं हैं।

पात्र

'गोदान' में उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के पात्र आये हैं। उच्चवर्ग में खन्ना जैसे पूंजीपति और रायसाहब ऐसे जमींदार हैं मध्यवर्ग में मेहता, मालती और ओंकारनाथ आदि हैं। मेहता अध्यापक हैं, मालती डाक्टर और ओंकारनाथ सम्पादक। वस्तुतः मध्यवर्ग प्रबुद्ध वर्ग है। निम्नवर्ग में होरी, गोबर, सिलिया, शोभा, हीरा भूरे आदि व्यक्ति आते हैं। इनमें किसान और श्रमिक सम्मिलित हैं। गोबर गाँव का किसान हैं, नगर में वह श्रमिक बन जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से 'गोदान' के पात्रों के दो स्पष्ट वर्ग हैं—शोषक और शोषित। प्रथम वर्ग में जमीन्दार, पूंजीपति और महाजन हैं। शोषित वर्ग में गांव के किसान और नगर के श्रमजीवी हैं। 'गोदान' के अधिकांश पात्र इन दो वर्गों में आ जाते हैं; मेहता और मालती अवश्य इनसे पृथक् हैं।

'गोदान' की पात्र-योजना में यथार्थवादी दृष्टि प्रमुख है। अन्य उपन्यासों के प्रेमशंकर और चक्रधर ऐसे 'कठपुतली' आदर्शवादी पात्रों की पद्धति पर इस उपन्यास में चरित्रांकन नहीं हुआ है। मेहता के चरित्र का आदर्शवादी अंश निर्जीव आदर्शवादी पात्रों से भिन्न प्रकार का है। उसमें आदर्शवादिता बौद्धिक वृत्ति है जो जीवन की सजीवता का परिहार नहीं करती। मेहता जितने आदर्शवादी हैं, उतने ही यथार्थवादी भी हैं। उनके जीवन-दर्शन में स्थूल भौतिकता उतनी ही है, जितनी सेवा-त्याग के प्रति निष्ठा। अतएव आदर्शवादी पात्रों में उनकी गणना नहीं की जा सकती। मेहता के अतिरिक्त अन्य पात्रों के विषय में यह विवाद उठता ही नहीं, क्योंकि उनकी यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियां स्पष्ट हैं।

उपन्यास के सामान्य पात्रों में स्वाभाविकता और सजीवता की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। विशेष रूप से ग्रामीण चरित्रों में यह दृष्टव्य है। ग्रामीण गौण चरित्र भी मुख्य पात्रों की भांति ही जीवन्तशक्ति से अनुप्राणित हैं। उनकी गति-शीलता सर्वत्र ध्यान आकर्षित करती है। उनकी सजीवता और

स्वाभाविता का आधार यथार्थवादी चरित्र चित्रण है जो जीवन की वस्तुस्थिति की अवहेलना नहीं करता। 'गोदान' के सामान्य चरित्रों में झुनिया, गोबर, पुनियां, सिलिया, पटेश्वरी, झिंगुरीसिंह, चुहिया आदि अनेक पात्र उल्लेख्य हैं। इन पात्रों की चरित्रगत प्रवृत्तियों के अतिरिक्त इनके मानसिक-गठन की अच्छी झाँकी भी मिल जाती है।

'गोदान' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है—

होरी किसान है जिसमें व्यावहारिक कृषक-बुद्धि का प्रधान्य है, जिसे उसकी व्यवहार-कुशलता कहा गया है, वह वस्तुतः उसकी व्यावहारिक कृषक बुद्धि है जो पग-पग पर उसे याद दिलाती रहती है कि 'जब दूसरों के पांवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पावों को सहलाने में ही कुशल है।' इसी निष्कर्ष के आधार पर वह जमींदार से मिलते-जुलते रहने में अपना हित देखता है। अतएव जिन आलोचकों ने उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि को उसकी व्यवहार कुशलता व्यक्ति का जीवन होरी के जीवन की भांति सतत् पराजय की दुखान्त कथा नहीं होता। उसकी कृषक-बुद्धि भी उसे सब परिस्थितियों में सहारा नहीं दे पाती। कुछ साधारण परिस्थितियों को यह अवश्य संभाल लेती है, किन्तु जीवन के मूल प्रश्नों की समस्या का सामाधान करने में पूर्णतया असफल है। प्रारम्भ से अंत तक होरी का चरित्र परिस्थतियों से जूझने और हारने की कथा है। उसकी पराजय का कारण समाज की शोषण वृत्ति का प्रहार ही नहीं है, अपितु उसकी व्यक्तिगत वृत्तियां और दुर्बलताएं भी हैं। सम्मिलित परिवार से पृथक् होने के उपरांत भी वह उसकी दुर्वह मर्यादा का बोझ ढोता रहा है। हीरा के भाग जाने पर वह पुनिया के खेतों की रोपाई करता है। इससे उसकी अपनी खेती की हानि होती है। इसी प्रकार झूठी मर्यादा की रक्षा के लिए वह रुपए उधार लेकर भी हीरा के घर को तलाशी से बचाना चाहता है। अलगौझा के उपरान्त भी वह रक्त का सम्बंध नहीं तोड़ता और भाइयों की विपत्तियाँ झेलने में अपनी दुरावस्था और बढ़ा लेता है। जिस प्रकार भाइयों द्वारा पीड़ित होने पर भी वह उनका साथ नहीं छोड़ता, उसी प्रकार समाज द्वारा उत्पीड़ित होने पर भी वह उससे पृथक् जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। समाज की प्रतिष्ठा और मर्यादा के विरुद्ध वह कोई कदम उठाने का साहस नहीं रखता क्योंकि उसका विश्वास है कि 'पंच में परमेश्वर रहते हैं।' इसी लिए वह

समाज का कष्टप्रद और न्यायविरुद्ध नियंत्रण आँख मींच कर स्वीकार कर लेता है। झुनिया को आश्रय देकर उसने समाज की मर्यादा भंग की थी। फलस्वरूप समाज का न्यायनिरत दण्ड स्वीकार करना अनिवार्य हो गया। उसकी पत्नी धनिया जब पञ्चों द्वारा निर्धारित दण्ड का विरोध करती है तो होरी उसके सामने हाथ जोड़ कर कहता है—'धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो दण्ड लगाती है, उसे सिर झुका कर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में तो फाँसी लगाना अच्छा है ...मैं बिरादरी से दगा न करूंगा।' वस्तुतः बिरादरी उसके जीवन से अविभाज्य है। यह उसके जीवन में वृक्ष की भांति जमाए हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। उसकी धारणा है कि बिरादरी से निकलकर उसका जीवन विशृंखल हो जायगा—तार-तार हो जायगा। इसीलिए अपने पैरों कुल्हाड़ी मारकर वह समाज का दण्ड स्वीकार करता है जिससे उसके परिवार को भूखों मरने की नौबत आ जाती है। उसके अन्धविश्वास उसकी दुरावस्था की वृद्धि करते रहते हैं और धर्मभीरु तो वह इतना है कि 'ईश्वर का रौद्ररूप सदैव सामने रहता' है। दातादीन ऐसे महाजन उसकी इस धर्मभीरुता से अनुचित लाभ उठाने में नहीं चूकते। इसी के कारण वह भोला के हाथ अपने बैल खोकर संताप सहता है। इन व्यक्तिगत वृत्तियों और दुर्बलताओं के कारण अथक परिश्रम और प्रयत्न के उपरान्त भी चिरस्थायी निर्धनता से उसका उद्धार नहीं हो पाता। इनके साथ ही जमींदार और महाजनों का निर्दय शोषण उसकी कमर तोड़ देता है। परिवार को सुखी-संतुष्ट देखने के निमित्त वह जीवन पर्यंत सक्रिय रहा, किन्तु सुख के दिन मृगतृष्णा के मायाजाल की भांति उससे दूर भागते गए। यहां बेचैनी बढ़ी। इस चोट ने उसकी समस्त निष्ठा और आस्था के टुकड़े टुकड़े कर दिए। 'आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानों उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाइयों, मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है! इस देह को चीर कर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ! उससे पूछो, कभी तूने विश्राम

के दर्शन किये, कभी तू छाँह में बैठा। उसपर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर लोभी, अधम! उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानो टूक-टूक उड़गया हो।' फिर भी उसने आशा न छोड़ी। किसान से श्रमिक बन गया किन्तु जीवन की कोई भी अभिलाषा पूर्ण होती न दिखाई दी। अनवरत परिश्रम की प्रक्रिया में जीवन शक्ति क्षीण होने लगी और जीवन का क्षत-विक्षत योद्धा संघर्ष शक्ति के अवसान में मृत्यु के अंधकार में समा गया।

होरी की पत्नी धनियाँ की आयु अभी छत्तीस वर्ष की ही है किन्तु 'सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयीं, सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग संवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था।' उसकी यह दशा आर्थिक-चिंता के कारण है। चिरस्थायी जीर्णावस्था ने जीवन के समस्त सुख छीन लिये थे। उसने अपनी अनुपस्थितियों को होरी की भांति दैवकृत मानकर चुप रहना नही सीखा है। उसके हृदय में इनके प्रति विद्रोह-भाव रहता है। पति को जमीन्दार की जी हुजूरी करके देखना उसे रुचिकर नहीं है। जिस गृहस्थी में उदरपूर्ति भी नही होती, उसके लिये जमीन्दार की खुशामद क्यों की जाय? यदि जमीन्दार के खेत उसने जोते हैं तो लगान भी तो दिया है! अतएव चापलूसी की क्या आवश्यकता? उसकी इस विद्रोहजनित तार्किकता में जीवन के व्यवहार पक्ष की पूर्ण उपेक्षा है। उस पर उसकी उग्र और प्रचण्ड प्रकृति ने उसकी दुर्दमनीयता को पूर्णकर दिया है। प्रतिवादियों का मुंह बन्द करने के लिये वह जिस चुनी शब्दावली का प्रयोग करती है, वह द्रष्टव्य है 'डाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये, सारी जिन्दगी मिट्टी में मिला दी, पालपोश कर सांड़ किया, और अब हम बेईमान हैं······ क्यों न रुपये रख लें? दो-दो संडों का ब्याह नहीं किया, गौना नहीं किया।' पर उसकी उग्रता ने उसके हृदय की कोमल वृत्तियों को नष्ट नहीं किया है। निराश्रित झुनियाँ को आपत्तिकाल में उसी ने आश्रय दिया था। उसकी पतिवत्सलता देखकर 'होरी की आँखें आर्द्र हो गयीं। धुनियाँ का यह मातृ-स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिंता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। होरी को इस बीते-यौवन में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आई' जिसने पचीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था········।' इसी प्रकार चारों ओर से

तिरस्कृत सिलिया को उसने अपने घर आश्रय दिया था। उसके हृदय की कोमलता अपने परिवार तक ही सीमित नहीं है, अपितु पीड़ित मानवता के लिये भी वरदान सदृश्य है। वस्तुतः वह कोमल भी है, प्रचण्ड भी। उसका हृदय विशाल है और मनोवृत्ति उदार। वह कर्त्तव्यनिष्ठा पति की सहगामिनी है। सुख-दुख की प्रत्येक परिस्थिति में पति के साथ है। उसकी मानापमान की भावना तीव्र है। सज्जनता और सहृदयता के सामने सिर झुकाती है, विपत्ति और कष्ट का डट कर सामना करती है। होरी के शब्दों में उसके चरित्र की संक्षिप्त व्याख्या उल्लेख्य है—'सेवा और त्याग की देवी, जबान की तेज, पर मोम जैसा हृदय, पैसे—पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा रक्षा के लिये अपना सर्वस्व होम कर देने को तैय्यार।'

× डाक्टर मेहता विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र के अध्यापक हैं। अतः उनका चरित्र विचार-प्रधान है। उनके विचारों में गम्भीरता और मौलिकता है। मेहता के कुछ विचार युग-विरुद्ध हैं, पर उन्हें व्यक्त करने में रंचमात्र भी नहीं हिचकिचाते। सामाजिक समता के आधुनिक युग में भी उनका विचार है कि 'समाज में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे और उन्हें हमेशा रहना चाहिये। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव जाति के सर्वनाश का कारण होगा।' इस भेदवादी नीति के समर्थन के लिये उनका तर्क आधार हीन नही है। समानता के सिद्धांत को वह अप्राकृतिक मानते हैं और कहते हैं-'धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से तो नहीं होता।' इसी प्रकार स्त्रियों के अधिकार सम्बन्धी आन्दोलन का विरोध करते हैं और मोक्ष या तलाक के विरोधी हैं। नारी सम्बन्धी उनका आदर्श भी आधुनिक विचारधारा के प्रतिकूल है, अतएव उनके विचारों को प्रतिक्रियावादी या रूढ़ कहा जा सकता है, पर उनकी ईमानदारी पर संदेह नहीं किया जा सकता। ईमानदारी और सच्चाई के कारण ही वह कथनी-करनी में एकता के अभिलाषी हैं। सिद्धांत कुछ और कर्म कुछ और की नीति उन्हें अप्रिय है और वह इसे पाखण्ड कहते हैं। उनका कहना है कि 'हमारा जीवन हमारे सिद्धांतों के अनुकूल हो……… मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्युनिष्टों की सी, मगर जीवन है रईसों का—सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से

भरा हुआ।' इसी सिद्धांत के आधार पर वह कृत्रिम जीवन के विरोधी हैं जिसमें विचार और आचरण परस्पर प्रतिकूल रहते हैं। अपने सिद्धांतों को मेहता बड़ी दृढ़ता के साथ प्रतिपादित करते हैं, और स्पष्टवादिता में विश्वास रखते हैं। उनका जीवन स्वध्याय और चिन्तन में गुजरा था 'और सब कुछ कर चुकने के बाद और आत्मवाद तथा अनात्मवाद की खूब छान-बीन कर लेने पर वह इसी तत्व पर पहुंच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के बीच में जो सेवा मार्ग है······वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था। यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है·········ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव-जीवन की एकता। एकात्मवाद, या सर्वात्मवाद या अहिंसा तत्व को वह आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, भौतिक दृष्टि से ही देखते थे······मानव समाज की एकता में मेहता का दृढ़ विश्वास था, मगर इस विश्वास के लिए उन्हें ईश्वर तत्व के मानने की जरूरत न मालूम होती थी। उनका मानव प्रेम इस आधार पर अवलम्बित न था कि प्राणी मात्र में एक आत्मा का निवास है।' उनका उद्देश्य मानव-जाति को एक दूसरे के समीप लाना, भेद-भाव को मिटाना और भ्रातृ-भाव को दृढ़ करना था। 'यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा से इस तरह जम गयी थी उसके लिये किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी।' अपने उद्देश्य के निमित्त उन्होंने सेवा-पथ ग्रहण किया।

मालती का चरित्र-चित्रण करते हुये उपन्यासकार ने लिखा है कि वह 'नवयुग की साक्षात् प्रतिमा है। गात कोमल, पर चपलता कूट कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं। मेकअप में प्रवीण, बात की हाजिर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया हो।' उसकी इन चरित्रगत प्रवृत्तियों में उस विदेशी शिक्षा का प्रभाव लक्षित होता होता है जिसे उसने इंगलैण्ड में प्राप्त किया है। पर बाह्य प्रदर्शन ही उसकी प्रवृत्ति नहीं है। इसे स्पष्ट करते हुये उपन्यासकार ने आगे लिखा है—'मालती

बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है। केवल गुड़ खाकर कौन जो सकता है। और जिये भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हंसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिये नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिये करे। नहीं, वह इसलिये चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हलका हो जाता है।' यहाँ उसके चरित्र के दोमुखी अन्तर्विधान का परिचय मिल जाता है। मित्रों के मध्य वह हास-विलास, आमोद-प्रमोद में मग्न रहती है; घर में दायित्व प्रधान है। मन बहलाव के लिए उसे मित्रों और प्रसंशकों का साथ प्रिय है, पर यह उसे दायित्व और कर्त्तव्य से विमुख नहीं करता। पिता के अपाहिज हो जाने पर वह समस्त परिवार का पोषण करती है और प्रातः से रात्रि पर्यन्त व्यस्त रहती है। उसकी विलासप्रियता का एक मुख्य कारण था उसके विलासी मित्र। अब तक जिन पुरुषों से उसका परिचय था वे उसकी विलासवृत्ति को ही उत्तेजित करते थे; किन्तु जब वह मेहता ऐसे मनस्वी पुरुष के संसर्ग में आई तो उसके चरित्र में परिवर्तन प्रकट हुआ। मालती के 'परिष्कृत जीवन में बुद्धि की प्रखरता और विचारों की दृढ़ता ही सबसे ऊँची वस्तु थी। धन और ऐश्वर्य को तो वह केवल खिलौना समझती थी। रूप में भी अब उसके लिए विशेष आकर्षण न था...... ...उसको तो अब बुद्धि - शक्ति ही अपनी ओर झुका सकती थी, जिसके आश्रय में उसमें आत्म-विश्वास जगे, अपने विकास की प्रेरणा मिले, अपने में शक्ति का सञ्चार हो, अपने जीवन की सार्थकता का ज्ञान हो। मेहता के बुद्धिबल और तेजस्विता ने उसके ऊपर अपनी मुहर लगा दी थी और तब से वह अपना संस्कार करती चली आती थी। जिस प्रेरक शक्ति की उसे जरूरत थी, वह मिल गई थी और अज्ञात रूप में उसे गति और शक्ति दे रही थी।' मेहता की प्रेरक शक्ति ने उसे जीवन का नया आदर्श दिया था जिसे ग्रहण कर वह सेवा और त्याग के पथ पर अग्रसर हुई। उसने इसके निर्वाह का सफल प्रयत्न किया और अपनी कर्मण्य मानवता के बल पर नारीत्व के उच्चादर्श का स्पर्श करने लगी। इस ओर मालती की बढ़ती निष्ठा देखकर मेहता उस पर मुग्ध

हो गए। उसका चरित्र—उत्कर्ष उन्हें बलपूर्वक अपनी ओर खींच रहा था। उन्हें मालती के बिना अपना जीवन अपूर्ण ज्ञात होने लगा। जब उन्हों ने मालती से याचना करनी चाही, तब उसने आर्द्र होकर कहा—'तुम जानते हो, तुमसे अधिक निकट संसार में मेरा कोई-दूसरा नही है। मैंने बहुत दिन हुये, अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरू हो ....तुमने आकर प्रेरणा दी, स्थिरता दी.........तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया। यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिये काफी है। यह मेरी पूर्णता है।' मेहता के प्रेम और विश्वास से पूर्णत्व पाकर मालती ने लोकसेवा के निमित्त अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। वह मेहता जैसे विद्या-बुद्धि सम्पन्न प्रतिभावन् पुरुष की आत्मा को गृहस्थी के जाल में जकड़ कर उसकी भावी संभावनायें नष्ट नहीं करना चाहती। वह पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए मेहता जैसे साधकों की आवश्यकता का अनुभव करती है, जो आत्मविस्तार से दलित और संत्रस्त समाज को अपना ले। अतएव उसने मेहता से आग्रह किया कि वे अपने साथ उसे भी लोकमुक्ति के गंतव्य पथ पर ले चले। मालती के आग्रह को मेहता ने स्वीकार कर लिया।

रायसाहब जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि हैं। इस वर्ग के गुण-अवगुण उनमें वर्तमान हैं। अपने वर्ग के व्यक्तियों को भाँति उन्हें भी मिथ्या-प्रतिष्ठा का सर्वदा ध्यान रहता है। अपनी हैसियत को वह बढ़ा कर दिखाना चाहते हैं। सिद्धांत रूप में वह कृषकों के शुभेच्छु हैं किंतु लगान, बेदखली और बेगार का क्रम पूर्ववत् चलने देते हैं। मेहता ने जब उनकी दोरंगी नीति की आलोचना की, तब उन्होंने अपने वातावरण से ऊपर उठने में असमर्थता प्रकट की—'मैं उसी वातावरण में पला हूँ... ...मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो करूँ, विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूं और यह मानने लग गया हूं कि जब तक किसानों को ये रियायतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नहीं सकती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रायसाहब के विचारों और कर्म में सामञ्जस्य नहीं है। उनकी दोरंगी नीति अनावृत तब हो जाती है, जब अपने को राष्ट्रवादी कहते

हुये भी वह शासकों के कृपापात्र बने रहना चाहते हैं। इसी प्रकार किसानों की श्रद्धा अर्जित कर उन्हें ठगने के लिये ही उन्होंने सत्याग्रह संग्राम में भाग लिया था। उनकी महत्वाकांक्षायें अनेक हैं और उनके जीवन-काल में ही पूर्ण हो जाती हैं, किंतु उनके सुख का स्वर्ग भी उनके जीवन में ही टूटने लगता है। पुत्र विद्रोह कर उठता है, पुत्री-दमाद में सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। मानसिक अशांति से मुक्त होने की निमित्त और उपासना की ओर झुके, किंतु उन्हें शांति न मिली। 'वह मोह को छोड़ना चाहते थे; पर मोह उन्हें न छोड़ता था और इस खींचतान में उन्हें अपमान, ग्लानि और अशांति से छुटकारा न मिलता था।' मर्यादापालन और ऐश्वर्यमय जीवन-यापन के लिये कृषकों पर अत्याचार किया जाता था, जिससे उन्हें घृणा हो चली थी। रायसाहब के जीवन की ट्रैजेडी उनके इन शब्दों में भली-भाँति व्यक्त हुई है——'लेकिन जीवन की ट्रैजेडी और इसके सिवा क्या है कि आपकी आत्मा जो काम करना नहीं चाहती, वही आप को करना पड़े।' इसे उनके चरित्र की सफाई भी कहा जा सकता है जिससे उनकी दोरंगी नीति का यथेष्ट परिमार्जन हो जाता है।

खन्ना पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है। उसमें अपने वर्ग की अर्थ-लोलुपता और धनोंन्मादवृति इस सीमा तक बढ़ गई है कि वह पारवारिक दयित्व के प्रति उपेक्षा से काम लेता है। शिष्टता उसके लिये संसार को ठगने का साधन है; मन का संस्कार नहीं। अपने ग्राहकों के साथ वह जितना मीठा और नम्र है, घर में उतना ही कटु और उद्दण्ड। अपनी पत्नी गोविंदी की वह जिस रूप में प्रताड़ना और तिरस्कार करता है, वह उनकी अन्तर्वृत्ति का परिचायक है। रायसाहब उनके मित्रों में से हैं; पर उन्हें अपने बैंक से रूपये उधार दिलाने के पहले वह अपना कमीशन निश्चित कर लेता है। उसने कहा भी हैं—'लेकिन व्यापार एक दूसरा ही क्षेत्र है...... बिजनेस इज बिजनेस ,......... यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं।' उसकी यही व्यावसायिकता उसके चरित्र के उत्तम अंश पर सर्वदा हावी रहती है जिसके फलस्वरूप वह निन्द्यतम उपायों का अवलम्ब लेता है। एक पक्के पूंजीपति की भाँति ही वह धन का उपासक है और कहता है—'हमारी सारी आत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों के

सामञ्जस्य का नाम धन हैं, पर मिल जाने के उपरांत उसके जीवन-दर्शन को धक्का लगा और अपनी भूल ज्ञात हुई।

गोविंदी खन्ना की पत्नी है। उसकी और खन्ना की प्रवृत्तियों में बड़ा पार्थक्य है। वह पति की भाँति विलासप्रिय और धनलोलुप नहीं है। खन्ना की अपार सम्पत्ति जैसे उसकी आत्मा को कुचल डालती है। धन को वह समस्त अनर्थों का मूल समझती है। उसका विचार है कि धन के मोहजाल में पड़कर मनुष्य अपनी आत्मा को भूल गया है और यदि 'धन को खोकर हम अपनी आत्मा को पा सकें तो यह कोई मंहगा सौदा नहीं है। ऐश्वर्य और धन के आडम्बर से मुक्त होने के लिये उसका हृदय ललचाया करता है। पति के धन का उसकी दृष्टि में इसलिये भी मूल्य नहीं है कि धनोंन्माद के कारण भी खन्ना उसकी उपेक्षा करता है। खन्ना की उपेक्षा के कारण समस्त धन-संपति खारे पानी के समान है जिस के मध्य वह प्यासीं पड़ी रहती है। पर पति को प्रतिकूलता उसकी पति-परायणता में बाधक नहीं है। खन्ना द्वारा उत्पीड़ित और तिरस्कृत होकर भी वह उसके विरुद्ध एक शब्द नहीं कहती। खन्ना वेश्यागामी है, मदिरा पीता है, उसे मारता पीटता है, उसकी कविताओं का मजाक उड़ाता है, उसी के सम्मुख मालती पर प्रेम-प्रदर्शित करता है—यह सब होने पर भी खन्ना उसका सर्वस्व था। वह दलिता और अपमानिता होकर भी खन्ना की लौंड़ी थी। उनसे लड़ेगी, जलेगी, रोयेगी; पर रहेगी उन्हीं की। उनसे पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकती थी।' वस्तुतः वह नारीत्व के भारतीय आदर्शों की प्रतिमूर्ति है जिसमें मेहता जैसे विचारशील व्यक्ति नारी-धर्म का सच्चा आदर्श देखते हैं। गोविंदी के विषय में उन्होंने कहा है-'वह एक लखपती की पत्नी है; हर विलास को तुच्छ समझती है जो उपेक्षा और अनादर सहकर भी अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होती, जो ममत्व की वेदी पर अपने को बलिदान करती है, जिसके लिये त्याग सबसे बड़ा अधिकार है, और जो इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजी जाय!' गोविंदी का यह रूप खन्ना की समझ में तब आया जब मिल के रूप में उनका सर्वस्व स्वाहा हो जाने पर उन्हें सच्ची सांत्वना और सहानुभूति उससे ही प्राप्त हुई।

सत्तर साल के वृद्ध दातादीन गांव के उन मुख्य व्यक्तियों में से है

जो परोपजीवी हैं और शोषण के आधार पर फूलते-फलते हैं। वह पुरोहित भी हैं और सूदखोर महाजन भी। उधार रुपयों पर खूब कसकर सूद लेते हैं। होरी के शोषण में उनका मुख्य हाथ था। दातादीन अपने मजदूरों से निर्दयतापूर्वक काम लेते हैं। होरी उनके खेत में मजदूरी करता है, पेट भर भोजन न मिलने के कारण वह तेजी से काम नहीं कर पाता। दातादीन की प्रताड़ना पर द्रुतगति से काम करता हुआ वह अचेत हो जाता है। इसी प्रकार वह धनिया को भी साँस नहीं लेने देते। कहते हैं-'पैसे देते हैं, काम करने के लिये, दम मारने के लिये नहीं। दम लेना है, तो घर जा कर दम लो।' उपन्यासकार ने उनकी चरित्र-व्याख्या करते हुये यथार्थ ही लिखा है-'वह इन गांव के नारद थे, यहाँ की वहाँ, वहाँ की यहाँ, यही उनका व्यवसाय था। वह चोरी न करते थे, उसमें जान जोखिम था, पर चोरी के माल में हिस्सा के बटाने के समय अवश्य पहुंच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न पड़ने देते थे। जमींदार को आज तक लगान की एक पाई न दी थी, कुर्की आती, तो कुएँ में गिरने चलते, नोखेराम के लिए कुछ न बनता मगर असामियों को सूद पर ऊधार रुपये देते थे। किसी स्त्री को आभूषण बनवाना है, दातादीन उसकी सेवा के लिए हाजिर हैं। शादी-ब्याह तय करने में उन्हे बड़ा आनंद आता है, यश भी मिलता है, दक्षिणा भी मिलता है। बीमारी में दवा-दारू भी करते हैं, झाड़-फूंक भी, जैसी मरीज की इच्छा हो। और सभा चतुर इतने हैं कि जवानों में जवान बन जाते हैं, बालको में बालक और बूढ़ों में बूढ़े। चोर के मित्र हैं और साह के भी। गाँव में किसी को उन पर विश्वास नहीं, पर उनकी वाणी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि लोग बार-बार धोखा खाकर भी उन्हीं के शरण जाते हैं।' उनकी व्यवहार कुशलता प्रत्येक अवसर से लाभ उठाती है और इसीलिए उनकी निर्दय सूदखोरी के बावजूद किसान उन्हीं के जाल में फँसता है।

समाज

'गोदान' में ग्रामीण और नागरिक समाज की अनेक समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। इन समस्याओं के सामाजिक और आर्थिक पहलू पर उपन्यासकार ने विशेष ध्यान दिया है। उसने बड़े व्यापकत्व के साथ उन

प्रश्नों पर विचार किया है जो हमारे जीवन और समाज को प्रायः आंदोलित किया करते हैं। वह यह नहीं भूलता कि समाज-मरण का प्रश्न उसकी आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध है) जबकि नागरिक समाज में आर्थिक प्रश्न के साथ ही संक्रान्तिकालीन संस्कृति की अनेक विवादास्पद समस्याओं ने सिर ऊँचा कर रखा है। इन समस्याओं ने नगर के सामाजिक जीवन को ही अधिक प्रभावित किया है, आर्थिक जीवन को कम। यह सच है कि आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों को पूर्णतया पृथक् नहीं किया जा सकता, पर 'गोदान' के सम्पूर्ण सामाजिक कैनवेस में—विशेषरूप से नगर के समाज-चित्रण में—ये सम्बन्ध दृष्टिगत नहीं होते।

ग्रामीण-समाज के चित्रण में उपन्यासकार ने सम्मिलित परिवार प्रथा की महत्वपूर्ण समस्या पर दृष्टिपात किया है। ग्राम का पारिवारिक जीवन इस प्रथा का भग्नावशेष मात्र है। इसके प्रति ग्रामीण प्राणियों का मोह कम नहीं है, किंतु वर्तमान आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों में यह संभव नहीं है कि सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा अक्षुण्ण रहे। वस्तुतः इस प्रथा का लोप हो रहा है और 'बटवारे का मरज भी बढ़ता जाता था। आपस में इतना वैमनस्य था कि शायद ही कोई दो भाई एक साथ रहते हों। उनकी इस दुर्दशा का कारण बहुत कुछ उनकी संकीर्णता और स्वार्थपरता है।' प्रेमचंद ने दिखाया है कि अलगौझा एक साधारण सी बात है। किसी परिवार के सदस्यों में आपस में नहीं पटती, वैमनस्य बढ़ता है और अन्त में कलह होकर अलग होना पड़ता है। पृथक् होने के बाद भी प्रायः झगड़े हुआ करते हैं, जैसे कि होरी और हीरा के परिवार में हुआ करते थे। उपन्यासकार ने सम्मिलित परिवार प्रथा के टूटने का कारण संकीर्णता और स्वार्थपरता बताया है। वह मूल आर्थिक कारण की पर्याप्त व्याख्या नहीं करता जो संकीर्णता और स्वार्थपरता का वास्तविक कारण है। इसीलिए उसका समस्या-चित्रण मूलतः सही नहीं है।

ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी बहुत उदात्त नहीं है। उन की महत्वपूर्ण परम्पराएँ भी उनके संकीर्ण दृष्टिकोण और रूढ़िवादी व्यवस्था के कारण निष्प्राण हो गई हैं। जीवन का उल्लास हृदय की वृत्ति नहीं है, परिस्थितियों को भूलने का प्रयत्न है। उनकी परिस्थितियों ने उनके जीवन का रस निचोड़ लिया है और जीवन के निम्न स्तरों में और भी जकड़ दिया है।

आपस में लड़-भिड़ और गाली-गलौज कर, अन्धविश्वासों को पूजते हुए, भाग्य को रोते हुए वे अपने दिन व्यतीत करते हैं। उनकी सभ्यता का प्रकाश, पुत्र पिता को और पत्नी पति को जूतों से पीटकर करते हैं। उनकी शिक्षा के अभाव में उनकी मूर्खता उन्हें दूसरों के शोषण का शिकार बनाया करती है। यह सब होने पर भी वे किसी से असंतुष्ट नहीं हैं, किसी प्रकार का विद्रोह-भाव उनमें नहीं उठता, क्योंकि वे जड़ संस्कृति से सम्बद्ध हैं।

गाँव में धर्म-विश्वास अन्धविश्वास है। धर्म के नाम पर विशेषाधिकार प्राप्त जातियाँ नीची जाति का शोषण करती हैं। दातादीन ऐसे व्यक्ति कृषकों के अंधविश्वास और धर्म भीरुता से पूरा लाभ उठाते हैं। उनका धर्म पाखंड को प्रश्रय देता है। बड़े से बड़ा कुकर्मी भी 'नेमी-धर्मी' बनकर समाज का पूज्य बन सकता है। धर्म का मूल है दया। उसके प्रति इन कपट धर्मियों की अवस्था नहीं है। ये वाह्याचार पालन को मुख्य समझते हैं और पूजा-पाठ चौका-चूल्हा और कथा-व्रत आदि आचार-विचार को मूल-तत्त्व। दातादीन के इस कथन से गाँव के धर्म का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है— 'कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले! कितनों को जानता हूँ, जो कभी सन्ध्या-वन्दन नहीं करते, न उन्हें धरम से मतलब, न करम से, न कथा से मतलब, न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादशी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान-पूजन किए मुँह में पानी नहीं डाला। नेम का निभाना कठिन है। कोई बता दे कि हमने कभी बाजार को कोई चीज़ खायी हो, या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ।' इससे गाँव के धर्म-विश्वास का परिचय मिल जाता है।

ग्रामीण-समाज की आर्थिक दशा गिरी हुई है। इने-गिने मुखियों के अतिरिक्त प्रायः समस्त प्राणी पैसे-पैसे को मोहताज हैं। किसान को लगान से ही मुक्ति नहीं मिलती, उस पर बेदखली, बेगार नजराना आदि उसकी दुरावस्था को पूर्ण करते हैं। धरती की छाती चीरकर अन्न पैदा करने वाला भूखों मरता है; उसके परिश्रम का लाभ दूसरे व्यक्ति उठाते हैं। पेट में भोजन नहीं है, तन पर कपड़ा नहीं है; फिर भी अनवरत परिश्रम के पाट में पिसते-पिसते एक दिन जीवन का अन्त हो जाता है। कृषि की मर्यादा पर प्राण देने

वाला किसान आर्थिक उत्पीड़न से आक्रान्त होकर मजदूरी का सहारा लेता है, पर महाजनों और जमींदार द्वारा शोषित उसका रक्तहीन शरीर अधिक दिन साथ नहीं देता। किसान के आर्थिक शोषण की यह कथा होरी के चरित्र द्वारा भलीभाँति व्यक्त होती है। और यह होरी की ही कहानी नहीं है, सारे गाँव की जीवनगाथा है। 'गोदान' के ग्राम-जीवन का यह चित्र द्रष्टव्य है — 'सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानों उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठ-पुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनके तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमङ्ग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो। जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है; मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत-कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिंदों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है। उस में उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मनो कूड़ा जमा है, दुर्गंध उड़ रही है; मगर उनकी नाक में न गंध है, न आँखों में ज्योति। सरे-शाम से द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं, मगर किसी को गम नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इञ्जिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी-चोकर के बगैर नाद में मुँह नहीं डालते; मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुठ्ठी भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है, जब आदमी शर्म और इज्जत को भी भूल जाता है।' यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक-शोषण ने ग्राम निवासियों के जीवन की समस्या नितान्त जटिल कर दी है। उपन्यासकार का यह मत ठीक ही है कि उनके नैतिक पतन का दायित्व उनकी विषम परिस्थितियों पर है।

नगर की सामाजिक मान्यताओं में प्राचीन और नवीन का संघर्ष है। प्राचीन मान्यताओं के प्रति नागरिक-समाज का विश्वास उठ रहा है। पर कुछ

व्यक्ति ऐसे भी हैं जो प्राचीन आदर्शों पर दृढ़ आस्था रखते हैं। यह प्राचीन और नवीन का संघर्ष प्रेम और विवाह ऐसे प्रश्नों को सर्वाधिक प्रभावित करता है। स्त्री-पुरुष का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है जो विवाह के प्रश्न को सामाजिक-दृष्टि की अपेक्षा वैयक्तिक-दृष्टि से देखता है। यह वर्ग पाश्चात्य शिक्षा और सामाजिक मान्यताओं से अत्यन्त प्रभावित है। यह पुरुष के समान नारी को भी जीवन साथी चुनने में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसका दृष्टिकोण सरोज के इस कथन से समझा जा सकता है—'हम पुरुषों से सलाह नहीं मांगतीं। अगर वह अपने बारे में स्वतंत्र हैं, तो स्त्रियां भी अपने विषय में स्वतंत्र हैं। युवतियां अब विवाह को अपना पेशा नहीं बनाना चाहतीं। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।' यही सरोज रुद्रपाल को अपना जीवन-साथी चुनकर परम्परानुमोदित विवाह-प्रथा को तिरस्कृत कर जाती है। इसी प्रकार नारियों के एक वर्ग ने पुरुषों की समानता का बीड़ा उठाया है। यह वर्ग राजनीतिक और सामाजिक समानाधिकार का अधिकारी है। पुरुषों का एक वर्ग इसका समर्थन करता है; दूसरा विरोध। पंडित ओंकारनाथ ऐसे व्यक्ति समानाधिकार के समर्थक हैं, किंतु उनमें गम्भीर चिन्तन और ईमानदारी का अभाव है। मेहता इसके विरोधी हैं। यह मानते हुए कि पुरुष ने अपने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग किया है, वह नारी को उसके अनुकृति में अपना नैसर्गिक रूप विकृत करते नहीं देखना चाहते। इस सम्बंध में स्त्रियों के भी दो वर्ग हैं—एक नवीन समाज-धर्म का समर्थक, दूसरा प्राचीन आदर्शों का प्रतिनिधि। मालती की बहन सरोज प्रथम वर्ग की प्रतिनिधि है और खन्ना की पत्नी गोबिन्दी द्वितीय वर्ग की। नवीन और प्राचीन का यह संघर्ष नगर की संक्रांतिकालीन सभ्यता का अनिवार्य अंग बन गया है।

आर्थिक दृष्टि से नगर निवासियों के तीन वर्ग हैं। उच्च वर्ग या पूंजी पति वर्ग, जिसने शोषण के आधार पर अपने ऐश्वर्य-विलास का स्वर्ग बना रखा है। खन्ना इसके प्रतिनिधि हैं। दूसरा है मध्यवर्ग। इसमें डाक्टर प्रोफेसर और सम्पादक ऐसे व्यक्ति आते हैं। 'गोदान' के मालती, मेहता और ओंकारनाथ मध्यवर्ग के प्राणी हैं। ओंकारनाथ के जीवन-चित्रण में प्रेमचंद ने मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों को यथार्थ रूप में दिखाया है। तीसरा है निम्न वर्ग। इसकी आर्थिक विपन्नता का अन्त नहीं। इसमें मिल के

मजदूर तथा अन्य श्रमजीवी सम्मिलित हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नागरिक जीवन में घोर आर्थिक विषमता है। इस विषमता के कारण नगर के पूँजीपतियों और श्रमिकों में प्रायः संघर्ष चला करता है। गाँव के किसानों की भांति ही नगर का श्रमिक वर्ग अनवरत परिश्रम करके भी अपनी आर्थिक दुरावस्था में सुधार नहीं कर पाता। दोनों ही शोषण के निर्दय चक्र में पिस रहे हैं। उनके भाग्य में अँधेरे में जीना और अँधेरे में मरना लिखा है। नगर में श्रमजीवियों के विषय में मेहता ने खन्ना से कहा था—'आपके मजदूर बिलों में रहते हैं—गंदे बदबूदार बिलों में—जहाँ आप एक मिनट भी रह जाएँ तो आपको कै हो जाय। कपड़े जो वह पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना तो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायगा।' इन दुर्परिस्थितियों में रहकर भी मजदूर को शांति नहीं मिलती। पूँजीपतियों की प्रपीड़न-पद्धति से उसका असन्तोष बढ़ जाता है और उसे हड़ताल का सहारा लेना पड़ता है। इससे भी चोट उसी को झेलनी पड़ती है क्योंकि उसके मध्यवर्गीय हिमायती अवसर पर धोखा दे जाते हैं। उपन्यासकार ने खन्ना की शक्कर की मिल की हड़ताल में यही चित्रित किया है।

उद्देश्य

'गोदान' भारतीय कृषक-जीवन की विपत्ति-कथा है। कृषक-वर्ग की दुरावस्था का सजीव चित्रण इसके प्रारम्भ से अन्त तक हुआ है। जीवन और मृत्यु दोनों में उसका शोषण होता है। 'भारतीय किसान अपनी मृत्यु, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी भावना और अपनी जिन्दगी सभी के द्वारा पीड़ित होता है। वह अपने शोषकों द्वारा लूटा और कलंकित किया जाता है। वे लोग उसे बेदखल करते और उसका अधिकार छीन लेते हैं। श्री मदनगोपाल ने उसके चरित्र का विश्लेषण विस्तार से किया है, जिसे एक वाक्य में इस प्रकार रखा जा सकता है कि वह पैदा हुआ, कष्ट भोगता रहा और मर गया।' किसानों के उत्पीड़न और शोषण के चित्रण में उपन्यासकार ने महाजन और जमींदार के दुष्कृत्यों का विशद अङ्कन किया है। शोषित वर्ग का चित्रण शोषक वर्ग से पृथक् नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा होता भी है तो चित्र की प्रभावशक्ति कम पड़ जाती है। 'गोदान' में किसान का चित्रण है, तो उसके शोषणकर्त्ताओं का भी। इसीलिए उपन्यास का उद्देश्य प्रभावपुष्ट है।

नागरिक जीवन के चरित्रांकन में उपन्यासकार ने पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ से उत्पन्न समस्याओं पर विचार किया है। नगर का वर्ग-विशेष बड़ी तेजी से पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होकर भारतीय मान्यताओं को छोड़ता जा रहा है। उसके राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो गया है। उपन्यासकार ने 'पश्चिम की अन्धी नकल' की सबल आलोचना की है। वह पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को ग्रहण करने का विरोध नहीं करता, वह विरोध करता है पश्चिम के अन्धानुकरण का, जिसके प्रभाव से भारतीय जीवन के अमूल्य तत्त्व सेवा और त्याग विस्मृत होते जा रहे हैं। उसका यह मन्तव्य है कि त्याग और सेवा के पथ पर चलकर ही आत्मशांति और लोक-मंगल की प्राप्ति सम्भव है। उपन्यासकार ने जिस 'कर्मण्य मानवता' में अपना विश्वास प्रकट किया है, उसकी मूलवृत्ति त्याग और सेवा है।

१२

मंगल-सूत्र

'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अपूर्ण उपन्यास है। इसके चार परिच्छेद ही लिखे जा सके थे कि उपन्यासकार का देहावसान हो गया। उसकी मृत्यु के कई वर्ष उपरांत यह अधूरा उपन्यास प्रकाशित हुआ।

इसका कथासार इस प्रकार है—देवकुमार की साहित्य-साधना ने उन्हें यश दिया, किंतु आर्थिक-कष्ट से मुक्ति न मिली। उनके आत्मसंतोष के लिए यश ही पर्याप्त था। किंतु उनका बड़ा पुत्र संतकुमार घर की परिस्थितियों से संतुष्ट न था। उसकी महत्वाकांक्षा और पिता की संतोषवृत्ति में कोई साम्य नहीं। वह देवकुमार द्वारा नगण्य मूल्य पर बेची सम्पत्ति वापस लेना चाहता है। देवकुमार अपने पुत्र से सहमत नहीं हैं और न वह इस सम्बंध में कानून का आश्रय लेना चाहते हैं; पर परिस्थितियाँ उन्हें सोचने के लिए बाध्य करती हैं और इस अनीति और अन्याय पर आधारित समाज-व्यवस्था में धर्म-अधर्म का विचार उन्हें आत्मघात मालूम पड़ता है। यह निष्कर्ष उन्हें मुकदमा दायर करने के लिए उत्साहित करता है। उनकी साठवीं वर्षगाँठ में साहित्य प्रेमियों से भेंट रूप में प्राप्त धन का इस मुकदमें में व्यय किया जाना निश्चित हुआ.........। 'मगलसूत्र' में मध्यवर्ग के नागरिक पात्र प्रमुख हैं। मुख्य पात्रों की रूपरेखा इस प्रकार है :—

देवकुमार—विख्यात लेखक। साठ वर्ष तक साहित्य-साधना के उपरांत भी आर्थिक संकटों से मुक्ति नहीं मिली। फलस्वरूप पूर्वजों की सम्पत्ति बेंचनी पड़ी

संतकुमार—देवकुमार का बड़ा लड़का। वकालत करता है। महत्वाकाँक्षी और स्वार्थी। अपने पिता की संतोषवृत्ति से असतुष्ट। अपनी पत्नी पुष्पा का तिरस्कार करता है और स्वार्थसिद्धि के लिये जज की लड़की तिब्बी से प्रेमनाट्य करता है।

साधुकुमार—देवकुमार का छोटा लड़का। आदर्शवादी सुशील और नम्र। ऊँचे कद का सुगठित, रूपवान, गोरा, मीठे वचन बोलने वाला, सौम्य युवक था। '... जिसने सत्याग्रह-आंदोलन में पढ़ना छोड़ दिया, दो बार जेल हो आया, जेलर के कटु वचन सुनकर उसकी छाती पर सवार हो गया? और इस उद्दण्डता की सजा में तीन महीने काल कोठरी में रहा।' वह वर्तमान समाज की समता वर्जित व्यवस्था की कुरूपता भलीभाँति समझता है। उसका विचार है कि दरिद्र और निर्धन देश में केवल स्वार्थांध व्यक्ति ही धनी हो सकता है। वह जीवन का सदुपयोग करना चाहता है।

सिनहा—संतकुमार का मित्र। पेशा है मुकदमें बनाना। व्यक्तित्व में, 'गोरे-चिट्टे आदमी, ऊँचा कद, एकहरा बदन, बड़े-बड़े बाल पीछे को कंघी ऐंछे हुए, मूँछे साफ, आँखों पर ऐनक, ओठों पर सिगार, चेहरे पर प्रतिभा का प्रकाश, आँखों में अभिमान, ऐसा जान पड़ता है कोई बड़ा रईस है' किंतु परले सिरे का धूर्त है। स्वार्थसिद्धि के लिए सन्तकुमार को तिब्बी (त्रिवेणी) से प्रेमनाट्य की सलाह देता है और स्वयं सिविल-सर्जन की पुत्री को जाल में फाँसे हैं।

गिरधरदास—शक्कर मिल का मालिक। नये युग का महाजन। शोषणवृत्ति को भद्रता के बाने में छिपाये रहता है। 'अँग्रेजी में कुशल, कानून में चतुर, राजनीति में भाग लेने वाले, कम्पनियों के हिस्से लेते थे और बाज़ार अच्छा देखकर बेच देते थे'

शैव्या—देवकुमार की पत्नी। गृहस्थी की चिंताओं से जलकर पति की भर्त्सना करती है, किन्तु अपने पुत्र सन्तकुमार द्वारा पति का निरादर नहीं सहती। वह जानती है कि उसके पति ने चाहे धन न कमाया हो किन्तु यश अवश्य अर्जित किया है।

पुष्पा—संतकुमार की पत्नी 'पुष्पा बिल्कुल फूल-सी है; सुंदर, नाज़ुक, हल्की-फुल्की, लजाधुर, लेकिन एक नम्बर की आत्माभिमानिनी है।' पति द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होने पर उसके स्वाभिमान को चोट लगती है। वह स्त्री के अधिकारों की समर्थक है और समाज द्वारा नारी का शोषण उससे छिपा नहीं है। वह यह जानती है कि पुरुष की आश्रिता होने के कारण स्त्री को उसका निरंकुश शासन झेलना पड़ता है।

तिब्बी—सब-जज की पुत्री है। यूनीवर्सिटी के प्रथम वर्ष में पढ़ती है। अपनी ऊपरी जानकारी को विद्वता का रूप देना जानती है। वह नई सभ्यता का रहन-सहन पसन्द करती है। वह कठोर, चञ्चल, दुर्लभ, चतुर, हाजिर जवाब और रूप-गर्विता है, किंतु उसके हृदय की गहराइयों में कोमलता भी है। वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति उसे तीव्र असंतोष है और अपने भोग-विलासमय जीवन के प्रति आंतरिक अश्रद्धा।

पंकजा—देवकुमार की पुत्री। सीधी, सरल और काम-काजी लड़की। उसे संगीत से प्रेम है और स्कूल में उसकी गणना अच्छी लड़कियों में की जाती है।

घूरे—तिब्बी का नौकर। गोद खिलाई तिब्बी द्वारा वृद्धावस्था में अनुचित डाँट-फटकार पाकर दुखी रहता है।

'मंगलसूत्र' में वर्तमान सामाजिक और आर्थिक-व्यवस्था के प्रति उपन्यासकार का बढ़ता असतोष व्यक्त हुआ है। उपन्यास के अनेक पात्र विद्रोहसिक्त विचार व्यक्त करते हैं। स्वयं प्रेमचंद ने लिखा है—'जिस राष्ट्र में तीन चौथाई प्राणी भूखों मरते हों, वहाँ किसी एक को बहुत-सा धन कमाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।' इस सम्बंध में उपन्यासकार की दृष्टि [illegible]रदास ऐसे पूँजीपतियों और महाजनों की नीति की ओर थी। उस[illegible]ा था कि अधिकार और पूँजी के बल पर कुछ व्यक्ति अपने स्व[illegible]ी पूरा कर रहे हैं जबकि समाज का अधिकांश भूखों मरता है। शो[illegible] आधारित समाज-व्यवस्था के प्रति लक्ष्य करके ही उपन्यास का प[illegible] कहता है—'बस हो तो संसार की सारी व्यवस्था बदल डाले।' उप-[illegible]ने स्पष्ट यह मत व्यक्त किया है कि 'जिस व्यवस्था से सारे समाज [illegible] हो सकता है, वह थोड़े से आदमियों के स्वार्थ के कारण दबी पड़ी [illegible]द्धार का रास्ता संघर्ष का रास्ता है, यह मंगलसूत्र का लेखक [illegible] था। सामाजिक अन्याय और लूट के प्रति इस उपन्यास में [illegible] विद्रोहात्मक भावना इन शब्दों में मूर्तिमान हो जाती है—'कहाँ [illegible]कहाँ है? एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोचकर खा लेता [illegible] उसे सजा देता है। दूसरा अमीर आदमी दिन-दहाड़े दूसरों को [illegible]र उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी

तरह-तरह के हथियार बाँध कर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमाकर अपना गुलाम बना लेते हैं। लगान और टैक्स और महसूल और कितने ही नामों से उसे लूटना शुरू करते हैं, और आप लम्बा-लम्बा वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंगरेलियाँ मनाते हैं। यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार ? यही न्याय है ?'

'मंगलसूत्र' में नारी-समस्या पर भी दृष्टिपात किया गया है। सन्त कुमार और उसकी पत्नी पुष्पा इस समस्या के सूत्राधार हैं। पति और पत्नी के दृष्टिकोण में साम्य नहीं है। संतकुमार स्त्री को पुरुष की दासी समझता है। पुष्पा का उत्तर है—'मैं तुम्हारी आश्रिता हूं तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं तुम्हारे घर में जितना काम करती हूं, इतना ही काम दूसरों के घर में करूँ तो अपना निर्वाह कर सकती हूं या नहीं।' प्रेमचंद ने यह दिखाया है कि पुष्पा ऐसी नारियाँ अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं और पुरुषप्रधान समाज-व्यवस्था का नारी विषयक दृष्टिकोण समझने लगी हैं। पुष्पा ने अपने पति से स्पष्ट कहा था—'मर्यादा और आदर्श और जाने किन-किन बहानों से हमें दबाने की और हमारे ऊपर अपनी हुकूमत जमाये रखने की कोशिश करते रहते हो।' पुष्पा की समस्या दोषयुक्त विवाह और आर्थिक प्रश्न से सम्बंधित है। वह पति की आश्रिता है, इसीलिए उसके द्वारा अपमानित होती है। जब वह अपमान से बचने की बात सोचती है, तब सर्वप्रथम जीवन-निर्वाह का प्रश्न सामने आता है। वस्तुतः पुष्पा की समस्या उसकी व्यक्तिगत समस्या ही नहीं, अपितु समस्त नारी-समाज की जीवन समस्या है।

'मंगलसूत्र' अपूर्ण उपन्यास है। इसके लक्ष्य-संधान के सम्बन्ध में अन्तिम मत नहीं दिया जा सकता। किंतु यह निःसंशय है कि इसके प्रत्येक परिच्छेद में आर्थिक-सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का स्वर गूंजता है। अतएव यह निष्कर्ष तो स्वयंसिद्ध है कि 'मंगलसूत्र' का विधान लोक-मंगल के अदम्य विश्वास से अनुप्राणित है।

१३

कथा-वस्तु

प्रेमचंद के उपन्यासों की कथावस्तु की सामग्री जीवन से ली गई है। उनकी कथावस्तु का आधार हमारा पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन है। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद ने अपनी कथावस्तु के लिए कुछ विशेष पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्यायें उठाई हैं, जो पुनः–पुनः कथावस्तु का विषय बनने के कारण पुनरावृत्ति दोष का अवसर प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिये उनके 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' की कथावस्तु का विषय इतना मिलता-जुलता है कि कुछ आलोचकों ने एक को दूसरे की पुनरावृत्ति मात्र माना है। यह ठीक नहीं है, किंतु कथानक के विषय में इतना साम्य है कि इस प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो जाना आश्चर्यजनक नहीं। इसी प्रकार 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' की वस्तु के स्वर में बड़ी समानता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में जीवन के विविध पक्षों का सीमित समावेश है। इसीलिए उनके कथानक पुनरावृत्ति की त्रुटि का प्रत्याख्यान नहीं कर सकते।

कथावस्तु की सामग्री को उपयोग में लाने के निमित्त उपन्यासकार ने कल्पना और अनुभव से सहायता ली है। किसी भी साहित्य-सृष्टा के लिए उचित मात्रा में कल्पनाशील होना आवश्यक है। कल्पना के द्वारा वह अपने कथानक के विभिन्न अङ्गों को एकसूत्रता प्रदान करता है और अनुभव उसे परिपुष्ट करता है। प्रेमचंद की कथावस्तु की सामग्री भी उनकी कल्पनाशक्ति और अनुभव-ज्ञान द्वारा वस्तु के कथानक के ढाँचे का रूप ग्रहण करती है। वस्तु-निर्माण की प्रेमचंदीय शैली सरल और सुलभ है। इसका कारण यही है कि प्रेमचंद क्लिष्ट कल्पना में नहीं पड़ते। जीवन के जाने-माने विषयों को ग्रहण करके वह कथानक का आधार खड़ा करते हैं। उनके उपन्यासों की वस्तु की सहज गतिशीलता का कारण भी यही है कि

वह कल्पना और अनुमान के मिथ्या आवर्तों में चक्कर नहीं खाते। अपवाद रूप में केवल कायाकल्प के कथानक की जटिलता उल्लेख्य है जिसमें उनकी कल्पना अलौकिक-तत्व के मोह जाल में फंस गई है। प्रेमचंद की कथा-वस्तु का घटना विचार भी सहज है। घटनाओं की यात्रा-मात्र से उनका गंतव्य ज्ञात हो जाता है। साधारण से साधारण पाठक भी घटनाओं का-मोड़ देखकर यह बता सकता है कि उनकी परिणति किस प्रकार होगी। प्रेमचंद की कथा वस्तु की घटनायें जीवन की स्वाभाविक परिस्थितियों से प्रादुर्भूत हैं। इसी लिए उनका परिणाम सहज बोधगम्य है। इसके विपरीत शरत्चंद्र और जैनेंद्र के कथानकों में घटना-चक्र से आगे की कथा का अनुमान संभव नहीं है इसका कारण यह है कि शरत् और जैनेंद्र, प्रेमचंद के विपरीत जीवन की असाधारण परिस्थितियों से कथानक की प्रेरणा ग्रहण करते है। उनकी घटनाओं के असाधारण परिणाम इसीलिए सहज संग्रहणीय हैं और प्रायः पाठक को आश्चर्य में डाल देते हैं।

उपन्यासों के घटना-विधान के सम्बंध में प्रेमचंद ने निजी मत भी व्यक्त किया है। वह लिखते हैं 'उपन्यासकार को इसका अधिकार है कि वह अपनी कथा को घटना वैचित्र्य से रोचक बनाये, लेकिन शर्त यह है कि प्रत्येक घटना असली ढाँचे से निकट संबन्ध रखती हो। इतना ही नहीं, बल्कि उस में इस तरह घुल-मिल गयी हो कि कथा का आवश्यक अंग बन जाय, अन्यथा उपन्यास की दशा उस घर की सी हो जायगी जिसके हर एक हिस्से अलग-अलग हों। जब लेखक अपने मुख्य विषय से हटकर किसी दूसरे प्रश्न पर बहस करने लगता है, तो वह पाठक के उस आनंद में बाधक हो जाता है जो उसे कथा में आ रहा था। उपन्यास में वही घटनायें, वही विचार लाने चाहिये, जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाये जो प्लाट के विकास में सहायक हों अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हों।'[1] इस कथन का विश्लेषण करने पर निष्कर्ष निकलता है --

(१) घटना-वैचित्र्य द्वारा कथा को रोचक बनाना चाहिये

(२) प्रत्येक घटना कथा का आवश्यक अंग हो और उसमें घुल मिल गई हो।

(३) घटनाओं में मुख्य विषय से 'डिवीयेशन' (Deviation)

---

[1] कुछ विचार, भाग १ पृष्ठ ५१

होना चाहिए।

(४) उपन्यास में वही घटनायें आनी चाहिए जो 'प्लाट' (कथावस्तु) के विकास में सहायक हों।

इस दृष्टिसे प्रेमचंद के उपन्यासों के घटना-विधान पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि सर्वत्र इस सिद्धांत का निर्वाह करने में उन्हें सफलता नहीं मिली है। उन्हों ने घटना-वैचित्र्य द्वारा कथानक को रोचक अवश्य बनाया है, किंतु संयोग और आकस्मिकता के प्रयोग से उसकी कलात्मकता की पूर्ण रक्षा असम्भव हो गई है। उनके कथानक की घटनायें वस्तु के आवश्यक अंग के रूप में ग्रहण की गई हैं, पर प्रत्येक घटना के संबन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, घटनाओं के मुख्य विषय में 'डेवियेशन' कम है, वह घटना या 'इवेन्ट' का 'डेविएशन' नहीं है, वर्णन की अतिशयता का प्रभाव-मात्र है। उनके उपन्यासों में 'प्लाट' (कथावस्तु) के विकास में सहायक घटनाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी घटनाएँ आ गई हैं जो निष्प्रयोजन हैं। यहाँ हमारा अभिप्राय कथानक में दोष दर्शन-नहीं है अपितु उनका सामान्य कलागत त्रुटियों के प्रति ध्यान आकृष्ट करना है जिनके कारण प्रेमचंद के कथावस्तु-कौशल को पूर्णत्व नहीं प्राप्त हुआ है।

कथावस्तु-निर्माण में प्रेमचंद ने संयोग (Coincidences) और आकस्मिकता का बराबर प्रयोग किया है। प्रारम्भिक कृतियों में जितनी प्रचुरता से यह कृत्रिम प्रणाली प्रयुक्त हुई है[१], उतनी प्रचुरता से परवर्ती रचनाओं में नहीं।[२] संयोग द्वारा कथानक की समस्या हल करने का यह सरलतम प्रयत्न उन्हें सर्वदा ग्राह्य था। इसीलिए 'गोदान' ऐसी प्रौढ़ रचना में भी इसका प्रयोग किया गया है। एक लम्बी अवधि के उपरांत होरी अपने पलायित भाई हीरा का स्मरण करके सोता है; प्रातः आँख खुलते ही हीरा उसके सामने खड़ा है। यह स्मृति और मिलन सर्वथा सयोग पर आधारित है। परवर्ती उपन्यासों में ऐसे स्थल कम ही हैं किंतु प्रारंभिक उपन्यासों के

[१] वरदानः पृष्ठ १०४, १४४

[२] कर्मभूमिः पृष्ठ १८७–१७८. गोदानः पृष्ठ ४८६
सेवासदन पृष्ठ ३५. ४५, १२२, १७२, २४६, २७५
निर्मलाः पृष्ठ १३, २६, ५१, १६७

कथानक इस त्रुटि को कृत्रिम कथावस्तु-विन्यास-पद्धति से अभिभूत हैं।

प्रेमचंद ने कथानक की परिस्थिति-योजना में स्वभाविक और कृत्रिम प्रणाली, दोनों का प्रयोग किया है। कुछ स्थलों पर उपन्यासकार कथा विकास के निमित्त परिस्थितियों की योजना करता है और अन्य स्थलों पर पात्र स्वयं परिस्थितियाँ बना लेते हैं। 'कायाकल्प' के घटना- संविधान और परिस्थिति निर्माण में उपन्यासकार का हाथ स्पष्ट दिखाई देता है। इस कारण कृत्रिम वस्तु-विकास की प्रभावन्यूनता से 'कायाकल्प' का वस्तु-विधान शिथिल हो गया है। इसके विपरीत कथानक की परिस्थिति योजना की स्वाभाविक प्रणाली 'गोदान' और 'गबन' में प्राप्य है। 'गोदान के पात्र-विशेषरूप से उसका नायक अपने कार्य-कलाप से उन परिस्थितियों की सृष्टि करता है जिन पर वस्तुविकास निर्भर है। इसी प्रकार 'गबन' का नायक रामनाथ भी कथा-विकास की महत्वपूर्ण परिस्थितियों का जन्मदाता है। 'कायाकल्प' के कथानक की तुलना में 'गोदान' और 'गबन' की उत्कृष्टता का यह उल्लेख्य कारण है कि उनके पात्र वस्तु-विकास की परिस्थितियों की स्वाभाविक पद्धति पर अपने कार्य-कलाप द्वारा योजना करते हैं।

प्रेमचंद के कथानक अनावश्यक विस्तार के कारण बोझिल हो गए हैं। लिखने के आवेग में उन्हें कलात्मक संयम और संतुलन का ध्यान नहीं रहता था। वह अपने कथानक के विषय में सब कुछ कह डालने की प्रवृति से काम लेते थे, क्या न कहने की शरत्चंद्रीय कला[1] उन्हें प्राप्त न थी। उन के उपन्यासों के अनेक स्थल कथानक-कला और शिल्प-कौशल की दृष्टि से सामान्य स्तर के ही नहीं हैं अपितु कथावस्तु के समग्र संगठित प्रभाव को शिथिल कर देते हैं। उदाहरण के लिए 'वरदान' 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' ऐसी प्रारंभिक रचनाओं और 'गोदान' ऐसी प्रौढ़ कृति का उल्लेख पर्याप्त होगा। 'वरदान' का पाचवाँ परिच्छेद जिसमें शिष्ट जीवन के दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं, पंद्रहवें परिच्छेद में क्रिकेट मैच का वर्णन[2], सेवासदन के तेईसवें परिच्छेद में सुमन द्वारा अबुलवफा, सेठ चिम्मनलाल और पंडित दीनानाथ की दुर्दशा और और म्युनिसिपैलटी के सदस्यों द्वारा आवश्यकता

शरत् पत्रावली पृष्ठ ३५, ८३, ९६।

वरदान पृष्ठ ७१

से अधिक वेश्या-समस्या पर वाद-विवाद[3], 'प्रेमाश्रम' में सैयद ईजाद हुसेन और उनके 'इत्तहादी यतीमखाने' की कार्यविधि[4] एवं 'गोद न' में मिर्ज़ा और मेहता की कुश्ती का वर्णन और रायसाहब के यहाँ धनुष-यज्ञ के उपरांत शिकार-पार्टी का लम्बा वर्णन[5] कथानक को आवश्यक विस्तार से बोझिल कर देते हैं। प्रेमचंद में विषय सम्बंधी सब-कुछ कहने की प्रवृति इतनी उत्कट है कि सामान्य घटनाओं को भी वह बहुत विस्तार के साथ वर्णित करते हैं। कलाकार के समय-संतुलन की अपेक्षा उनमें कथाकार की व्याख्यावृत्ति प्रधान है और इसी व्याख्या के निमित्त उन्हें लम्बे-लम्बे वर्णनों से काम लेना पड़ता है। आवश्यक स्थलों पर इन वर्णनों की उपेक्षा नहीं की जा सकती किंतु जहाँ इनके द्वारा विस्तार भार की अपेक्षा अन्य कार्य-साधन नहीं होता वहाँ इनकी आवश्यकता और निरर्थकता स्वयंसिद्ध है।

प्रेमचंद की कथावस्तु में टेकनीक की दृष्टि से विविधता नहीं है। उनके कथानक प्रायः एक ढर्रे के हैं। हाँ, वस्तु संगठन की दृष्टि से उनमें प्रकार-भेद अवश्य है। कुछ उपन्यासों में वस्तु एक कथा के ढाँचे में निर्मित है, जैसे 'सेवासदन' में। कुछ उपन्यासों में एक से अधिक सामानांतर कथाएँ कथानक का निर्माण करती हैं, जैसे 'रंगभूमि' और 'गोदान'। और भी सूक्ष्म-विश्लेषण करने पर प्रेमचंद के वस्तुविधान में निम्नांकित प्रकार-भेद हैं -

(१) एक मुख्य कथा के ढाँचे में निर्मित कथा वस्तु, जैसे 'सेवासदन 'गबन'।

(२) एक से अधिक कथाओं के ढाँचे में निर्मित जैसे-'रंगभूमि' और 'गोदान'। इसकी विशेषता यह है कि इनकी कथाओं को परस्पर अनुस्यूत करने का प्रयत्न प्रायः नहीं किया गया। 'गोदान' में नगर और गाँव की कथा पृथक् हैं और 'रंगभूमि' के कथानक की तीनों कथाएँ समानांतर चलती हैं।

(३) एक से अधिक कथाओं के ढाँचे में निर्मित कथानक, पर उसकी विभिन्न कहानियों को परस्पर मिलाने का प्रयत्न किया गया है, जैसे

---

[3] सेवासदनः पृष्ठ १८२—१९५ तथा २८८-२९२

[4] प्रेमाश्रमः पृष्ठ ३२२-३२७, तथा ३३१-३३७

[5] गोदानः १९२-१९५, १००, १३४

'कायाकल्प' और 'प्रेमाश्रम'।

वस्तुतः प्रेमचंद के सब उपन्यासों के कथानक उपर्युक्त प्रकार के भेद के अंतर्गत आ जाते हैं। कथानक के संगठित-प्रभाव की दृष्टि से प्रथम प्रकार की वस्तु आदर्श मानी जाती है और जीवन के व्यापकत्व के चित्रण के निमित्त एक से अधिक कथा वाला कथानक अनिवार्य होता है। यह भ्रमात्मक सिद्धांत है कि प्रथम प्रकार की वस्तु द्वितीय प्रकार से उच्च कला कोटि की होती है[1]। इसके विपरीत यह देखा जाता है कि महान उपन्यास प्रायः द्वितीय वस्तु-पद्धति का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए 'गोदान और 'रंगभूमि' का उल्लेख ही पर्याप्त है। यह हिंदी के ही नहीं भारतीय भाषाओं के महानतम उपन्यासों में परगणित है। इसमें संदेह नहीं कि संगठित कथावस्तु के शिल्प-कौशल का कलात्मक सौंदर्य आनंदप्रद होता है, पर द्वितीय प्रकार का शिथिल वस्तु-विधान इसी हेतु हेय नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यह विशेष प्रकार की परिस्थिति में अनिवार्य हो जाता है—जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण सर्वदा 'नाविल आफ दि लूज प्लाट' की कथानक—कला की अपेक्षा रखता है।

---

[1] एन इण्ट्रोडक्सन टु दि स्टडी आफ लिटरेचर-विलियम हेनरी हडसन : पृष्ठ १४१.

१४

चरित्र-चित्रण

प्रेमचंद के उपन्यासों के चरित्र भारतीय समाजके प्रायः प्रत्येक क्षेत्र और समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके पात्र समूह को सरलता पूर्वक उच्च, मध्य और निम्नवर्ग में विभाजित किया जा सकता है। पूँजीपति, भूमिपति और राजा-महाराजाओं के चरित्र उच्च वर्ग के अंतर्गत एवं अछूत, किसान-मजदूर आदि श्रमजीवी निम्नवर्ग के अंतर्गत आते हैं। समाज शास्त्रीय दृष्टि से प्रेमचंद के पात्रों को स्पष्ट रूप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—शोषक, शोषित और सुधारक। मोटे रूप से यह उपर्युक्त उच्च, निम्न और मध्यवर्ग के स्थानापन्न हैं, यद्यपि मध्यवर्ग के सब पात्र सुधारक नहीं हैं। 'कर्मभूमि' के प्रोफेसर शांतिकुमार सुधारक हैं, जबकि 'गोदान' के अध्यापक डा० मेहता को सुधारक नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार कुछ अन्य पात्रों का उल्लेख भी किया जा सकता है। 'गबन' का रामनाथ, 'निर्मला' का तोताराम मध्यवर्गीय चरित्र है, पर सुधारक से कोसों दूर हैं और उसकी अपेक्षा रखते हैं। इसके विपरीत प्रायः सब उच्चवर्गीय पात्र शोषक हैं और निम्नवर्गीय शोषित।

यह एक मात्र सिद्धांत है कि प्रेमचंद के पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। उनका होरी कृषक-वर्ग का प्रतिनिधि है, 'रामनाथ' मध्य वर्गीय दुर्बलताओं का प्रतिनिध है और 'ज्ञानसेवक' उद्योगपति--पूँजीपति वर्ग का। इसी प्रकार उसके डाक्टर, वकील, प्रोफेसर, जमींदार, सरकारी अधिकारियों आदि के चरित्र कार्य-व्यापार से ही नहीं अपितु मानसिक संघटन से भी सोलहों आने अपने वर्ग के प्रतिनिध होते हैं। चरित्रों की वर्गगत प्रवृत्तियों को प्रेमचंद की चरित्र-चित्रण कला ने जितनी कुशलता से ग्रहण किया है, उतनी कुशलता से अन्य उपन्यासकार नहीं कर पाये, किंतु वैयक्तिक चरित्रों के अभाव में उनकी पात्रसृष्टि "स्टीरियोटाइप' हो गई है। इसीलिये शरत्चंद के चरित्रों के विविध-व्यक्तित्व का सौंदर्य प्रेमचंद की चरित्र-चित्रण

कला में अनुपलब्ध है। हाँ, प्रेमचंद के चरित्र अपनी गतिशीलता के कारण जितना ध्यान आकृष्ट करते हैं उतना शरत् के चरित्र नहीं कर पाते। प्रेमचंद के पात्र जीवन-संग्राम के योद्धा हैं उनके जीवन का काठिन्य पूरा पूरा उतरा है, जबकि शरत् के पात्र अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हैं। तथापि वैयक्तिक चरित्रों की दृष्टि से प्रेमचंद की कला नगण्य ही कही जायगी, यद्यपि उन्होंने 'रंगभूमि' में सूरदास के रूप में गतिशील वैयक्तिक चरित्र की उल्लेखनीय सृष्टि की है।

चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों का प्रभाव अंकित करने से कलात्मक पात्र-योजना का पूर्ण निर्वाह संभव है। मानव-चरित्र के निर्माण में उसकी परिस्थितियो का महत्वपूर्ण भाग रहता है। परिस्थितियाँ पग-पग पर पात्र को प्रभावित करती हैं। राल्फ फाक्स ने परिस्थितियों और मनुष्य के पारस्परिक संबन्ध की चर्चा करते हुये बड़े सुन्दर ढंग से कहा है कि मनुष्य परिस्थितियों से बदलता नहीं, वह परिस्थितियों को बदल भी देता है और इस प्रक्रिया में स्वयं बदल जाता है।[1] राल्फ ने जिसे भौतिक शक्ति कहा है वह इस संबन्ध में परिस्थितियाँ ही हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में चरित्र परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं और प्रभावित करते हैं, किंतु सब पात्रों के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनके होरी, रामनाथ,सुमन आदि चरित्र परिस्थितियों से यथेष्ठ प्रभावित होते हैं, जबकि प्रेमशंकर, अमृतराय, अमरकांत आदि चरित्र प्रायः नहीं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उनके यर्थाथवदी चरित्र परिस्थितियों से बनते-बिगड़ते हैं; आदर्शवादी पात्रों पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता। यह भेद सजीव और निर्जीव पात्र सृष्टि का भेद है। इसीलिए यथार्थवादी पात्रों के चरित्रांकन में उनकी कला का उन्मेष लक्षित होता है। 'गबन' का रामनाथ इस दृष्टि से उल्लेख्य चरित्र है जो परिस्थितियों से सर्वाधिक प्रभावित होता है। सिद्धांत रूप में प्रेमचंद यह निश्चित करते हैं कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों का खिलौना मात्र है[2] किंतु व्यवहार में इसका निर्वाह अनेक पात्रों में नहीं कर पाए हैं मानव चरित्र संबन्धी राल्फ फाक्स के जिस महत् सिद्धांत की चर्चा हमने ऊपर की

---

[1] राल्फफाक्स नाविल ऐन्ड दि प्युपुल, पृष्ठ ७३

[2] प्रेमाश्रम : पृष्ठ ५०२

है, उस दृष्टि से प्रेमचंद की चरित्र-चित्रण-कला निर्दोष नहीं है। किंतु यहाँ प्रेमचंदकालीन हिन्दी साहित्य की परम्परा पर भी ध्यान रखना उचित होगा जो कि विषय और शिल्प कौशल की परख पर उदात्त नहीं ठहरती। राल्फ फ़ाक्स का सिद्धांत जिस वैज्ञानिक यथार्थतावादी आलोचना के मानदण्ड का निर्धारण करता है, वह यूरोप की विश्लेषण-बुद्धि और महान् औपन्यासिक परम्पराओं के निष्कर्ष से निष्णात है और उसकी कसौटी पर 'नया मनुष्य' ऐसे युगांतकारी उपन्यास के 'ग्वादी विग्वा' इसे मानव-चरित्र ही खरे उतरते हैं, जो अपनी परिस्थितियों से बदलते ही नहीं परिस्थितियों को बदल भी देते हैं और इस प्रक्रिया में स्वयं भी बदल जाते हैं। उसके चरित्र-परिवर्तन की चरम सीमा (Climax) पूर्ण प्रभावात्मक है। इस कोटि की चरित्र-चित्रण कला प्रेमचंद के अवसान के बीस वर्ष बाद भी हिंदी साहित्य में अनुपलब्ध है।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने प्रेमचंद के आदर्शवादी और यथार्थवादी चरित्रों की चर्चा की है। उनके आदर्शवादी चरित्र मनुष्य की उदात्त चेष्टाओं के प्रतिरूप हैं और यथार्थवादी चरित्र दुर्बलताओं से सम्बद्ध हैं। 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर के उदात्त मनोभाव और 'गबन' के रामनाथ की चारित्रिक दुर्बलताओं का उल्लेख हमारे मन्तव्य का प्रमाण है। इसके पूर्व कि प्रेमचंद के आदर्शवादी और यथार्थवादी पात्रों पर सम्यक् विचार किया जाय, इस सम्बंध में उनका मत जान लेना अनुचित न होगा। प्रेमचंद ने लिखा है—'यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा-उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुये अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं ....
यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता है और चूँकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है—यहाँ तक की उज्ज्वल-से उज्ज्वल चरित्र में भी कुछ-न-कुछ दाग-धब्बे रहते हैं, इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई-ही बुराई नजर आती है.... अँधेरी कोठरी में काम करते-करते जब हम थक जाते हैं, तब

इच्छा होती है कि किसी बाग में निकल कर निर्मल स्वच्छ वायु का आनंद उठायें—इस कमी को आदर्शवाद पूरा करता है। वह हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार-कुशल नहीं होते, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है; लेकिन कॉइएपन से ऊबे हुए प्राणियों को ऐसे सरल, ऐसे व्यावहारिक ज्ञान-विहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनंद होता है।......यथार्थवाद यदि हमारी आँखे खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की मूर्तिमात्र हों, जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।[१],

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि प्रेमचंद ने चरित्र संबन्धी अपने इस मन्तव्य का अपनी कृतियों में कहाँ तक निर्वाह किया है? उनके यथार्थवादी और आदर्शवादी पात्र किस सीमा तक उनके दृष्टिकोण से निबद्ध हैं? पर इसके पूर्व यह जान लेना नितांत आवश्यक है कि प्रेमचंद यथार्थ और आदर्श के सामञ्जस्य में विश्वास रखते थे और उनका 'यथार्थोन्मुख आदर्शवाद' उनके चरित्र चित्रणमें भी प्रतिफलित हुआ है। हमारा अभिप्राय उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। 'रामनाथ' और 'सुमन' उनके दो यथार्थवादी पात्र हैं। यदि इनके चरित्र-चित्रण में पूर्ण यथार्थवादी दृष्टि से काम लिया जाता तो इनके पतन की समस्त दुर्बलताओं का असम्पृक्त चित्रण आवश्यक होता[२]। पर ऐसा नहीं किया गया है। क्यों? इसलिए कि प्रेमचंद यथार्थवाद को वहीं तक ग्रहण करते हैं जहाँ तक वह शिष्टता की सीमा का उल्लंघन नहीं करता। यही कारण है कि सुमन के वेश्या-जीवन और रामनाथ के वेश्या-संसर्ग के उन सब स्थलों को उन्होंने चलता कर दिया है, जिनमें चरित्र की अशिष्ट दुर्बलताएँ निहित हैं। प्रेमचंद के इस यथार्थवादी कला

[१] कुछ विचार : भाग १ : पृष्ठ ३९, ४०, ४१

[२] ,, ,, ,, ,, ,, 'यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है।'

सम्बन्धी आदर्श और फ्रेंच उपन्यासकार जोला की कला में बड़ा अंतर है। प्रेमचंद यथार्थवाद को शिष्टता की बेड़ी में जकड़ देते हैं जबकि जोला ऐसा कोई प्रबंध नहीं करता। यहाँ तक तो प्रेमचंद के चरित्र-चित्रण और तद्-विषयक सिद्धांत में साम्य है; किंतु आदर्शवादी पात्रों के सम्बंध में प्रभेद उत्पन्न हो गया है। प्रेमचंद आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ के उपयोग की चर्चा करते हैं किन्तु उनके आदर्शवादी चरित्र 'सिद्धांतों की मूर्तिमात्र' हैं, उनमें जीवन का स्पन्दन नहीं। 'प्रतिज्ञा' का अमृतराय और 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर ऐसे ही चरित्र हैं जिनमें सजीवता का नितांत अभाव है। सिद्धांत और व्यवहार में इस अंतर के दो कारण हो सकते हैं-या तो सिद्धांत का चरित्र-चित्रण में उपयोग ही न किया हो अथवा असफल रहा हो। हमारा विचार यह है कि प्रेमचंद ने आदर्शवादी पात्रों में इस सिद्धांत के प्रयोग का प्रयत्न किया है; किंतु उन्हें अभीष्ट सफलता नहीं मिली। हाँ, 'गोदान' के आदर्शवादी पात्र मेहता के चरित्र-चित्रण में 'आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ के उपयोग' का सिद्धांत बहुत-कुछ सफल है, पर उनके अन्य आदर्शवादी पात्र निर्जीव जड़-मूर्ति हैं।

उपन्यास महाकाव्य का उत्तराधिकारी है।[1] महाकाव्य की भाँति ही चरित्र-चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। महाकाव्य के नायक, प्रतिनायक और खलनायक आधुनिक उपन्यास में भी होते हैं किंतु सत् और असत् की धारणा का आधार बदल जाने से नायक और खलनायक का मान दण्ड बदल गया है। यह परिवर्तित विधान प्रेमचंद के चरित्रों में प्रतिबिंबित है। यहाँ होरी जैसा नीच जाति का अशिक्षित व्यक्ति नायक है और ऊँची जाति के शिक्षा सम्पन्न ज्ञानशंकर ऐसे व्यक्ति खलनायक। इस दृष्टिकोण का आधार है मनुष्य में विश्वास और शोषण का विरोध। होरी गँवार है, नीची जाति का है, सूरदास अंध भिखारी है, फिर भी वह नायक है क्योंकि उसमें मनुष्यता है, जबकि विद्याबुद्धि सम्पन्न ज्ञानशंकर खलनायक है क्योंकि वह मनुष्यता की हत्या करने वाला निर्दय शोषक है। इसीप्रकार जमींदार, पूँजीपति और अधिकारी वर्ग के पात्र पुराने खल पात्रों के आधुनिक संस्करण हैं। ये देखने में सुंदर हैं, सुनने में मीठे हैं पर अत्याचार, अनाचार और

विचार के काले देव हैं। ये अन्याय और नीति और मनुष्य की हत्या करते हैं, इसीलिए ये खल चरित्र हैं। पुराने महाकवियों की भाँति वह खल पात्र की भर्त्सना करते हैं! हाँ, इसका रूप आधुनिक परिस्थितियों में बदल गया है। इस सम्बन्ध में उल्लेख्य है, प्रेमचद की सत्य-न्याय प्रतिष्ठा। इसका आधार है, सत् की विजय और असत् की पराजय। पर वर्तमान समाज में साधन, सुविधा और सामर्थ्य के कारण असत् चरित्र सत् पर विजयी होते हैं, इसलिए प्रेमचंदने सत्य और त्याग प्रतिष्ठा का नया ढंग खोज निकाला। असत् चरित्रों की विजय के उपरांत भी उन्हें घोर मानसिक अशांति की दशा में दिखा उनके जीवन की असफलता चित्रित कर उन्होंने सत् पर से मनुष्य का विश्वास न उठने दिया और असत् की पराजय भी अंकित कर दी। 'कर्म-भूमि' के सेठ धनीराम और 'गोदान' के अमरपाल सिंह के चरित्र में प्रेमचद के सत्य-न्याय की विशिष्ट धारणा द्रष्टव्य है। इसी प्रकार 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर का उल्लेख भी किया जा सकता है, जिसे भौतिक उन्नति की चरमावस्था में मानसिक दुःख के कारण आत्महत्या करनी पड़ी, पर इस उपन्यास का विधान दूसरे ढंग का है, क्योंकि इसके अंत में असत् पर सत् की विजय द्वारा काव्य न्याय पूर्ण प्रतिष्ठित है।

प्रेमचंदने चरित्र-चित्रण की विश्लेषणात्मक और अभिनयात्मक विधियों का समान प्रयोग किया है। वह चरित्र के विचार, भावना और प्रवृत्तियों की व्याख्या ही नहीं करते, उस पर टीका टिप्पणी करते हैं और मत भी देते हैं। उदाहरण के लिए, ज्ञानशंकर के विचार और भावना की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—'ज्ञानशंकर की दृष्टि में आत्म-संयम का महत्व बहुत कम था। उनका विचार था कि संयम और नियम मानव चरित्र के स्वाभाविक विकास के बाधक हैं। वही पौदा सघन वृक्ष हो सकता है जो समीर और लू, वर्षा और पाले में समान रूप से खड़ा रहे। उसकी वृद्धि के लिए अग्निमय प्रचन्ड वायु उतनी ही आवश्यक है, जितनी शीतल मन्द समीर। शुष्कता उतनी ही प्राणपोषक है, जितनी आर्द्रता। चरित्रोन्नति के लिए भी विविध प्रकार की परिस्थितियाँ अनिवार्य हैं। दरिद्रता को काला नाग क्यों समझें? चरित्र-संगठन के लिए यह सम्पत्ति से कहीं महत्वपूर्ण है। यह मनुष्य में दृढ़ता और संकल्प, दया और सहानुभूति के भाव उदय करती है। प्रत्येक अनुभव चरित्र के किसी-न किसी अंग की पुष्टि करता है, यह प्राकृतिक नियम है।

इसमें कृत्रिम बाधाओं के डालने से चरित्र चित्रमय हो जाता है। यहाँ तक कि क्रोध, ईर्ष्या, असत्य और कपट में भी बहुमूल्य शिक्षा के अंकुर दिये रहते हैं। जब तक सितार का प्रत्येक तार चोट न खाय, सुरीली ध्वनि नहीं निकल सकती। मनोवृत्तियों को रोकना ईश्वरी नियमों में हस्तक्षेप करना है। इच्छाओं का दमन करना आत्महत्या के समान है। इससे चरित्र संकुचित हो जाता है। बन्धनों के दिन अब नहीं रहे। यह अबाध, उदार, विराट उन्नति का समय है। त्याग और बहिष्कार उस समय के लिए उपयुक्त था, जब लोग संसार को असार, स्वप्नवत् समझते थे। यह सांसारिक उन्नति का काल है, धर्माधर्म का विचार संकीर्णता का द्योतक है। सांसारिक उन्नति हमारा अभीष्ट है। प्रत्येक साधन जो अभीष्ट-सिद्धि में सहायक हो; ग्राह्य है। इन विचारों ने ज्ञानशंकर को विवेक शून्य बना दिया था[१]।' ज्ञानशंकर के विचारों और भावों की व्याख्या करने के साथ अन्तिम पंक्ति में उपन्यासकार ने उसके विषय में अपना मत भी व्यक्त कर दिया है। चरित्र पर टीका टिपण्णी द्वारा मत दान की प्रणाली का प्रयोग प्रेमचन्द ने अनेक अवसरों पर किया है।[२] ज्ञानशंकर की चरित्रगत प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने के उपरान्त उन पर अन्तिम मत देते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है—'बाबू ज्ञानशकर अगर अबतक स्वार्थी, लोभी और संकीर्ण हृदय थे, तो परिस्थितियों का फल था। भूखा आदमी उस समय तक कुत्ते को कौर नहीं देता, जबतक वह स्वयं सन्तुष्ट न हो जाये। असम्पन्नता ने उनकी श्यामलता को और भी उज्ज्वल कर दिया था। उन्होंने ऐसे घर में जन्म लिया था जिसने कुलमर्यादा की रक्षा में अपनी श्री का अन्त कर दिया था। ऐसी अवस्था में उन्हें सन्तोष से ही शान्ति मिल सकती थी, पर उनकी उच्च शिक्षा ने उन्हें जीवन को एक बृहत् संग्राम-क्षेत्र समझना सिखाया था। उनके सामने जिन महान् पुरुषों के आदर्श रक्खे गये थे, उन्होने भी संघर्षनीति का आश्रय लेकर सफलता प्राप्त की थी। इसमें सन्देह नहीं कि इस शिक्षा ने उन्हें लेख और वाणी में प्रवीण, तर्क में कुशल, व्यवहार में चतुर बना दिया था। यह वह शिक्षा न थी, जो अपने झोपड़े का द्वार

---

१ प्रेमाश्रमः पृष्ठ ८६, ८७

२ सेवासदनः पृष्ठ ३, ११७

,, गोदान पृष्ठ २०८, २५५, ३६३

खुला रखने का अनुरोध करती है, जो दूसरों को खिलाकर आप खाने की नीति सिखाती है। ज्ञानशंकर किसी को आश्रय देने की कल्पना भी न कर सकते थे, जब तक अपना प्रासाद न बना लें, वह किसी को मुट्ठी भर अन्न भी न दे सकते थे, जब तक अपनी धान्यशाला को भर न लें।'[1] इसी प्रकार अन्य चरित्र-चित्रण में प्रेमचद ने विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया हैं। इस विधि का प्रयोग मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार अधिक करते हैं क्योंकि उनके चरित्रों के अन्तर्गत का रहस्य इसके बिना खुलता नहीं। प्रेमचंद सामाजिक उपन्यासकार थे, अतएव चरित्र-चित्रण की विश्लेषण विधि का उन्होंने उतना ही प्रयोग किया है, जितना आवश्यक है। इसके विरीत नाटकीय विधि का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। यह उचित ही है ; क्योंकि चरित्र-चित्रण की अभिनयात्मक प्रणाली अधिक कलात्मक मानी गई है और अधुनिक आलोचना इस विधि के पूर्ण विकास का अनुमोदन करती है।[2] प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण की नाटकीय विधि का अच्छा प्रयोग किया है। उनके चरित्र अपने कथन और क्रिया (action) द्वारा अपनी चारित्रिकता प्रकट करते हैं और अन्य पात्र अपने मत से उनकी पुष्टि करते हैं। ऐसे अनेक स्थल हैं। स्थानाभाव से और अनावश्यक विस्तार के भय से यहाँ उनको उद्धृत करना संभव नहीं। उदाहरण के निमित्त धनिया,[3] सुखदा,[4] प्रमशंकर,[5] सुमन,[6] और तोताराम,[7] के चरित्र में नाटकीय विधि का प्रयोग द्रष्टव्य है।

आकृति वर्णन चरित्र-चित्रण का आवश्यक अंग है। इस ओर हिन्दी उपन्यासकारों ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। प्रेमचन्द के चरित्र विधान में आकृति-वर्णन अनिवार्य सा हो गया है। वे अपने चरित्रों की आकृति की एक रूपरेखा प्रायः दे देते हैं। उन्होंने चरित्रों की प्रभावात्मकता

[1] प्रेमाश्रमः पृष्ठ ५०२
[2] हडसनः इन्ट्रोडक्सन टु दी स्टडी ऑफ लिटरेचरः पृष्ठ १४७
[3] गोदान : पृष्ठ ५५, ५७, १५१, २७५,
[4] कर्मभूमि ,, २४, २५, २५५, ३१५,
[5] प्रेमाश्रम ,, १७६, २७१, ४६५,
[6] सेवासदन ,, ४८, ६८, १३६, ३८३,
[7] निर्मला : ,, ४२, ५१, ५२, १४६,

बढ़ाने के लिए इस कला का अच्छा उपयोग किया है। पात्र की आकृति-वर्णन में वह पात्र की प्रवृत्ति का पूरा ध्यान रखते हैं। यदि उन्हें गांव के महाजनों का व्यग्यंचित्रण करना है तो पहले से ही ऐसी आकृति खींच देते हैं कि वे व्यंग-चित्र के प्रतिरूप हो जाते हैं। यदि उन्हें किसी गम्भीर–प्रभावशाली व्यक्ति का चरित्रांकन करना है, तो उसका बाह्य-व्यक्तित्व उसकी अन्तः प्रकृति का परिचायक बन जाता है। यदि किसी फैशन परस्त युवती का चरित्र-चित्रण करना है तो उसका आकृति चित्रण भी तद्नरूप होगा। 'गोदान' में झिंगुरी सिंह, नोखेराम, मेहता और मालती का आकृति-वर्णन हमारे मन्तव्य के प्रमाण हैं।

६५

कथोपकथन

उपन्यास में कथोपकथन का महत्वपूर्ण स्थान है। इससे कथा-विकास एवं चरित्र-चित्रण में सहायता प्राप्त होती है। प्रेमचन्द कथोपकथन के महत्व और उसकी चरित्र चित्रण सम्बन्धी विशेषता से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने लिखा है—'उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय, उतना ही अच्छा है। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को—जो किसी चरित्र के मुँह से निकले—उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।[1]' इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द कथोपकथन के महत्व के अतिरिक्त उसकी स्वाभाविकता और कलात्मकता के प्रति भी सजग थे। उनके अधिकांश कथोपकथन स्वाभाविक, सरल और चुस्त हैं; किन्तु कुछ स्थानों में उन्होंने बहुत लम्बे कथोपकथन प्रस्तुत किए हैं जिससे वार्ता की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। अन्य उपन्यासों की अपेक्षा 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में इसके अनेक दृष्टांत मिल जाते हैं। 'कर्मभूमि' में कुछ कथोपकथन अत्यधिक लम्बे हो गए हैं। कचहरी में भिखारिन के बयान से सम्बन्धित कथोपकथन पौने दो पृष्ठ तक दौड़ता है। इसी उपन्यास में सकीना सुखदा के सम्मुख लम्बा व्याख्यान दे डालती है और सलीम को गजनवी साहब का लम्बा लेक्चर सुनना पड़ता है।[2] 'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह की स्थूल वार्ता से पाठक धैर्य खो बैठता है।[3] जिस क्रम में वह बोलना प्रारम्भ करते हैं, मालूम पड़ता है रुकेंगे ही नहीं। इन प्रौढ़ उपन्यासों

---

१ कुछ विचार : भाग १ पृष्ठ ५५

२ कर्मभूमि : पृष्ठ ६५, ६६, २०२, २०३, ३२२, ३२३

३ गोदान : ,, ४५, १५, १६, १७

की अपेक्षा 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' ऐसे लघुकाय प्रारम्भिक उपन्यासों में कथोपकथन की स्वाभाविकता और सूक्ष्मता विशेष सुरक्षित है। 'प्रतिज्ञा' के कथोपकथन कलात्मक होने के साथ ही परिस्थितियों के अनुकूल भी हैं। स्वाभाविकता की दृष्टि से 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' के ग्रामीण पात्रों के कथोपकथन उल्लेख्य हैं। उनकी प्रभावात्मकता का स्रोत उनकी स्वाभाविकता ही है।

कथोपकथन की स्वाभाविकता के लिए वार्ता की अनुरूपता पर दृष्टि रखी जाती है। पर निरी वार्ता की अनुरूपता जहाँ एक ओर बनावटी या कृत्रिम कथोपकथन का बहिष्कार करती है, वहीं वह नीरस और भद्दे कथोपकथन की सृष्टि भी कर सकती है। इसलिए उसे सरस और प्रभावसम्पन्न कथोपकथन का रूप देने के निमित्त रमणीय बनाना आवश्यक है। पर निरी रमणीयता स्वाभाविकता और सजीवता का प्रत्याख्यान करती है। अतएव यथार्थ और रमणीयता का या वास्तविकता और सामान्य नाटकीयता का समन्वय कथोपकथन को कलात्मक रूप विधान के साथ ही उसे सरस और स्वाभाविक बनाएगा। प्रेमचंद ने कथोपकथन कला की इस समन्वित प्रणाली के प्रयोग द्वारा उत्कृष्ट कथोपकथनों की सृष्टि की है। उदाहरण के लिए —

'झुनिया ने कलसा न दिया। कुएँ की जगत पर मुस्कराती हुई बोली- 'तुम हमारे मेहमान हो। कहोगे, एक लोटा पानी भी किसी ने न दिया।'

'मेहमान काहे से हो गया। तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूं।'

'पड़ोसी साल-भर में एक बार भी सूरत न दिखाये, तो मेहमान ही है।'

'रोज-रोज आने से मरजाद भी तो नहीं रहती।'

झुनिया हँसकर तिरछी नजरों से देखती हुई बोली—'वही मरजाद तो दे रही हूं। महीने में एक बेर आओगे, ठण्डा पानी दूंगी। पन्द्रहवें दिन आओगे, चिलम पाओगे। सातवें दिन आओगे, खाली बैठने को माची दूंगी। रोज-रोज आओगे कुछ न पाओगे।'

'दरशन तो दोगी?'

'दरशन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।[1]'

कथोपकथन की समन्वित पद्धति का एक अच्छा उदाहरण और प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सरल, स्वाभाविक और कम शब्दों में कलात्मक वार्तालाप की योजना की गई है—

'मुन्नी ने कहा—तो भाग जाने से क्या होगा ? अगर बुरा लगता है तो जाकर समझाओ।'

'मेरी बात कौन सुनेगा मुन्नी ?'

'तुम्हारी बात न सुनेंगे; तो और किसकी बात सुनेंगे लाला ?'

'और जो किसीने न माना !'

'और जो मान गये ! आओ कुछ बद लो।'

'अच्छा क्या बदती हो ?'

'मान जायँ, तो मुझे एक साड़ी, अच्छी सी ला देना।'

'और न माना, तो तुम मुझे क्या दोगी ?'

'एक कौड़ी।'[2]

इसी प्रकार प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों में भी स्वाभाविक और कलात्मक कथोपकथन के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं। इनमें न कृत्रिमता है, न वार्ता प्रवाह में व्याघात पड़ता है। यह कथोपकथन के समन्वित विधान का सफल प्रयोग है।

प्रेमचन्द ने कथोपकथन द्वारा अपने उपन्यासों को रोचक बनाया है। कथा-वर्णन की एकरसता का समाहार करने में भी ये सहायक हुए हैं। पात्र-विशेष के कथोपकथन स्वतः बड़े रोचक हैं, जैसे 'कर्मभूमि' में सलीम और 'गोदान' में मिर्जा खुर्शेद। इनकी वार्ता में उदू की सजीवता पूरी उतरी है। इसमें सन्देह नहीं कि कथोपकथन के प्रयोग से प्रेमचंद के उपन्यासों का सौन्दर्य अभिवृद्ध हुआ।

सार्थकता इसी में मानते हैं कि वे चरित्र पर प्रकाश डालें और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्ट करें[१]। कथोपकथन द्वारा उस चारित्रिक विशेषता को थोड़े में ही प्रकट किया जा सकता है जिसके लिये उपन्यासकार अपनी ओर से अनेक पंक्तियाँ लिखता है। प्रेमचंद ने चरित्र-चित्रण की अभिनयात्मक या नाटकीय विधि के अन्तर्गत इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया है। उनके किसी भी उपन्यास में इसके अनेक उदाहरण मिल जायेंगे।

कथोपकथन कथा-प्रगति में भी सहायक होते हैं। इनमें उपन्यास की क्रिया action) वार्ता के नीचे होती रहती है। प्रेमचंद के उपन्यासों में कथोपककथन की यह विशेषता उपलब्ध है। उन्होंने कथाविकास में वार्ता से सहायता ली अवश्य है, पर चरित्र—चित्रण की अपेक्षा कम। यह उचित ही है; क्योंकि मुख्यतः कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण में सहायता ली जाती है।

कथोपकथन में व्यवहृत भाषा पात्र के मानसिक धरातल के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षित और अशिक्षित चरित्रों के कथोपकथन में अन्तर होना चाहिए। ऐसे कथोपकथन प्रस्तुत करना जिसमें अशिक्षित गँवार साहित्यिक-भाषा बोलता हो और मूर्ख दार्शनिक व्यवस्था देता हो, नितांत हास्यास्पद है। 'प्रसाद' के नाटकों के कथोपकथन इस त्रुटि से बहुत-कुछ प्रभावित हैं। प्रेमचंद ने कथोपकथन की भाषा में औचित्य विचार का अतिक्रमण नहीं किया है। 'वरदान' से लेकर 'गोदान' तक में प्रयुक्त कथोपकथन में इसके उदाहरण प्राप्य हैं। उनके कथोपकथन की स्वाभाविकता का यह मुख्य कारण है। प्रेमचद ने इस पर भी ध्यान रखा है कि पात्रों के विचार उनके मानसिक अँतर के अनुकूल हो। उन्होंने मूर्ख को विद्वान की भाँति वार्ता करते दिखाकर अविश्वसनीयता नहीं उत्पन्न की है।

हिन्दी उपन्यासों के कथोपकथन में प्रयुक्त भाषा के सम्बंध में प्रेमचंद ने सामान्य रूप से विचार किया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में उनका भाषा-विषयक आ[illegible] से निर्धारित हुआ है। इसी लिए मुसलमान पात्रों के वार्तालाप में वह उर्दू-फारसी बहुल भाषा का प्रयोग करते हैं। शिक्षित नागरिक पात्रों के कथोपकथन में कुछ अंग्रेजी

---

[१] कुछ विचार : भाग १ पृष्ठ ५५

शब्द भी प्राप्त हैं। स्वाभाविकता की दृष्टि से ही प्रेमचंद ग्रामीण पात्रों की वार्ता में ठेठ और लोक प्रचलित शब्दों का यथेष्ट प्रयोग करते हैं। 'कर्मभूमि' और विशेष रूप से 'गोदान' में ग्रामीण व्यक्तियों की वार्ता में ठेठ शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है। कथोपकथन में स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा के निमित्त प्रेमचंद कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि उनकी कथोपकथन–कला की सफलता का रहस्य उनका भाषा सम्बंधी आदर्श है।

उद्धरण-चिह्न लगा देने से ही कोई वार्ता कथोपकथन नहीं बन जाती। कथोपकथन की कलात्मकता उसकी चुस्ती, स्वाभाविकता और सूक्ष्मता में है। किसी विचार, सिद्धांत या ज्ञानप्रद बात को लिखकर उद्धरण चिह्न में बन्द कर देना कथोपकथन नहीं है। कथोपकथन की कलात्मकता के निर्वाह के लिए वार्ता में निरर्थक वाद-विवाद और सिद्धांत प्रचार न किया जाय। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के कतिपय स्थलों में यह त्रुटि की है जिससे उनकी कथोपकथन कला का सौंदर्य कम हो गया है।

१६
देशकाल

उपन्यास में देशकाल का चित्रण महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि यह पृष्ठभूमि के अतिरिक्त समय की परिस्थितियों से भी परिचय कराता है। देशकाल के अन्तर्गत उन सब सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृतियों का चित्रण अभीष्ट है जो उपन्यास की परिस्थितियों को प्रभावित करती हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में भारतीय जीवन और समाज की प्रायः सब प्रवृतियाँ अङ्कित हैं। समाज-चित्रण का जितना व्यापक लक्ष्य लेकर प्रेमचंद चले थे, उतना कदाचित दूसरा भारतीय उपन्यासकार नहीं। इस दृष्टि से प्रेमचंद की प्रतिष्ठा प्रसिद्ध फ्रेंच उपन्यासकार बालजाक और जोला के साथ है जिन्होंने पूरे फ्रेंच जीवन और समाज का चित्रण करने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया था। प्रेमचंद ने भी अपने कई उपन्यासों में भारतीय समाज और जीवन[1] के व्यापक चित्रण का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। उनके 'गोदान'

---

[1] 'भारतीय जीवन और समाज' से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि प्रेमचंद ने सम्पूर्ण भारतीय समाज और जीवन का चित्रण किया है। यह समझना भूल होगी, क्योंकि प्रेमचंद का समाज उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तक ही सीमित है। हमारा अभिप्राय उस राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिथितियों से है जो सारे भारतीय समाज को समान रूप से प्रभावित कर रही थीं। सम्पूर्ण देश पराधीन था, उसका सामाजिक जीवन सब जगह ही रूढ़िग्रस्त और कुरीतियों से जर्जर था, आर्थिक शोषण और विषमता जैसी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में थी, वैसी ही सारे देश में और धर्म का पाखण्ड सर्वत्र एक सा था। वस्तुतः सम्पूर्ण भारतीय समाज और जीवन की परिस्थितियों को प्रेमचंद ने अपने उत्तर प्रदेशीय पूर्वी जिलों के समाज-चित्रण में निबद्ध कर दिया है। यहाँ हम पुनः कहते हैं कि इसके लिए उन्हें विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा, क्योंकि प्रेमचंदकालीन भारतीय जीवन और समाज की मूलवृत्ति सर्वत्र एक सी थी।—लेखक

और 'रंगभूमि' में समाज के विषय-चित्रण का आधार विविध वर्गों का जीवन-चित्रण है। इसमें उच्च, मध्य और निम्नवर्ग के जीवन के बहुविध चित्र अङ्कित हैं। प्रेमचंद का जीवन-चित्रण यथार्थ की ठोस भूमि पर आधारित है और देश दशा से पूर्णतया प्रभावित है। इसीलिए वह तत्कालीन राज-नीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों के लोकव्यापी प्रभाव को भलीभाँति ग्रहण किये है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में समाज के प्रत्येक वर्ग के जीवन के चित्र प्राप्त हैं। उन्होंने उच्च, मध्य और निम्नवर्ग के चित्रण में उनकी समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है। उच्च वर्ग में प्रेमचंद की दृष्टि विशेष रूप से पूँजीपति और जमींदार वर्ग पर टिकी है। उहोंने 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि,' 'कायाकल्प' और 'गोदान' में जमींदारों और पूँजीपतियों के द्वारा समाज शोषण की कथा प्रस्तुत की है। इनके पारिवारिक जीवन के अतरंग में प्रवेश कर उपन्यासकार ने यह दिखाया है कि उनमें सुख और शांति का सर्वथा अभाव है। पारिवारिक जीवन की समस्या उच्च वर्ग की एक मुख्य समस्या है, जबकि व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण से उच्चवर्ग स्वयं एक समस्या है। वह परोपजीवी और शोषक है और किसी भी स्वस्थ समाज-व्यवस्था का अङ्ग नहीं हो सकता। मध्यवर्ग के जीवन में सिद्धांतों और आदर्शों का संघर्ष है। यह प्राचीन और नवीन मान्यताओं की प्रतिकूलता का प्रतिफल है। यह संघर्ष 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' में व्यक्त हुआ है। इसमें रूढ़ि के विरुद्ध प्रगति का संदेश निहित है। मध्यवर्ग में सिद्धांतों और आदर्शों के परस्पर विरोध का कारण है कि यह वर्ग एक साथ ही प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी है। मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयाँ भी कम नहीं हैं, किंतु निम्नवर्ग की सबसे बड़ी समस्या पेट की समस्या है। यह वर्ग अशिक्षा, रूढ़ि और अन्ध विश्वास के अंधकार में पड़ा हुआ है। किंतु उसकी आर्थिक दुरावस्था का कारण वह निर्दय शोषण है जो उच्चवर्ग प्रतिपन्न करता है। 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि' और विशेषतया 'गोदान' में निम्नवर्ग के शोषण की मर्मान्तक कथा प्रस्तुत की गई है। वस्तुतः इस वर्ग के निर्वाह की समस्या इतनी विकट है कि इसकी अन्य समस्याओं के प्रति ध्यान केन्द्रित नहीं होता।

प्रेमचंद के उपन्यासों में समाजिक राजनीतिक स्थिति का अच्छा चित्रण है। देश की राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण में प्रेमचद ने उन समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है जिन्होंने काल के राजनीतिक जीवन को आंदोलित कर रखा था। अहिंसात्मक जन आंदोलन, किसान आंदोलन उग्र नीतिवादियों के आतंकवादी कार्य, मजदूर आंदोलन आदि तत्कालीन राजनीतिक जीवन के मुख्य अंग थे। प्रेमचंद राजनीतिक परिस्थितियों के चित्राकंन में इन आंदोलनों पर दृष्टि रखी है और कथा की आवश्यकतानुसार मुख्यरूप से या पृष्ठभूमि के निमित्त इनका प्रयोग किया है। गाँधीवादी आंदोलनों की गहरी छाप कर्मभूमि पर पड़ी है। उसमें अनीति, अन्याय और असत् को नीति न्याय और सत् के द्वारा पराभूत करने की आकांक्षा अनेक स्थलों पर व्यक्त होती है। 'रंगभूमि' पर भी समाजिक आंदोलन पद्धति का प्रभाव है, इसमे विद्रोहियों की गुप्तसंस्थाओं की आतंक-नीति का भी चित्रण किया है। 'कर्मभूमि' में किसान आंदोलन के अच्छे चित्र प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त अछूत आंदोलन, विदेशी आंदोलन आदि अनेक छोटे-बड़े आंदोलन इसमें कथा के विशिष्ट अंग हैं। वस्तुतः 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' आंदोलन के प्रमुख उपन्यास हैं और तत्कालीन राजनीतिक प्रवृत्तियों का प्रभावपूर्ण चित्रण करते हैं। इन आंदोलनों के अतिरिक्त प्रेमचंद ने उस विचारधारा का भी उल्लेख किया है जो वैज्ञानिक ढंग से देश की उद्धार की आशा रखती थी।[१] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार ने बड़े व्यापकत्व से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का का चित्रण किया है।

आर्थिक-स्थिति चित्रण में प्रेमचंद ने समाज के सब वर्गों का संस्पर्श किया है। उच्चवर्ग में वह जमींदार पूँजीपति और उद्योगपतियों की शोषण-नीति की अमानुषीयता अनावृत करते हैं। उन्होंने 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में जमींदार और महाजन द्वारा किसान का शोषण दिखाया है, 'रंगभूमि' में उद्योगपतियों द्वारा निर्धन-दरिद्र व्यक्तियों की भूमि हड़पने और स्वयं लाभ उड़ाने की विधि का भँडाफोड किया है और 'गोदान' में खन्ना की पूँजीवादी अर्थ नीति के विपाक्त प्रभाव की चर्चा की है। प्रेमचंद ने

[१] रंगभूमि: भाग २: पृष्ठ

उच्चवर्ग की आर्थिक सम्पन्नता को एक बुरे प्रभाव के रूप में माना है; क्योंकि वह शोषण-निर्भर है। वह उच्च मध्यवर्ग के वकील डाक्टर आदि स्वतंत्र व्यवसायियों की निंदा तभी करते है, जब ये मनुष्य के सुख-दुख की उपेक्षा कर उसकी लूट से अपना घर भरते हैं। 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने उच्चमध्यवर्ग की समाजविरोधी अर्थलोलुपता का उल्लेख्य चित्रण किया है। प्रेमचंद ने मध्यवर्ग के अभावपूर्ण जीवन की आर्थिक कठनाइयों के 'सेवासदन' 'निर्मला' और 'गबन' में मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मध्यवर्ग की अनेक दुश्चेष्टाओं का कारण आर्थिक अभाव और कठिनाइयाँ हैं। सुमन और रामनाथ के पतन में आर्थिक प्रश्न कम महत्वपूर्ण न था, पर सर्वाधिक आर्थिक विषमता-पीड़ित वर्ग है, निम्नवर्ग। मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों का अंत है, पर निम्नवर्ग की अनंत ! इस वर्ग का जीवन अभाव की अनंत कथा है। उस पर उच्चवर्ग का शोषण इसकी कमर तोड़ देता है। अविश्रांत जीवन के अनवरत परिश्रम का फल भूख, की ज्वाला में जलकर मिलता है। प्रेमचंद ने उन परिस्थितियों का विशद् चित्रण किया है, जिनके कारण निम्नवर्ग का जीवन ग्रस्त हो गया है। वह स्पष्ट रूप से उस समाज व्यवस्था की आलोचना करते हैं जिसमें मनुष्य का शोषण होता है। प्रेमाश्रम में जमींदार द्वारा किसानों की शोषण की कथा है, 'गोदान' में महाजन द्वारा और 'रंगभूमि' में उद्योगपति—पूँजीपति द्वारा। शोषण की इस व्यवस्था ने निम्नवर्ग के दो मुख्य अंग- किसान और मज़दूर के जीवन को कितना विषादमय बना दिया है, यह प्रेमचद के मुख्य उपन्यासों में द्रष्टव्य है।[१] निम्नवर्ग की आर्थिक परिस्थितियों के अंकन में उपन्यासकार ने निर्मम यथार्थवाद से काम लिया है इसलिए उनके उपन्यासों का यह अंश अमित प्रभाव सम्पन्न है।

सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण में उपन्यासकार ने कुछ मुख्य सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवा विवाह और 'सेवासदन' में वेश्या-समस्या का चित्रण किया गया है। 'निर्मला' में दहेज और अनमेल विवाह से उत्पन्न परिस्थितियों का हृदयद्रावक वर्णन है। यह समस्याएँ सर्वाधिक मध्यवर्ग को प्रभावित करती हैं, अतएव प्रेमचंद ने

---

[१] गोदान : पृष्ठ ४७९, ४८०, ३८९.

प्रेमचंद के उपन्यासों में समाजिक राजनीतिक स्थिति का अच्छा चित्रण है। देश की राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण में प्रेमचद ने उन समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है जिन्होंने काल के राजनीतिक जीवन को आंदोलित कर रखा था। अहिंसात्मक जन आंदोलन, किसान आंदोलन उग्र नीतिवादियों के आतंकवादी कार्य, मजदूर आंदोलन आदि तत्कालीन राजनीतिक जीवन के मुख्य अंग थे। प्रेमचंद राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रांकन में इन आंदोलनों पर दृष्टि रखी है और कथा की आवश्यकतानुसार मुख्यरूप से या पृष्ठभूमि के निमित्त इनका प्रयोग किया है। गाँधीवादी आंदोलनों की गहरी छाप कर्मभूमि पर पड़ी है। उसमें अनीति, अन्याय और असत् को नीति न्याय और सत् के द्वारा पराभूत करने की आकांक्षा अनेक स्थलों पर व्यक्त होती है। 'रंगभूमि' पर भी समाजिक आंदोलन पद्धति का प्रभाव है, इसमे विद्रोहियों की गुप्तसंस्थाओं की आतंक-नीति का भी चित्रण किया है। 'कर्मभूमि' में किसान आंदोलन के अच्छे चित्र प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त अछूत आंदोलन, विदेशी आंदोलन आदि अनेक छोटे-बड़े आंदोलन इसमें कथा के विशिष्ट अंग हैं। वस्तुतः 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' आंदोलन के प्रमुख उपन्यास हैं और तत्कालीन राजनीतिक प्रवृत्तियों का प्रभावपूर्ण चित्रण करते हैं। इन आंदोलनों के अतिरिक्त प्रेमचंद ने उस विचारधारा का भी उल्लेख किया है जो वैज्ञानिक ढंग से देश की उद्धार की आशा रखती थी।[१] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार ने बड़े व्यापकत्व से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का का चित्रण किया है।

आर्थिक-स्थिति चित्रण में प्रेमचंद ने समाज के सब वर्गों का संस्पर्श किया है। उच्चवर्ग में वह जमींदार पूँजीपति और उद्योगपतियों की शोषण-नीति की अमानुषीयता अनावृत करते हैं। उन्होंने 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में जमींदार और महाजन द्वारा किसान का शोषण दिखाया है, 'रंगभूमि' में उद्योगपतियों द्वारा निर्धन-दरिद्र व्यक्तियों की भूमि हड़पने और स्वयं लाभ उड़ाने की विधि का भँडाफोड किया है और 'गोदान' में खन्ना की पूँजीवादी अर्थ नीति के विषाक्त प्रभाव की चर्चा की है। प्रेमचंद ने

[१] रंगभूमि: भाग २: पृष्ठ

उच्चवर्ग की आर्थिक सम्पन्नता को एक बुरे प्रभाव के रूप में माना है; क्योंकि वह शोषण-निर्भर है। वह उच्च मध्यवर्ग के वकील डाक्टर आदि स्वतंत्र व्यवसायियों की निंदा तभी करते है, जब ये मनुष्य के सुख-दुख की उपेक्षा कर उसकी लूट से अपना घर भरते हैं। 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने उच्चमध्यवर्ग की समाजविरोधी अर्थलोलुपता का उल्लेख्य चित्रण किया है। प्रेमचंद ने मध्यवर्ग के अभावपूर्ण जीवन की आर्थिक कठनाइयों के 'सेवासदन' 'निर्मला' और 'गबन' में मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मध्यवर्ग की अनेक दुश्चेष्टाओं का कारण आर्थिक अभाव और कठिनाइयाँ हैं। सुमन और रामनाथ के पतन में आर्थिक प्रश्न कम महत्वपूर्ण न था, पर सर्वाधिक आर्थिक विषमता-पीड़ित वर्ग है, निम्नवर्ग। मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों का अंत है, पर निम्नवर्ग की अनंत! इस वर्ग का जीवन अभाव की अनंत कथा है। उस पर उच्चवर्ग का शोषण इसकी कमर तोड़ देता है। अविश्रांत जीवन के अनवरत परिश्रम का फल भूख, की ज्वाला में जलकर मिलता है। प्रेमचंद ने उन परिस्थितियों का विशद् चित्रण किया है, जिनके कारण निम्नवर्ग का जीवन ग्रस्त हो गया है। वह स्पष्ट रूप से उस समाज व्यवस्था की आलोचना करते हैं जिसमें मनुष्य का शोषण होता है। प्रेमाश्रम में जमींदार द्वारा किसानों की शोषण की कथा है, 'गोदान' में महाजन द्वारा और 'रंगभूमि' में उद्योगपति—पूँजीपति द्वारा। शोषण की इस व्यवस्था ने निम्नवर्ग के दो मुख्य अंग- किसान और मज़दूर के जीवन को कितना विषादमय बना दिया है, यह प्रेमचद के मुख्य उपन्यासों में द्रष्टव्य है।[1] निम्नवर्ग की आर्थिक परिस्थितियों के अंकन में उपन्यासकार ने निर्मम यथार्थ वाद से काम लिया है इसलिए उनके उपन्यासों का यह अंश अमित प्रभाव सम्पन्न है।

सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण में उपन्यासकार ने कुछ मुख्य सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवा विवाह और 'सेवासदन' में वेश्या-समस्या का चित्रण किया गया है। 'निर्मला' में दहेज और अनमेल विवाह से उत्पन्न परिस्थितियों का हृदयद्रावक वर्णन है। यह समस्याएँ सर्वाधिक मध्यवर्ग को प्रभावित करती हैं, अतएव प्रेमचंद ने

[1] गोदान : पृष्ठ ४७६, ४८०, ३८६.

मध्यवर्गीय जीवन-व्याख्या के अंतर्गत ही इन पर दृष्टि डाली है। ये समस्याएँ प्रेमचंद कालीन समाज को ही प्रभावित नहीं कर रही थीं, आज भी इनका प्रभाव समाज के लिए उतना ही अहितकर है, जितना तब था। विधवा समस्या, वेश्यासमस्या, दहेज और अनमेल विवाह के प्रश्न हमारे समाज के कलंक-चिंह अब भी बने हुए हैं। अतएव इन्हें 'समाजिक समस्या चित्रण' कहकर टालना उचित नहीं है। हाँ, इन समस्याओं को कुरीतियों के रूप में ग्रहण किया है और इनके समाधान के निमित्त समसामयिक आर्य-समाज ऐसी संस्थाओं के सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। इसीलिए उन्होंने समस्याओं का स्थायी समाधान न प्रस्तुत करके 'वनिता आश्रम' 'सेवासदन' आदि की स्थापना की।

प्रेमचंद ने अपने समाज-चित्रण में धार्मिक स्थिति का यथातथ्य चित्रण किया है। उन्होंने लोक प्रचलित धार्मिक-व्यवथा के पाखण्ड को अनावृत कर उसके यर्थाथ रूप को दिखाया है। प्रेमचंद ने यह अङ्कित किया है कि आधुनिक समाज के धर्म-विधान में नीति और सत्य के प्रति निष्ठा नहीं है। धर्म से आचार-विचार का अर्थबोध होता है।[1] इतना ही नहीं, धर्म शोषण का साधन बन गया है।[2] इसके नाम पर महन्त, महाजन बन गए हैं। शोषण की निर्दय चक्की धर्म के शासन में और भी कठोर हो उठी है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रेमचंद ने धर्म का विरोध नहीं किया है। प्रेमचंद ने धर्म के उस रूप की व्यंगात्मक आलोचना की है जो शोषण को प्रश्रय देता है और लोकपीड़न में सहायक है। धर्म से प्रेमचंद तत्त्ववाद के कायल हैं। इसीलिए वह सत्य, नीति, न्याय, दया को धर्म का अनिवार्य अङ्ग समझते हैं। जिस धर्म-विधान की व्यावहारिकता उसका प्रत्याख्यान करती है, उसका प्रेमचंद से समझौता नहीं हो सकता। चाहे धर्म हो चाहे, राजनीति, समाजनीति और अर्थनीति; प्रेमचंद सर्वत्र अनीति और अन्याय का विरोध करते हैं।

---

[1] कर्मभूमि : पृष्ठ ४६।

[2] सेवासदन : पृष्ठ ५, ६।

१७

भाषा-शैली

हिन्दी में योग देने के पूर्व प्रेमचंद उर्दू में लिखा करते थे। इसीलिए उनकी प्रारम्भिक कृतियों में उर्दू का यथेष्ठ प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रारंभिक उपन्यासों में—विशेषरूप से मुसलमान समाज में व्यवहृत होनेवाली भाषा अरबी-फारसी के इतने क्लिष्ट शब्दों से भरी है कि मुसलमान पात्रों के कथोपकथन का अर्थ समझना टेढ़ी खीर हो जाता है। इससे चाहे कथोपकथन में स्वाभाविकता आई हो, किंतु भाषा की बोधगम्यता कठिन हो गई है। वस्तुतः यह सिद्धांत ही भ्रमपूर्ण है कि जिस जाति का व्यक्ति हो, उसके वार्तालाप में उसकी भाषा प्रयुक्त की जाय। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में आए जापानी या चीनी पात्र के लिये उनकी मातृभाषा का प्रयोग नितांत हास्यास्पद होगा। यह सम्भव भी नहीं है। उर्दू के विषय में यह कहा जा सकता है कि इससे अपेक्षाकृत अधिक व्यक्ति परिचित हैं। पर प्रेमचंद के प्रारम्भिक उपन्यासों का भाषाविषयक सिद्धांत माननीय नहीं हो सकता। उनकी इस प्रवृत्ति का विरोध हुआ था जिससे परवर्ती उपन्यासों में उर्दू-फारसी के क्लिष्ट शब्दों का आग्रह बहुत कम हो गया है। आगे चलकर प्रेमचंद मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू के शब्दों का बराबर प्रयोग करते रहे, किंतु क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग यथेष्ठ कम कर दिया था।

---

[1] सेवासदन : पृष्ठ ८८, ८९, २११, १९० ।

[2] प्रेमाश्रम : पृष्ठ १९, २८७, २८८, ३३४, ३३५, ३३६ ४६०, ४६१ ४६३

[3] गोदान : पृष्ठ ८२ ८३, १२५, १२६, ४४३, ४४४, ४४५ .

,, कर्मभूमि : पृष्ठ ७, ८, ६१, ६६, १००, १०५, १३३, १४०, २५०, २५१, २८८, २८९, २९१, ३१४, ३१५, ३१६, ३२२, ३८२, ४१२, ४१३ ।

उर्दू शब्दों के क्लिष्ट प्रयोग के अतिरिक्त प्रेमचंद ने इस भाषा की उन विशेषताओं को ही ग्रहण किया है जो हिंदी की प्रकृति के विरुद्ध नहीं पड़तीं और उसमें खप जाती हैं। इस प्रकार हिंदी के निजी स्वरूप की रक्षा के साथ उसकी अभिव्यंजना शक्ति के विकास में प्रेमचंद ने महत्वपूर्ण योग दिया है। प्रेमचंद की भाषा में सजीवता और शैली में प्रवाह की प्रमुखता का मुख्य कारण उर्दू का प्रभाव है। उनकी भाषा-शैली में मुहावरों और का प्रचुर प्रयोग भी उर्दू का प्रभाव सूचित करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की लोकप्रिय भाषा-शैली कुछ अंशों में उर्दू की ऋणी है।

प्रेमचंद अपनी भाषा के लिए शब्द-चयन में यथेष्ठ उदार हैं। उन्होंने यथास्थान संस्कृत, अँग्रेजी, उर्दू-फारसी और हिन्दी के ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है। शब्द चयन में विषय की अधिकाधिक अभिव्यक्ति को सामर्थ्य पर उपन्यासकार की दृष्टि रही है। भाषा की स्वाभाविकता बढ़ाने के लिए प्रेमचंद ने अनेक लोक-प्रचलित ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है—'पचड़ा, हलकन, टिकौना, बिसूर, ठींग, बेसाहने, जोह, नगीच, हुमक, धौंस, सेंत, बधिया, पुरौती, कचूमर, बानगी, बुड़बकपन, नाकिस, कूकुर, बूता, भुरकस, साँसत, चिरौरी, इत्यादि। इन शब्दों को उपन्यासकार ने स्वयं प्रयुक्त किया है और पात्रों के कथोपकथन में। 'गोदान' में ग्रामीण समाज का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक है, अतएव ठेठ शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अशिक्षित ग्रामीण पात्र तद्भव शब्दों का प्रायः प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए—'बनिज (वाणिज्य), अतार (अवतार), भरम (भ्रम), परान (प्राण), परन (प्रण), रकत (रक्त), पुन (पुण्य), धरम (धर्म), पच्छ (पक्ष), करम (कर्म), सासतर (शास्त्र), निखिद (निषिद्ध), नियाव (न्याय) सामरथ (समर्थ) इत्यादि। संस्कृत शब्दों की भाँति ही उर्दू-फारसी के शब्द भी उपन्यासकार एवं पात्रों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। उर्दू-फारसी शब्दों के प्रयोग में एक विशेषता यह है कि इन शब्दों के प्रयोग उनके तत्सम या विशुद्ध रूप में किये गए हैं। हिंदी में प्रायः 'ज़वाल' का 'जवाल' लिखा जाता है, पर प्रेमचंद ने प्रथम रूप ग्रहण किया। उर्दू-फारसी की भाँति ही प्रेमचंद अँग्रेजी शब्दों का भी उदार प्रयोग करते हैं। अँग्रेजी शब्दों का कुछ तो हिंदी में खप जाना संभव नहीं है! अतएव उन अँग्रेजी शब्दों

१७

भाषा-शैली

हिन्दी में योग देने के पूर्व प्रेमचंद उर्दू में लिखा करते थे। इसीलिए उनकी प्रारम्भिक कृतियों में उर्दू का यथेष्ठ प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रारंभिक उपन्यासों में—विशेषरूप से मुसलमान समाज में व्यवहृत होनेवाली भाषा अरबी-फारसी के इतने क्लिष्ट शब्दों से भरी है कि मुसलमान पात्रों के कथोपकथन का अर्थ समझना टेढ़ी खीर हो जाता है। इससे चाहे कथोपकथन में स्वाभाविकता आई हो, किंतु भाषा की बोधगम्यता कठिन हो गई है। वस्तुतः यह सिद्धांत ही भ्रमपूर्ण है कि जिस जाति का व्यक्ति हो, उसके वार्तालाप में उसकी भाषा प्रयुक्त की जाय। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में आए जापानी या चीनी पात्र के लिये उनकी मातृभाषा का प्रयोग नितांत हास्यास्पद होगा। यह सम्भव भी नहीं है। उर्दू के विषय में यह कहा जा सकता है कि इससे अपेक्षाकृत अधिक व्यक्ति परिचित हैं। पर प्रेमचंद के प्रारम्भिक उपन्यासों का भाषाविषयक सिद्धांत माननीय नहीं हो सकता। उनकी इस प्रवृत्ति का विरोध हुआ था जिससे परवर्ती उपन्यासों में उर्दू-फारसी के क्लिष्ट शब्दों का आग्रह बहुत कम हो गया है। आगे चलकर प्रेमचंद मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू के शब्दों का बराबर प्रयोग करते रहे, किंतु क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग यथेष्ठ कम कर दिया था।

---

[१] सेवासदन : पृष्ठ ८८, ८६, २११, १६०।

[२] प्रेमाश्रम : पृष्ठ १६, २८७, २८८, ३३४, ३३५, ३३६ ४६०, ४६१ ४६३

[३] गोदान : पृष्ठ ८२ ८३, १२५, १२६, ४४३, ४४४, ४४५.

,, कर्मभूमि : पृष्ठ ७, ८, ६१, ६६, १००, १०५, १३३, १४०, २५०, २५१, २८८, २८६, २६१, ३१४, ३१५, ३१६, ३२२, ३८२, ४१२, ४१३।

उर्दू शब्दों के क्लिष्ट प्रयोग के अतिरिक्त प्रेमचंद ने इस भाषा की उन विशेषताओं को ही ग्रहण किया है जो हिंदी की प्रकृति के विरुद्ध नहीं पड़तीं और उसमें खप जाती हैं। इस प्रकार हिंदी के निजी स्वरूप की रक्षा के साथ उसकी अभिव्यंजना शक्ति के विकास में प्रेमचंद ने महत्वपूर्ण योग दिया है। प्रेमचंद की भाषा में सजीवता और शैली में प्रवाह की प्रमुखता का मुख्य कारण उर्दू का प्रभाव है। उनकी भाषा-शैली में मुहावरों और का प्रचुर प्रयोग भी उर्दू का प्रभाव सूचित करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की लोकप्रिय भाषा-शैली कुछ अंशों में उर्दू की ऋणी है।

प्रेमचंद अपनी भाषा के लिए शब्द-चयन में यथेष्ठ उदार हैं। उन्होंने यथास्थान संस्कृत, अँग्रेजी, उर्दू-फारसी और हिन्दी के ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है। शब्द चयन में विषय की अधिकाधिक अभिव्यक्ति की सामर्थ्य पर उपन्यासकार की दृष्टि रही है। भाषा की स्वाभाविकता बढ़ाने के लिए प्रेमचंद ने अनेक लोक-प्रचलित ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है—'पचड़ा, हलकन, टिकौना, बिसूर, ठींग, बेसाहने, जोह, नगीच, हुमक, घौंस, सेंत, बधिया, पुरौती, कचूमर, बानगी, बुड़बकपन, नाकिस, कूकुर, बूता, भुरकस, साँसत, चिरौरी, इत्यादि। इन शब्दों को उपन्यासकार ने स्वयं प्रयुक्त किया है और पात्रों के कथोपकथन में। 'गोदान' में ग्रामीण समाज का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक है, अतएव ठेठ शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अशिक्षित ग्रामीण पात्र तद्भव शब्दों का प्रायः प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए—'बनिज (वाणिज्य), अतार (अवतार), भरम (भ्रम), परान (प्राण), परन (प्रण), रकत (रक्त), पुन (पुण्य), धरम (धर्म), पच्छ (पक्ष), करम (कर्म), सासतर (शास्त्र), निखिद (निषिद्ध), निवाव (न्याय) सामरथ (समर्थ) इत्यादि। संस्कृत शब्दों की भाँति ही उर्दू-फारसी के शब्द भी उपन्यासकार एवं पात्रों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। उर्दू-फारसी शब्दों के प्रयोग में एक विशेषता यह है कि इन शब्दों के प्रयोग उनके तत्सम या विशुद्ध रूप में किये गए हैं। हिंदी में प्रायः 'ज़वाल' का 'जवाल' लिखा जाता है, पर प्रेमचंद ने प्रथम रूप ग्रहण किया। उर्दू-फारसी की भाँति ही प्रेमचंद अँग्रेजी शब्दों का भी उदार प्रयोग करते हैं। अँग्रेजी शब्दों का कुछ तो हिंदी में खप जाना संभव नहीं है! अतएव उन अँग्रेजी शब्दों

का प्रयोग उचित कहा जायगा, जिन्हें अभिव्यञ्जना की दृष्टि से प्रयुक्त किया गया है और जो हिंदी में चल निकले हैं। प्रेमचंद ने ऐसे कुछ शब्दों का अच्छा प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए—सलोनी ने अमर से अपील की[1] ...... भोला ने अपील भरी आँखों से होरी को देखा[2] .....। इनमें प्रयुक्त 'अपील' शब्द से प्रायः सभी परिचित हैं। इस शब्द के प्रयोग से और सलोनी के मनोभाव की जैसी अभिव्यक्ति हुई है, वैसी अन्य शब्द से संभव न थी। ऐसे शब्द हिंदी में खप चुके हैं, उसके अपने हो गए हैं। इनका प्रयोग अवांछनीय नहीं, किंतु अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अवांछनीय है। केवल हिंदी से परिचित व्यक्ति के लिए उनका समझना संभव नहीं। कदाचित् इसीलिए उपन्यासकार ने अँग्रेजी—अभिज्ञ पाठकों की सुविधा के लिए अप्रचलित अँग्रेजी शब्दों का अर्थ ब्रेकेट में दे दिया है। जैसे, आइडियल (आदर्श), डेमान्सट्रेशन (प्रदर्शन) इत्यादि।[3] पर ऐसा सब अप्रचलित शब्दों के साथ नहीं है। प्रेमचंद ने अँग्रेजी शब्दों के बहुवचन हिन्दी व्याकरण के नियमानुसार ही बनाये हैं। उदाहरण के लिए, 'प्लाट' का 'प्लाटों' और 'मेम्बर' का 'मेम्बरों'। यह उचित ही है, अन्यथा 'मेम्बर' 'मेम्बरस्' हो जाता, जो नितांत अवांछनीय हैं। उर्दू-फारसी अँग्रेजी और लोकप्रचलित ठेठ शब्दों के अतिरिक्त प्रेमचंद ने कतर-ब्योंत, लेन—देन नौकर चाकर, आचार विचार, चोट-चपेट, ऊँच नीच, पान फूल आदि अनेक सहयोगी शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। इससे भाषा की अभिव्यञ्जना-शक्ति में वृद्धि हुई। 'गोदान' में इन शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि प्रेमचंद की भाषा का शब्द भंडार व्यापक और समृद्ध है। उन्होंने अभिव्यञ्जना को सशक्त करने वाले समस्त शब्दों का यथास्थान में प्रयोग किया है। हिन्दी भाषा से चुन—चुन कर विदेशी शब्दों को बहिष्कृत करने की मनोवृति उनके उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण को ग्राह्य न थी। उन्होंने कृत्रिमतापूर्ण शब्द—योजना की अपेक्षा स्वाभाविक भाषा दिखलाने में अपना विश्वास प्रकट किया। उनकी भाषा

---

[1] कर्मभूमि : पृष्ठ १६०.

[2] गोदान : पृष्ठ २०५.

[3] कर्मभूमि : पृष्ठ ७५ और २३४.

की प्रभावशक्ति का यह मूल कारण है कि वह सीधे जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है।

प्रेमचंद की भाषा आदर्श उनके पात्रों के सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर के आधार पर बना है। नगर-निवासी पात्रों की भाषा के दो रूप प्राप्य हैं। एक तो शिक्षित व्यक्तियों की भाषा जिसमें संस्कृत शब्द आए हैं, दूसरी अशिक्षित पात्रों की भाषा जो प्रचलित-शब्द-प्रधान है। ग्रामीण पात्रों को भाषा, कुछ साधारण वैभिन्न के साथ, प्रायः एक सी ही होती है।[1] इसके विपरीत नगर के हिन्दू और मुसलमान पात्रों की भाषा में अंतर स्पष्ट लक्षित होता है। 'सेवासदन' में यह अन्तर बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इसमें मुसलमान पात्र उर्दू का सारा जौहर दिखा डालते हैं। परवर्ती उपन्यास 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में यह अंतर अपेक्षाकृत कम हो गया था। इन उपन्यासों के मुसलमान पात्र भाषा—विषयक हठधर्मी नहीं दिखाते और कभी-कभी कुछ संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी कर लेते हैं। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद की भाषा के रूप-विधान में उनके नागरिक और ग्रामीण पात्रों का महत्वपूर्ण योग है।

उपन्यास की अंतरात्मा को प्रगट करने की कलात्मक सामर्थ्य शैली में ही होती है। इस दृष्टि से प्रेमचंद की शैली सर्वगुणसम्पन्न है। उसमें प्रसाद, ओज और माधुर्य के परम्परानुमोदित गुण विद्यमान हैं और वह उपन्यासकार के अभिप्रेत लक्ष्य-संधान का अप्रतिवार्य साधन है जिसकी सफलता सर्वमान्य है प्रेमचंद की सजीव और सशक्त गद्य-शैली उनके शिल्प—विधान और कला की देन से कम महत्वपूर्ण नहीं है। वह भावना और विचार से परिपूर्ण है। प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य की नींव ही नहीं डाली, अपितु एक जीवन्त गद्य-शैली का भी निर्माण किया। उनके शैली सम्बन्धी विचार बहुत सुलझे हुए थे[2] और इनका निर्वाह उन्होंने अपने शैली—विधान में किया। प्रेमचंद की भाषा-शैली में सजीवता द्रष्टव्य है—'सिलिया साँवली, सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में, चितवन में, अङ्गों के विलास में हर्ष का

---

[1] प्रेमाश्रम : पृष्ठ १२, १३, ५७, ५८.

[2] कुछ विचार : भाग १ : पृष्ठ ५१

उन्माद था, जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती रहती थी। सिर से पाँव तक भूसे के अणुओं में सनी, पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले, वह दौड़-दौड़कर अनाज ओसा रही थी, मानो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो [१]। प्रेमचंद के उपन्यास-साहित्य के अनेक स्थलों पर ऐसी उत्कृष्ट सजीव गद्य-शैली के दर्शन होते हैं'।[२]

शैली का प्रवाह रसानुभूति में सहायक होता है। यदि शैली समतल नहीं, प्रवाहपूर्ण नहीं, परिष्कृत नहीं, तो रचना की ग्राह्यशक्ति क्षीण हो जाती है। प्रेमचंद ने प्रवाहपूर्ण गद्यशैली के निर्माण में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी प्रवाहपूर्ण परिष्कृत शैली का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—'श्याम क्षितिज के गर्भ से निकलने वाली लाल ज्योति के भाँति अमरकांत को अपने अंतःकरण की सारी क्षुद्रता, सारी कलुशता के भीतर से एक प्रकाश-सा निकलता जान पड़ा, जिसने उसके जीवन को, रजत-शोभा प्रदान कर दी। दीपकों के प्रकाश में, संगीत के स्वरों में, गगन की तारिकाओं में, उसी शिशु की छबि थी, उसी का माधुर्य था, उसी का नृत्य'।[3] इसमें प्रवाहपूर्ण शैली के समतल-स्निग्ध रूप के साथ यथेष्ट प्रभावात्मकता है। शैलीगत मर्मस्पर्शिता का यह चरमोत्कर्ष रूप प्रेमचंद साहित्य में अन्यत्र भी प्राप्य है।[४]

उपन्यासकार ने अनेक स्थलों पर भावुकतापूर्ण गद्यशैली का उत्कर्ष अंकित किया है। यहाँ कवित्वपूर्ण, अलंकृत और सरस शैली का मार्मिक रूप-विधान हुआ है। भाषा भावमय और काव्योपम हो उठी है। उदाहरण के लिए—'गगन-मंडल में चमकते हुये तारागण व्यंग्य-दृष्टि की भाँति हृदय में चुभते थे, सामने वृक्षों के कुञ्ज में विनय की स्मृति-मूर्ति, श्याम, करुण, स्वर की भाँति कम्पित, धुयें की भाँति असम्बद्ध, यों निकलती हुई मालूम हुई, जैसे किसी संतप्त हृदय से हाय की ध्वनि निकलती है।[५]'

---

[१] गोदानः पृष्ठ ३३४.

[२] कर्मभूमिः पृष्ठ १७२.

[3] कर्मभूमि पृष्ठ ७३.

[४] गोदानः पृष्ठ४१.

[५] रंगभूमिः भाग १ : पष्ठ ४२०.

प्रेमचंद की शैली मनोभावों के अनुरूप अपना वेश-विधान करती है। जहाँ कोमल और मधुर भावों की अभिव्यञ्जना है, वहाँ शैली उन्हीं के अनुरूप कोमल और मधुर हो गई है, जहाँ उग्र भावों की व्यञ्जना है, वहाँ शैली का ओज देखते ही बनता है। अभिव्यञ्जना-सम्पन्न शब्दावली के प्रयोग से भाव मूर्तिमान-सा हो जाता है। शैली का यह रूप-परिवर्तन और वेशविधान उनके समस्त उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। कुछ उपन्यासों में इसके अच्छे उदाहरण उपलब्ध हैं।[1]

शैली की प्रभावात्मकता बढ़ाने के निमित्त प्रेमचंद ने उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का अच्छा प्रयोग किया है। प्रेमचंद की उपमायें अनूठी और नवीन हैं। उन्होंने पुराने साहित्यकारों की बासी उपमायें नहीं ग्रहण की हैं। जिस प्रकार प्रेमचंद-साहित्य में जीवन की ताजगी है, उसी प्रकार उनका अलंकारिक विधान जीवन के अनुभव और पर्यवेक्षण की नवीनता से अनुप्राणित हैं। उन्होंने उपमायें प्रचुर-परिमाण में प्रयुक्त कीं। उदाहरण के के लिए—'सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं। उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है'।[2] यह उपमा सर्वथा नवीन है, जीवन से ली गई है और प्रभाव-तीव्रता में अपूर्व है। प्रेमचंद की उपमाओं के विषय में निम्नांकित विचार पठनीय हैं—'भाषा की गति, रोक-थाम, ऐंठ-मरोड़ और सौंदर्य को नियंत्रित करने के लिए प्रेमचंद ने अलंकारों का बड़ी ही विचित्रता से प्रयोग किया है। भाषा की गति तीव्र हो जाती है तो उसे अलंकार का ब्रेक लगाकर कम कर देते हैं, मंद पड़ जाती है तो अलंकार का एक पैडल मार देते हैं। मानों अलंकार इनकी भाषा का रेगुलेटर हो।' उनके साहित्य में उपमा सतत् व्यापक है। इसी से उसको अनेक रूपों में पाते हैं। प्रेमचंद की उपमा में अपनी विशेषताएँ हैं जो नवीन हैं, मौलिक हैं, वर्तमान समाज से ली गई हैं जिनमें आध्यत्मिकता, धार्मिकता और भौतिकता के होते हुए भी हमारे वातावरण का सुंदर प्रदर्शन है।[3] उपमा की भांति

---

[1] सेवासदन : पृष्ठ २०४, प्रेमाश्रम : पृष्ठ ४२१, कर्मभूमि : पृष्ठ ४१ और १०४, गोदान : पृष्ठ १५१

[2] गोदान : पृष्ठ ४७६

[3] सम्मेलन पत्रिका : भाग ३२, संख्या ४-५-६, मार्गशीर्ष—पौष माघ २००१।

ही उत्प्रेक्षा के प्रयोग द्वारा प्रेमचंद ने शैली में प्रभाववृद्धि की है। उनकी उत्प्रेक्षायें भी जीवन से ली गई हैं और वर्तमान समाज से संपृक्त हैं। उदाहरण के लिए—'इधर गंगा के तट पर चितायें जल रही थीं, उधर मन्दिर इस उत्सव के आनन्द में दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा था, मानों वीरों की आत्मायें चमक रही हों। इसी प्रकार कुछ अन्य अलंकारों का भी उल्लेख्य प्रयोग किया गया है। जहाँ प्रेमचंद का अलंकार-प्रयोग नवीन और प्रभावात्मक है, वहाँ उसमें त्रुटि भी है। कुछ स्थलों पर उन्होंने उपमाओं की झड़ी लगा दी है। इससे शैली के प्रवाह में अवरोध ही नहीं उत्पन्न हुआ अपितु कृत्रिमता का प्रवेश हो गया है। पर ऐसे स्थान अधिक नहीं हैं और जिस व्यक्ति ने इतना अधिक लिखा हो, उसके लिए यह कोई बड़ी त्रुटि नहीं है।

प्रेमचंद की शैली में व्यंग्य का समुचित प्रयोग है। व्यंग्य और परिहास में प्रेमचंद दक्ष हैं। पर उनके व्यंग्य में भी उद्देश्यनिष्ठा है। उन्होंने समाज के पाखण्ड और ढोंग पर कसकर व्यंग्य-प्रहार किया है। इस व्यंग्य की प्रभाव-शक्ति कम नहीं है। उपन्यासकार ने पात्रों के कथोपकथन में भी व्यंग्य का अच्छा प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—'धनिया हाथ मटकाकर बोली—क्यों न हो, भाई ने पंद्रह रुपये कह दिए, तो तुम कैसे रोकते? अरे राम राम! लाड़ले भाई का दिल छोटा हो जाता कि नहीं। फिर जब इतना बड़ा अनर्थ हो रहा था कि लाड़ली बहू के गले पर छुरी चल रही थी, तो भला तुम कैसे बोलते? उस बखत कोई तुम्हारा सरबस लूट लेता, तो भी तुम्हें सुध न होती।' यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद का व्यंग्य प्रहार भी करता है और प्रभाव भी छोड़ जाता है।

प्रेमचंद की भाषा-शैली में मुहावरों और कहावतों का प्रचुर परिमाण में प्रयोग हुआ है। इससे शैली में प्रवाह और स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा हुई है। प्रेमचंद की चलती हुई मुहावरेदार शैली हिन्दी में बेजोड़ है। उनकी लोकप्रिय गद्यशैली में प्रयुक्त मुहावरे और कहावतों में से कुछ इस प्रकार हैं—छाती पर मूंग दलना,"...... हथेली पर सरसों जमना,"......धोबी का

[1] कर्मभूमि : पृष्ठ २२०

[2] गोदान : पृष्ठ ४३

कुत्ता, घर का न घाट का······सीधी उँगली से घी नहीं निकलता······आकाश के तारे तोड़ना······रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी ······आँख का पानी मर गया ··· अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता ···लातों के देवता कहीं बातों से मानते हैं' इत्यादि। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग द्वारा गद्य शैली में प्रवाह ही नहीं आया, वह सशक्त भी हुई है।

शैली के अन्तर्गत 'अनुभवसिक्त सूक्तियों' का प्रयोग प्रेमचंद की निजी विशेषता है। इन सूक्तियों में कल्पना और अनुभव के साथ चिन्तन का योग भी है। सूक्ति-प्रयोग से शैली की रमणीयता और प्रभावात्मकता में अभिवृद्धि हुई है। प्रेमचंद के उपन्यास-साहित्य से सूक्ति-संग्रह का कार्य यथेष्ट मनोरञ्जक है। कुछ उत्कृष्ट सूक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

(१) आनन्द जीवन का तत्व है।

(२) भय की भाँति साहस भी संक्रामक होता है।

(३) धर्म की क्षति जिस अनुपात से होती है, उसी अनुपात से आडम्बर की वृद्धि होती है।

(४) प्रेम देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है।

(५) सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है।

प्रेमचंद ने अँग्रेजी शब्दों की भाँति ही कुछ अँग्रेजी वाक्यांशों और उक्तियों के अनुवाद अपनी गद्य शैली में प्रयुक्त किए हैं। उदाहरण के लिए-'तत्काल धर्म' (First aid), 'जीवन के सुनहले दिन' (Golden days of life), 'आमोदपूर्ण आश्चर्य' (Pleasont Surpirse), 'गुफावासी मनुष्य' (Cave man) इत्यादि प्रयोग स्पष्टतः अँग्रेजी से अनूदित हैं, किन्तु शैली में भलीभाँति खप गए हैं।

१८

उद्देश्य

प्रत्येक साहित्यकार का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। यह प्रकट या परोक्ष रूप से उसकी रचना को प्रभावित करता है। साहित्यकार जीवन का पर्यवेक्षक ही नहीं, वह जीवन का दार्शनिक भी होता है। जीवन के प्रति उस का दृष्टिकोण उसकी कृतियों के माध्यम से संसार के सामने आता है। प्रेमचंद का जीवन संबंधी दृष्टिकोण भी उनके उपन्यासों में व्यक्त हुआ है। प्रेमचंद के उपन्यास उद्देश्य निष्ठ हैं। उनके लक्ष्य-संधान में अतिशय प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। प्रथमतः उनके उपन्यासों के पात्र और वस्तु ही उनके उद्देश्य को स्पष्ट कर देते हैं, अन्यथा प्रेमचन्द स्वयं अपने उद्देश्य की आलोचना प्रस्तुत करते चलते हैं। अतएव उनकी लक्ष्य प्रधान कृतियों की निःसशंयता प्रकट ही है। प्रेमचंद को साहित्य के लक्ष्यवाद के प्रति किसी प्रकार की दुविधा न थी। इस सम्बंध में उन्हों ने बड़े साहस और ईमानदारी के साथ विचार व्यक्त किये हैं। 'कला के लिए कला' और 'जीवन के लिए कला' ऐसे विवादास्पद विषयों पर निकुंठ भाव से विचार करते हुए उन्होंने लिखा है—'साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाय। 'कला के लिए कला' के सिद्धात पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है,…पर 'कला के लिए कला' का समय वह होता है, जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुःख और द्ररिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण-क्रन्दन सुनायी देता है तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न पिघल उठे? हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों, उपन्यास में स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये; अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।'[1]

---

[1]. कुछ विचार : भाग १ : पृष्ठ ४१, ४२, ३३.

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद ने कलावाद के विपरीत साहित्य के जीवन वादी दृष्टिकोण को अपनाया था और उनका लक्ष्यवाद लोक-मंगल की भावना से अनुप्राणित था। आगे हम इस पर विचार करेंगे कि उनका ध्येय-वाद उनकी [illegible] को किस रूप में प्रभावित करता है।

उपर्युक्त पक्तियों से हमारा यह निष्कर्ष है कि प्रेमचंद का जीवनवादी दृष्टिकोण लोकमंगल की भावना से प्रेरित है। पर यहाँ स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि प्रेमचन्द का लोकमंगलवाद तुलसीदास आदि मध्यकालीन साधकों के मंगलवाद से सर्वथा भिन्न है। तुलसीदास का लोकमंगल-विधान वर्णभेद के अलौकिकत्व पर निर्भर है, जबकि प्रेमचन्द का लोकमंगलवाद वर्ण-जाति के लौकिकत्व में प्रकट मानवता पर निर्भर है। प्रेमचंद के लोकमंगल विधान में आर्थिक-समाजिक विषमता के लिए कोई स्थान नही है। चूंकि समाज में आर्थिक-समाजिक विषमता परिव्याप्त है, इसलिए प्रेमचन्द साहित्यकार का दायित्व समझते हैं कि वह विषमता के अन्याय से मनुष्यता का उद्धार करे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में प्रस्ताव किया है—'जो दलित हैं, पीड़ित है, वाञ्छित है—चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उस का (साहित्यकार) फ़र्ज़ है। उसकी अदालत समाज है, इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगाथा पेश करता है और उसकी न्यायवृति तथा सौंदर्यवृति को जाग्रत करके अपना यत्न सफल समझता है,।[1] प्रेमचंद ने अपने साहित्य में सर्वत्र इस सिद्धांत का प्रतिपालन किया है। उन्होंने दलित, पीड़ित और शोषित प्राणियों के दुःख-कष्ट को दुर्धर्ष शब्दों में समाज के सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने साहित्य की सिद्धि इसी में मानी है कि वह देश, जाति, समाज के कल्याण का माध्यम बने। उनका यह लक्ष्य निम्नांकित शब्दों में और भी स्पष्ट हो जाता है—'तुम्हारी कविता उच्चकोटि की है। मैं इसे सर्वांग सुन्दर कहने को तैयार हूं। लेकिन तुम्हारा यह कर्तव्य कि अपनी इस अलौकिक शक्ति को स्वदेश-बन्धुओं के हित में लगाओ। अवनति की दशा में श्रृंगार और प्रेम का राग अलापने की जरूरत नहीं होती, इसे तुम भी स्वीकार करोगे।[2] वस्तुतः जिन परिस्थितियों में प्रेमचंद ने साहित्य की सृष्टि की, उनमें साहित्य

कुछ विचार : भाग १ : पृष्ठ ६.

रंगभूमि : भाग १ : पृष्ठ १४४-१४५.

कार के लिए इससे उदात्त कर्तव्य दूसरा न था कि वह देश के राजनीतिक, आर्थिक और समाजिक बन्धनों से मनुष्यता के उद्धार-साधन में योग दे। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की ध्येयवादी धारणा के निर्माण में उनकी परिस्थितियों का प्रभाव भी पड़ा था।

प्रेमचन्द-साहित्य का उद्देश्य नितान्त स्पष्ट है। उन्होंने अपने उपन्यासों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मन्तव्यों को बड़े विस्तार से पैठ दी है। राजनैतिक जीवन—चित्रण में वह देश की परतन्त्रता को नहीं भूलते, आर्थिक प्रश्नों पर दृष्टि डालते ही विषमता और शोषण से पीड़ित किसान और मजदूर की समस्याएँ उनके समक्ष आ जाती हैं और सामाजिक जीवन पर दृष्टि डालते ही चिरपीड़ित नारीसमाज के उत्पीड़न से वह व्यथित हो उठते हैं। जो भी दलित और पीड़ित हैं प्रेमचन्द उनके साथ हैं और जो शक्तियाँ समाज को शोषण और अत्याचार से त्रस्त किए हैं, उनके प्रति उपन्यासकार का गहरा विक्षोभ प्रकट हुआ है। यहाँ पुनः प्रेमचंद की उपन्यासकला का सामाजिक ध्येय—न्याय और नीति के मूलभूत आदर्शों से प्रेरणा पाता दृष्टिगत होता है। प्रत्येक औपन्यासिक कृति किसी न किसी व्यापक सामाजिक उद्देश्य से सम्बद्ध है। 'वरदान' में स्नेह पर कर्त्तव्य की विजय अंकित की गई है, 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं को सामाजिक-त्रास से मुक्त करने का संकल्प ध्वनित होता है, 'सेवासदन' में वेश्या के उद्धार की व्यवस्था की गई है, 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' और 'गोदान' में मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण का विरोध किया गया है। 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' में राजनीतिक परतन्त्रता के प्रति उपन्यासकार का बढ़ता विद्रोह भी व्यक्त हुआ है। उनकी इसी महान लक्ष्य-साधना के कारण उन्हें राष्ट्रीय उपन्यासकार का पद प्राप्त हुआ है। उन्होंने राष्ट्र की प्रायः सब मुख्य समस्याओं को युग-चेतना के प्रकाश में देखा और अनेक के प्रति अपना दायित्व अनुभव किया। इसी दायित्व—निर्वाह के निमित्त उन्होंने अपने उपन्यासों में ध्येयवाद की प्रतिष्ठा की क्योंकि उनकी ईमानदारी लुक-छिप कर चलना नहीं जानती थी। उन्होंने जैसा समझा, वैसा प्रकट कर दिया। किसी प्रकार के संकोच या दुविधा से अपनी धारणा को कुंठित नहीं होने दिया।

के सामाजिक उद्देश्य ने उनकी उपन्यास—कला को यथेष्ठ

प्रभावित किया है। इससे उनकी साहित्य सम्बन्धी धारणा का निर्माण तो हुआ ही, उनके उपन्यासों के रूप-विधान में भी गहरा प्रभाव पड़ा। ध्येयवाद के कारण ही उनकी उपन्यास—कला को निर्मुक्त कंठ से श्रेष्ठत्व नहीं प्रदान किया गया है। कहा गया है कि प्रेमचंद ने उपन्यासों में प्रचारक और सुधारक का बाना धारण किया है। यद्यपि प्रारम्भिक उपन्यासों में प्रेमचंद ने सुधारवादी दृष्टि से काम किया है किन्तु उनकी सतत् विकासशील कला प्रयोग और परीक्षण के द्वारा प्रत्येक परवर्ती कृति में पूर्ववर्ती प्रभाव से मुक्त होती गई है। 'गोदान' तक पहुंचते पहुंचते उनकी लक्ष्यनिष्ठ उपन्यास कला का 'स्टैन्डर्ड' निश्चित हो गया था। 'गोदान' में उन्होंने ग्रामीण समाज के शोषण को अनावृत करने का लक्ष्य अपने सामने रखा था और इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। इसमें न सुधार है, न प्रचार, यह उपन्यास उद्देश्यपूर्ण होकर भी अप्रतिम कला कृति है। यह प्रेमचन्द की समाज और साहित्य साधना का चरमबिन्दु है। 'गोदान' यह स्पष्ट कर देता है कि ध्येयवादी साहित्य भी कला की कसौटी पर खरा सिद्ध होता है। आवश्यकता होती है सन्तुलन की और समन्वय की। प्रेमचन्द की प्रौढ़ कृतियों में इस आवश्यकता का पूरा ध्यान रखा गया है।

१९

त्रुटियाँ

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला त्रुटि विहीन नहीं है। उसमें त्रुटियाँ हैं, और पूर्व प्रकरणों में उनका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य सामान्य त्रुटियाँ हैं, जिन पर निम्नाँकित पंक्तियों में विचार किया गया है।

प्रेमचन्द के उपन्यास में अनावश्यक विस्तार की चर्चा कथा-वस्तु के प्रसंग में की गई है। कथावस्तु में विस्तार के अतिरिक्त उनके उपन्यासों की कलेवर वृद्धि का कारण है उपन्यासकार की अद्भुत वर्णन शक्ति जो प्रारम्भ होने पर यथा स्थान रुकना कम जानती है। कुछ आलोचकों ने तो यहाँ तक कहा है कि प्रेमचन्द के वृहदकाय उपन्यासों के कलेवर आधे किये जा सकते थे। अनावश्यक विस्तार और कलेवर वृद्धि के दोष को मानते हुए भी हम इस मत से सहमत नहीं हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनावश्यक विस्तार अवश्य है, पर इतना अधिक नहीं कि उपन्यासों का कलेवर पचास प्रतिशत के दोष से मंडित किया जाय।

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन में औचित्य विचार पर प्रेमचन्द की दृष्टि नहीं रहती। उन्होंने कई स्थलों पर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन ही नहीं किया है अपितु वस्तुओं के नाम और मात्रा का बड़े विस्तार से उल्लेख किया है।[1] इस सम्बन्ध में वे संभव-असंभव की चिन्ता भी नहीं करते। वस्तुतः प्रेमचन्द के उपन्यासों के यह अंश उत्तर-मध्यकालीन हिन्दी कवियों की प्रवृत्ति से मेल खाते हैं जो वस्तुओं की नामावली प्रस्तुत करना काव्य-कला का अनिवार्य अंग समझते थे। प्रेमचन्द के लिए अनिवार्यता का प्रश्न नहीं उठता, पर अद्भुत के प्रति उनका प्रच्छन्न आकर्षण स्पष्ट हो जाता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में अलौकिक-तत्व का प्रवेश त्रुटि ही मानी जायगी। उपन्यास का विषय जीवन से सम्बद्ध है, अतएव उसमें आध्यात्मिक और अलौकिक चित्रण अवांछनीय हैं। लोक की प्रयोगशाला में परलोक का चिन्तन अनादि काल से होता आ रहा है किन्तु उपन्यास की सीमा में उसका

प्रवेश अनधिकार माना जायगा। प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' में इस सिद्धांत का प्रत्याख्यान किया है। वह 'काया कल्प' में पुनर्जन्म और परलोक की चर्चा ही नहीं करते अपितु इस विषय को वस्तु का अनिवार्य अंग निश्चित करते हैं। अलौकिकत्व का यह प्रभाव कुछ अन्य स्थलों पर भी दृष्टिगत होता है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द सुक्खू चौधरी की सिद्धि की चर्चा करते हैं [१] और 'गोदान' में मालती के विषय में मेहता बहुत कुछ ऐसा ही समझते हैं। [२] प्रथम उपन्यास में उन्होंने दिखाया है कि सुक्खू चौधरी के अभिशाप से कत्तरि के छूते ही रुपयों के स्थान पर ठीकरे हो गये। ऐसी करामातें दिखाना बाजीगरों का काम है, उपन्यासकार का नहीं। 'गोदान' में मालती के स्पर्श से मेहता के सिर दर्द का तत्क्षण अच्छा हो जाना, प्रेमचन्द को सिद्धि का लक्षण ज्ञात हुआ था। यदि इस प्रसंग का विकास मनोवैज्ञानिक आधार पर किया जाता तो सिद्धि के जादू से उसका प्रभाव सहृदयों पर कम न पड़ता। वस्तुतः अलौकिकत्व के प्रति प्रेमचन्द का मोह परम्परागत संस्कार माना जायगा किन्तु यह उपन्यास की सीमा के बाहर की वस्तु है। अतएव इनके उपन्यासों में तद्-विषयक प्रभाव की गणना त्रुटि रूप में की जायगी।

सुरुचि और कुरुचि का प्रश्न जीवन का प्रश्न है। अतएव प्रेमचंद की उपन्यास-कला के सम्बंध में इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रेमचंद के उपन्यासों में कुरुचि का सर्वथा अभाव है, पर कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ सुरुचि का अभाव भी दृष्टिगत होता है। 'कर्मभूमि' के अंतर्गत सकीला और अमर के प्रेम की अभिव्यक्ति में एक स्थल ऐसा है जहाँ लैला-मजनू पद्धति का प्रेम दिखाकर उपन्यासकार सुरुचि का अभाव प्रस्तुत करता है। इस स्थल पर 'वफा के सबूत में खून की बूंदे हाजिर' करने के लिये अमर छुरी निकाल लेता है। [३] यह प्रेम-प्रदर्शन बाज़ारू ढंग का है और प्रेमादर्श की अभिव्यक्ति में इसका प्रभाव गंभीर न होकर हलका पड़ता है। इसी प्रकार 'गोदान' में दो स्थल उल्लेख्य हैं। इसमें मिर्जा और मालती के मुख से ऐसे शब्दों का प्रयोग कराया गया है, जो परिस्थितियों और पात्रों के प्रति अन्याय ही नहीं करते वरन सुरुचि-विरुद्ध हैं। [४] इसी प्रकार के कुछ छोटे-मोटे प्रसंग अन्य उपन्यासों में भी हैं।

---

[१] प्रेमाश्रम : पृष्ठ ३१२

[२] गोदान : पृष्ठ ४६०

[३] कर्मभूमि : पृष्ठ १०४

[४] गोदान : पृष्ठ ८३, ८५, ११३

२०

असावधानियां

हम इसका उल्लेख कर चुके हैं कि प्रेमचन्द का शिल्प-विधान त्रुटि-विहीन नहीं है। उसमें कुछ त्रुटियाँ तो हैं ही, असावधानी के कारण कुछ स्वयंविरोधी (Contradictory) कथन भी प्राप्त हैं। परस्पर विरोधी वर्णन उनके कई उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। यदि इस ओर प्रेमचन्द अभीष्ट ध्यान देते तो इनकी आलोचना का अवसर न उत्पन्न होता। असावधानी के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

'गोदान' में नाम के विषय में उपन्यासकार ने कुछ उदासीनता दिखाई है। इससे भ्रम उत्पन्न हो जाने की संभावना रहती है। झुनिया के पहले पुत्र को वह कभी चुन्नू, कभी मुन्नू और अंत में लल्लू नाम देते हैं। इसी प्रकार खन्ना की पत्नी का प्रथम परिचय कामिनी कहकर दिया गया है, बाद में गोविन्दी कहा गया।

'गोदान' में एक और भद्दी भूल हो गई है। मेहता को बनाने के लिए मालती अपने इंगलैंड—प्रवास की एक मनोरञ्जक घटना सुनाते हुए कहती है—'मेरे फिलासफी के प्रोफेसर ... ।' उपन्यासकार ने बताया है कि मालती इंगलैंड डाक्टरी पढ़ने गई थी, फिर उसका फिलासफी से क्या सम्बन्ध? दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर कहाँ आ गए? यदि प्रेमचंद हँसी उड़ाने की धुन में न बह जाते, तो ऐसी त्रुटि न होती।

'गोदान' में असावधानी का एक प्रसंग और है। खन्ना मेहता के घर मजदूरों की हड़ताल के सम्बन्ध में बातचीत करने आए हैं। बातचीत चल रही थी कि मालती भी आ पहुँची। उसी समय शक्कर मिल में आग लग गई। तीनों व्यक्ति वहाँ जाने के लिए प्रस्तुत हुए। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार लिखता है—'मालती दौड़ी हुई बँगले में गई और अपने जूते पहन आई।' तीनों व्यक्ति बगीचे में बात कर रहे थे। मालती अपने घर से आई

---

१. सेवासदनः पृष्ठ ३६०-३६१

थी ?तो क्या वह बिना जूते पहने ही आई थी अथवा उसके जूते मेहता के बँगले में रहते थे ?

'गोदान' में कुछ सामान्य असावधानियाँ और भी हैं। उपन्यासकार ने एक स्थल पर बताया है कि होरी ने दातादीन से बैल के लिए तीस रुपये उधार लिए थे। दूसरे पर तीन बीघे बताया गया है। उपन्यास के चौंतीसवें परिच्छेद में बताया है कि सिलिया का बालक गाँव भर में दौड़ लगाता था, उसी परिच्छेद में आगे लिखते हैं कि वह बकवाँ चलने लगा था।

'कर्मभूमि' में असावधानी के दो उदाहरण प्राप्त हैं। पहले भाग के सातवें परिच्छेद में पठनिन अमरकान्त से कहती है कि उसके बेटे-बहुएं सभी हैं। उसी परिच्छेद में आगे चलकर कहा है कि उसके बेटे-बहू इत्यादि सब मर चुके हैं। दो पृष्ठ के अन्तर ने परस्पर विरोधी बात को जन्म दे दिया। इसी प्रकार दूसरे भाग के पहले परिच्छेद में उपन्यासकार ने लिखा है कि 'मुन्नी को तीन साल हुए मुखिया का लड़का हरिद्वार से लाया था। एक सप्ताह हुए धर्मशाला के द्वार पर जीर्ण दशा में पड़ी थी।' पर इसी भाग के सातवें परिच्छेद में मुन्नी ने अमरकान्त से आप बीती कहते हुए इस घटना को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया है। उसने बताया है कि वह नदी में बहती चली जा रही थी, चौधरी का लड़का उसे उठा लाया। एक ओर तो प्रेमचन्द लिखते हैं कि वह धर्मशाला के द्वार पर पड़ी थी, दूसरी ओर लिखते हैं कि नदी में बही जा रही थी।

'सेवासदन' में भी कई असावधानियाँ हैं। सातवें परिच्छेद में उपन्यासकार ने सुमन का भोली के कोठे पर जाना लिखा है, पर ग्यारहवें परिच्छेद में यह लिखा है कि 'भोली का कमरा देखकर सुमन की आँखें खुल गई। एक बार वह पहले भी आई थी, लेकिन नीचे के आंगन से ही लौट गई थी।' स्पष्ट ही परस्पर विरोधी वर्णन है। इसी प्रकार दसवें परिच्छेद में लिखा है कि 'गजाधर को इधर एक महीने से सेठजी ने जवाब दे दिया था।' फिर तेरहवें परिच्छेद में उसकी दुकान पर विट्ठलदास के आने की चर्चा की है। जब वह दुकान से हटा दिया गया था, तब विट्ठलदास को दुकान पर कैसे मिल सकता था ? नौकरी वह किसी कारखाने में करता था।[1]

१. गोदानः पृष्ठ ३६०—३६१.

उपर्युक्त बड़े उपन्यासों के अतिरिक्त 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' ऐसे लघुकाय उपन्यासों में भी यह दोष दृष्टिगत होता है। 'वरदान' में एक साथ ही कमलाप्रसाद को अच्छा और बुरा बताया गया है—सात व्यक्तियों के अंतर में।[1] 'प्रतिज्ञा में इससे भी भद्दा उदाहरण प्राप्त है। दूसरे परिच्छेद के प्रारम्भ में लिखा है—'लाला बदरीप्रसाद, उनकी स्त्री देवकी और प्रेमा, तीनो बैठे निश्चल नेत्रों से भूमि की ओर ताक रहे थे………।' आगे इसी परिच्छेद में एक पृष्ठ के उपरांत देवकी बताती है कि प्रेमा 'अकेले छत पर पड़ी हुई रो रही है।' उसके बाद ही प्रेमा ऊपर से उतर कर आती है। यदि वह ऊपर थी, तो पिता-माता के पास बैठी किस प्रकार थी? स्पष्ट है कि यह स्थल भी असावधानी का परिणाम है। इसी प्रकार उनके अन्य उपन्यासों में एक-दो ऐसे स्थल हैं, जहाँ एक ही घटना से सम्बंधित परस्पर विरोधी वर्णन असावधानी के कारण आ गए हैं। उपन्यासकार के संघर्षमय व्यस्त जीवन में कदाचित् इतना अवकाश न था कि वह पुनः रचनाओं की जांच कर ऐसे स्थान सुधार लेता।

२१

उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान

यह निर्विवाद है कि प्रेमचंद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। हिंदी के उपन्यास-प्रांगण में उनकी सी प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि लेकर दूसरे साहित्यकार ने अब तक प्रवेश नहीं किया है। जीवन के अनुभव और पर्यवेक्षण में कल्पना की विधायिका शक्ति का योग देकर उन्होंने महान् साहित्य की सृष्टि की। उनकी कृतियाँ जीवन विस्तार के अनेक चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनका उपन्यास-वाङ्मय जीवन की व्याख्या के अन्तर्गत उनके जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति करता है। प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य गत्यात्मकता से पूर्ण हैं। वह जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है और जीवन को प्रेरणा देता है।

बंगला के शरत् और रवीन्द्र से प्रेमचंद की तुलना की जाती है। शरत् बाबू निःसदेह एक कथा-शिल्पी हैं। "चरित्रहीन" और "श्रीकांत" उनकी प्रतिभा के ज्वलंत प्रमाण हैं। कथा और शिल्प-विधान की दृष्टि से वह प्रेमचंद की अपेक्षा अधिक पूर्ण और प्रभावात्मक है, किंतु जीवन-व्याख्या के व्यापकत्व की दृष्टि से प्रेमचंद अग्रणी हैं। शरत् ने मुख्यतः मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न स्तरों के जीवन-चित्रण में अपनी कला को व्यस्त किया, जबकि प्रेमचंद ने समाज के सब वर्गों का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत किया। इसमें संदेह नहीं कि शरत्चंद ने जीवन-चित्रण कला का प्रयोग तटस्थता के साथ किया, किंतु उनका उपन्यास-साहित्य सामाजिक दायित्व के व्यापक लक्ष्य से असम्पृक्त है। स्वयं एक राजनीतिक कार्यकर्ता होते हुए भी युग-प्रवृत्तियों के प्रति उनकी अभिरुचि अधिक नहीं ज्ञात होती। इसके विपरीत प्रेमचंद ने युग की प्रायः समस्त प्रवृत्तियों को स्वर प्रदान किया। शरत्चंद 'पथेर दावी' को छोड़ कर सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित हैं, प्रेमचद ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं को समान रूप से ग्रहण किया

है। साहित्यकार के सामाजिक दायित्व का निर्वाह जिस अदम्यता से प्रेमचंद ने किया, शरत् बाबू नहीं कर पाए। प्रेमचंद के उपन्यासों की समाज-साधना एकदम कलाविरत भी नहीं है। वस्तुतः वह कला और जीवन के मध्य अच्छा समझौता प्रस्तुत करते में सफल हुए। दूसरे लोकमंगल की दृष्टि से भी प्रेमचंद का स्थान शीर्ष ठहरता है। शरत् के साहित्य का स्वर नैराश्य-मूलक और विषादसिक्त है। प्रेमचंद का साहित्य मनुष्यता में अदम्य विश्वास का उद्घोष करता है। वह अवसाद में न डालकर, जीवन को प्रेरणा और गति देता है।

रवीन्द्रनाथ महान् साहित्य-सृष्टा थे। अपनी कृतियों के बल पर संसार में यश अर्जित करने वाला यह अभिनव-परम्परा का अधिनायक चतुर्भुजी प्रतिभा लेकर अवतरित हुआ। उपन्यास-क्षेत्र में उन्होंने 'गौर मोहन' (गोरा), 'आँख की किरकिरी', 'घर बाहर' और 'नौका डूबी' ऐसी प्रख्यात और लोकप्रिय रचनाएँ प्रस्तुत कीं। पर रवीन्द्रनाथ और प्रेमचंद के दृष्टिकोण में यथेष्ठ अंतर है। यह अंतर बाह्य विधान में ही नहीं मूल में भी परिलक्षित होता है। रवीन्द्रनाथ रसवादी—विचारवादी हैं; प्रेमचंद विश्लेषणवादी हैं। रवीन्द्रनाथ व्यंजना से काम लेते हैं; प्रेमचंद व्याख्या से। रवीन्द्रनाथ के भावनात्मक और प्रेमचंद की कर्मण्य मानवता में भी पर्याप्त पार्थक्य है। मानवता का प्रश्न रवीन्द्र के लिए विश्वबंधुत्व के प्रसार का प्रश्न था, जबकि प्रेमचंद के लिए जीवन और मरण का। मानवता के प्रति प्रेमचंद की सहानुभूति में क्रिया का वेग है, रवीन्द्रनाथ की भावना में निष्क्रिय आस्था का। रवीन्द्रनाथ की कल्याण और मंगल की भावना सौंदर्यसम्पृक्त है। इसीलिए वह समाज के आर्थिक प्रश्न से वियुक्त है। प्रेमचंद की लोक-कल्याण भावना से आर्थिक-समस्या की अनिवार्यता संयुक्त है। वस्तुतः रवीन्द्र और प्रेमचंद की परिस्थितियों, संस्कार और दृष्टिकोण में आमूल अंतर है जिससे उनकी साहित्य-साधना का स्वर पृथक-पृथक है। सच यह है कि युग की सम्यक् अभिव्यक्ति न शरत् कर सके न रवीन्द्र। इसका दायित्व प्रेमचंद ने सँभाला और उसका निर्वाह किया। भारतीय समाज और जीवन के जिस विशद-व्यापक चित्रण की अपेक्षा थी, वह प्रेमचंद के उपन्यासों में पूर्ण हुई।

अँग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स के साथ प्रेमचंद

की तुलना की जाती है। प्रेमचंद और डिकेन्स दोनों ही लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। दोनों ने जीवन के विस्तृत चित्रण का प्रयत्न किया है। दोनों को व्यक्तिगत रूप में जीवन की कटुता का अनुभव था। दोनों उपन्यासकारों ने अपनी भाषा में लोक-तत्व को सन्निहित किया। उपर्युक्त समानताएँ होने पर भी इनकी तुलना का विशेष कारण उपस्थित नहीं होता। -प्रेमचंद और डिकेन्स की परिस्थितियाँ अलग-अलग थीं। डिकेन्स स्वतंत्र देश का लेखक था, प्रेमचंद उसी स्वतंत्र देश द्वारा पराधीनता की वेड़ी में जकड़े राष्ट्र के साहित्यकार थे। डिकेन्स ने इङ्गलैंड में प्रचलित कुरीतियों का चित्रण अपनी विश्वविश्रुत हास्य-व्यंग्यमय शैली में किया, प्रेमचंद ने सामाजिक अन्याय और विषमता से पीड़ित मानवता की उद्धार-साधना में योग दिया। प्रेमचंद का मुख्य और प्रिय विषय ग्राम-जीवन का चित्रण है, डिकेन्स ने नगर के जीवन को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। दोनों उपन्यासकारों का चरित्र चित्रण सम्बन्धी दृष्टिकोण भी भिन्न है। मोटे रूप में चाहें डिकेन्स और प्रेमचंद की तुलना की जाय, किंतु उनकी मूल वृत्तियों में यथेष्ठ अंतर है।

बस्तुत; किन्हीं दो लेखकों की तुलना के आधार पर उनका स्थान निर्णय विशेष लाभप्रद नहीं होता। लेखकों के अपने दृष्टिकोण, विचार, और परिथितियाँ होंती हैं। साहित्य की विविधतापूर्ण विभिन्नता के यही मूल आधार हैं। अतएव सबको एक तुला पर तौलना उचित नहीं। प्रत्येक लेखक की प्रवृत्तियों का उसकी परिस्थितियों के आलोक में स्वतंत्र अध्ययन होना चाहिये। यदि तुलना द्वारा स्थान–निर्धारण करना ही है, तों परिस्थितियों का साम्य ऐसी योजना कर सकता है। इस दृष्टि से प्रेमचंद की तुलना क्रांतिकालीन रूसी लेखकों से करना अधिक संगत होगा, क्योंकि रूस की परिस्थितियों और भारत की परिस्थितियों में बड़ा साम्य रहा है। रूस की क्रांति पूर्ववर्ती पीड़ित मानवता और भारत की शोषण जर्जर मनुष्यता तुलना का विषय बन सकती है। अतएव रूसी जनता के लोकप्रिय उपन्यासकार गोर्की से प्रेमचंद की तुलना अधिक संगत है। जिस प्रकार गोर्की ने अपने देश की शोषण पीड़ित जनता को स्वर प्रदान किया, उसी प्रकार प्रेमचंद ने अपने देश की पराधीन मनुष्यता की उद्धार-चेष्टा को सतत् मुखर किया। गोर्की और प्रेमचंद दोनों जनता के साहित्यकार थे। उन्होने यथार्थ लोक साहित्य का सृजन किया। दोनों ने ही खुलकर शोषण का विरोध किया।

है। साहित्यकार के सामाजिक दायित्व का निर्वाह जिस अदम्यता से प्रेमचंद ने किया, शरत् बाबू नहीं कर पाए। प्रेमचंद के उपन्यासों की समाज-साधना एकदम कलाविरत भी नहीं है। वस्तुतः वह कला और जीवन के मध्य अच्छा समझौता प्रस्तुत करते में सफल हुए। दूसरे लोकमंगल की दृष्टि से भी प्रेमचंद का स्थान शीर्ष ठहरता है। शरत् के साहित्य का स्वर नैराश्य-मूलक और विषादसिक्त है। प्रेमचंद का साहित्य मनुष्यता में अदम्य विश्वास का उद्घोष करता है। वह अवसाद में न डालकर, जीवन को प्रेरणा और गति देता है।

रवीन्द्रनाथ महान् साहित्य-स्रष्टा थे। अपनी कृतियों के बल पर संसार में यश अर्जित करने वाला यह अभिनव-परम्परा का अधिनायक चतुर्भुजी प्रतिभा लेकर अवतरित हुआ। उपन्यास-क्षेत्र में उन्होंने 'गौर मोहन' (गोरा), 'आँख की किरकिरी', 'घर बाहर' और 'नौका डूबी' ऐसी प्रख्यात और लोकप्रिय रचनाएँ प्रस्तुत कीं। पर रवीन्द्रनाथ और प्रेमचंद के दृष्टिकोण में यथेष्ठ अंतर है। यह अंतर वाह्य विधान में ही नहीं मूल में भी परिलक्षित होता है। रवीन्द्रनाथ रसवादी—विचारवादी हैं; प्रेमचंद विश्लेषणवादी हैं। रवीन्द्रनाथ व्यंजना से काम लेते हैं; प्रेमचंद व्याख्या से। रवीन्द्रनाथ के भावनात्मक और प्रेमचंद की कर्मण्य मानवता में भी पर्याप्त पार्थक्य है। मानवता का प्रश्न रवीन्द्र के लिए विश्वबंधुत्व के प्रसार का प्रश्न था, जबकि प्रेमचंद के लिए जीवन और मरण का। मानवता के प्रति प्रेमचंद की सहानुभूति में क्रिया का वेग है, रवीन्द्रनाथ की भावना में निष्क्रिय आस्थाका। रवीन्द्रनाथ की कल्याण और मंगल की भावना सौंदर्यसम्पृक्त है। इसीलिए वह समाज के आर्थिक प्रश्न से वियुक्त है। प्रेमचंद की लोक-कल्याण भावना से आर्थिक-समस्या की अनिवार्यता संयुक्त है। वस्तुतः रवीन्द्र और प्रेमचंद की परिस्थितियों, संस्कार और दृष्टिकोण में आमूल अंतर है जिससे उनकी साहित्य-साधना का स्वर पृथक-पृथक है। सच यह है कि युग की सम्यक् अभिव्यक्ति न शरत् कर सके न रवीन्द्र। इसका दायित्व प्रेमचंद ने सँभाला और उसका निर्वाह किया। भारतीय समाज और जीवन के जिस विशद-व्यापक चित्रण की अपेक्षा थी, वह प्रेमचंद के उपन्यासों में पूर्ण हुई।

अँग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स के साथ प्रेमचंद

की तुलना की जाती है। प्रेमचंद और डिकेन्स दोनों ही लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। दोनों ने जीवन के विस्तृत चित्रण का प्रयत्न किया है। दोनों को व्यक्तिगत रूप में जीवन की कटुता का अनुभव था। दोनों उपन्यासकारों ने अपनी भाषा में लोक-तत्व को सन्निहित किया। उपर्युक्त समानताएँ होने पर भी इनकी तुलना का विशेष कारण उपस्थित नहीं होता। प्रेमचंद और डिकेन्स की परिस्थितियाँ अलग-अलग थीं। डिकेन्स स्वतंत्र देश का लेखक था, प्रेमचंद उसी स्वतंत्र देश द्वारा पराधीनता की बेड़ी में जकड़े राष्ट्र के साहित्यकार थे। डिकेन्स ने इङ्गलैंड में प्रचलित कुरीतियों का चित्रण अपनी विश्वविश्रुत हास्य-व्यंग्यमय शैली में किया, प्रेमचंद ने सामाजिक अन्याय और विषमता से पीड़ित मानवता की उद्धार-साधना में योग दिया। प्रेमचंद का मुख्य और प्रिय विषय ग्राम-जीवन का चित्रण है, डिकेन्स ने नगर के जीवन को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। दोनों उपन्यासकारों का चरित्र चित्रण सम्बन्धी दृष्टिकोण भी भिन्न है। मोटे रूप में चाहें डिकेन्स और प्रेमचंद की तुलना की जाय, किंतु उनकी मूल वृत्तियों में यथेष्ठ अंतर है।

बस्तुत; किन्हीं दो लेखकों की तुलना के आधार पर उनका स्थान निर्णय विशेष लाभप्रद नहीं होता। लेखकों के अपने दृष्टिकोण, विचार, और परिथितियाँ होती हैं। साहित्य की विविधतापूर्ण विभिन्नता के यही मूल आधार हैं। अतएव सबको एक तुला पर तौलना उचित नहीं। प्रत्येक लेखक की प्रवृत्तियों का उसकी परिस्थितियों के आलोक में स्वतंत्र अध्ययन होना चाहिये। यदि तुलना द्वारा स्थान-निर्धारण करना ही है, तों परिस्थितियों का साम्य ऐसी योजना कर सकता है। इस दृष्टि से प्रेमचंद की तुलना क्रांतिकालीन रूसी लेखकों से करना अधिक संगत होगा, क्योंकि रूस की परिस्थितियों और भारत की परिस्थितियों में बड़ा साम्य रहा है। रूस की क्रांति पूर्ववर्ती पीड़ित मानवता और भारत की शोषण जर्जर मनुष्यता तुलना का विषय बन सकती है। अतएव रूसी जनता के लोकप्रिय उपन्यासकार गोर्की से प्रेमचंद की तुलना अधिक संगत है। जिस प्रकार गोर्की ने अपने देश की शोषण पीड़ित जनता को स्वर प्रदान किया, उसी प्रकार प्रेमचंद ने अपने देश की पराधीन मनुष्यता की उद्धार-चेष्टा को सतत् मुखर किया। गोर्की और प्रेमचंद दोनों जनता के साहित्यकार थे। उन्होंने यथार्थ लोक साहित्य का सृजन किया। दोनों ने ही खुलकर शोषण का विरोध किया।

गोर्की की भाँति प्रेमचंद ने भी साहित्य द्वारा मनुष्य और समाज की सेवा की।

प्रेमचंद मनुष्यता के अमर कथाकार हैं। जब तक समाज में अनीति, अन्याय, अत्याचार और अविचार है, तब तक प्रेमचंद की कृतियाँ मशाल का काम देंगी और जब मुक्ति के प्रकाश से मनुष्यता का मुख उज्ज्वल होगा, तब वे शोषित-पीड़ित जनता की जीवन-गाथा से, उसके जीवन व्यापी संघर्ष से हमारा परिचय कराती रहेंगी। उनकी लोकमङ्गल भावना को ठीक से न समझ सकने के कारण कुछ छिद्रान्वेषी आलोचकों ने उन्हें सुधारक, प्रचारक और न जाने क्या-क्या कह डाला है। इससे प्रेमचंद के साहित्य का सामाजिक ध्येयवाद लांछित नहीं होता है। इसीलिए उनके उपन्यासों में एक प्रकार की गरिमा है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेमचंद कल के नहीं थे, वे आज के ही नहीं हैं, वे भविष्य के भी हैं। इसे वही अनुभव कर सकते हैं जिन्होंने मनुष्यता की प्रगति को जीवन का सबसे बड़ा सत्य समझा है।

सहायक ग्रन्थ

(क) प्रेमचंद–साहित्य

उपन्यास

(१) वरदान

(२) प्रतिज्ञा

(३) सेवासदन

(४) प्रेमाश्रम

(५) निर्मला

(६) कायाकल्प

(७) गबन

(८) कर्मभूमि

(९) गोदान

(१०) मंगलसूत्र

(११) रंगभूमि

निबन्ध

(१) कुछ विचार : भाग १

(२) साहित्य का उद्देश्य

(ख) प्रेमचंद सम्बन्धी आलोचना

(१) प्रेमचंद की उपन्यास-कला-जनार्दन झा 'द्विज,

(२) प्रेमचंद-रामविलास शर्मा

(३) प्रेमचंद और उनका युग—रामविलास शर्मा

(४) प्रेमचंद-एक विवेचन-डा० इन्द्रनाथ मदान

(५) प्रेमचंद—सम्पादक-डा० इन्द्रनाथ मदान

(६) कथाकार प्रेमचंद—मन्मथनाथ गुप्तः रमेशचन्द्र वर्मा

(७) प्रेमचंद—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
(८) प्रेमचंद—जीवन और कृतित्व-हंसराज रहबर
(९) प्रेमचंद और गोर्की-सं० शचीरानी गुर्टू
(१०) प्रेमचदः साहित्यिक विवेचन-नन्ददुलारे वाजपेयी

(ग) सामान्य ग्रन्थ

(१) हिंदी साहित्य-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(२) भारतेन्दु युग-रामविलास शर्मा
(३) आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास-डा० श्री कृष्णलाल
(४) आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास-पं० कृष्णशंकर शुक्ल

(घ) पत्र-पत्रिकायें

(१) हंस—प्रेमचंद-स्मृति अंक, मई, १९३७.
(२) आजकल-प्रेमचंद अंक अक्टूबर, १९५२.

(ङ) अँग्रेजी ग्रन्थ

(१) इन्ट्रोडक्सन टु दि स्टडी आफ लिटरेचर-विलियम हेनरी हसडन
(२) दि नाविल एंड दि प्युपिल-राल्फ फाक्स